बुद्धो भवेयं जगतो हिताय

बोधिप्रभ

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

(मानित विश्वविद्यालय)

सारनाथ, वाराणसी-221007

अंक-5 वर्ष-2025

संत कबीरदास

संत कबीरदास हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के एक महान चिन्तक कवि, समाज सुधारक एवं संत थे। उनका जन्म सन् 1398 (संवत 1455) में गंगा किनारे बसी पवित्र काशी नगरी की पावन भूमि वाराणसी के लहरतारा नामक स्थान पर हुआ था। प्रचलित कथा के अनुसार उनका जन्म ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, उनका पालन-पोषण नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने किया।

कबीर के गुरु प्रसिद्ध संत स्वामी रामानन्द थे। उनकी पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमाल व पुत्री का नाम कमाली था।

कबीर ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास, जाति-पाति और धार्मिक कट्टरता का कड़ा विरोध किया। वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे और हिंदू-मुस्लिम एकता पर जोर देते थे। कबीर अनपढ़ थे, लेकिन उनकी वाणियों का संग्रह उनके शिष्यों ने "बीजक" के रूप में किया, जिसके तीन मुख्य भाग हैं- साखी, सबद और रमैनी। उनकी भाषा को "सधुक्कड़ी" या "पंचमेल खिचड़ी" कहा जाता है। अवधी में भी उनकी रचनाएँ मिलती हैं।

कबीरदास ने अपना अंतिम समय मगहर (उ.प्र.) में बिताया जहाँ सन् 1518 में उनका निधन हुआ।

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥

पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगे थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि॥

बोधिप्रभ

[अंक-5]

बुद्धो भवेयं जगतो हिताय

संरक्षक

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

सम्पादक

डॉ. सुनीता चन्द्रा

राजभाषा कार्यान्वयन समिति
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
सारनाथ, वाराणसी-221007

वर्ष-2025

सम्पादन समिति

डॉ. रामसुधार सिंह
प्रो. बाबूराम त्रिपाठी
डॉ. हिमांशु पाण्डेय
प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी
श्री भगवान पाण्डेय
डॉ. रमेश चन्द्र नेगी
श्री राजेश कुमार मिश्र
श्री टी.आर.शाशनी
डॉ. ज्योति सिंह
डॉ. अनुराग त्रिपाठी
डॉ. सुशील कुमार सिंह

सलाहकार परिषद

प्रो. उमेश चन्द्र सिंह
डॉ. दोर्जे दमदुल
डॉ. ल्हक्पा छेरिंग
प्रो. सत्य पाल शर्मा
डॉ. सत्य प्रकाश पाल

समीक्षा समिति

श्री सुनील कुमार
डॉ. शुचिता शर्मा
डॉ. ए.के. राय
डॉ. महेश शर्मा
डॉ. प्रशान्त कुमार मौर्य
डॉ. कर्मा सोनम पालमो
डॉ. रवि रंजन द्विवेदी

अंक-5, वर्ष-2025

प्रकाशक :

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-221007

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी
कुलपति
Prof. Wangchuk Dorjee Negi
Vice Chancellor

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

संरक्षक की कलम से

मैं राजभाषा पत्रिका 'बोधिप्रभ' के इस नवीनतम अंक के प्रकाशन पर अत्यंत हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सारनाथ की यह पवित्र धरा, जहाँ भगवान बुद्ध ने 'प्रथम धर्मचक्र-प्रवर्तन' किया था, आज न केवल बौद्ध-दर्शन बल्कि भारतीय और भोट विद्या के अनूठे समन्वय का केंद्र भी है। केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान का मुख्य उद्देश्य लुप्तप्राय भारतीय विद्याओं, विशेषकर उन संस्कृत ग्रंथों की पुनर्प्राप्ति करना है, जो अब केवल भोट (तिब्बती) अनुवादों में सुरक्षित हैं। इस ज्ञान-परंपरा को जन-सामान्य तक पहुँचाने के लिए हिंदी से बेहतर और कोई सेतु नहीं हो सकता। आज जब हम हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रोत्साहित करते हैं, तो हमारा उद्देश्य इन प्राचीन ग्रंथों के दर्शन को आधुनिक भारत की भाषा में प्रस्तुत करना भी है। संस्थान द्वारा किए जा रहे अनुवाद कार्य में हिंदी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दर्शन के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम बनाती है।

भारत सरकार की राजभाषा नीति का पालन करना हमारा प्राथमिक कर्तव्य है। हमारे संस्थान में प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ शैक्षणिक गतिविधियों में भी हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। 'राजभाषा अधिनियम' की धाराओं का अनुपालन केवल कागजी कार्रवाई तक सीमित न रहकर हमारी कार्यशैली का हिस्सा बन चुका है। संस्थान में आयोजित होने वाली हिंदी कार्यशालाएं, 'हिंदी पखवाड़ा' और विभिन्न प्रतियोगिताएं इस बात का प्रमाण हैं कि हमारे छात्र और कर्मचारी इस भाषा के प्रति कितने सजग हैं। हिंदी दिवस एवं राजभाषा सप्ताह के अवसर पर आयोजित निबंध, कविता एवं वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में हमारे छात्रों की भागीदारी उत्साहजनक रही है। विशेष रूप से वे छात्र, जिनकी मातृभाषा तिब्बती है तथा जो भूटानिक नेपाल और लद्दाख आदि सीमावर्ती छात्र हैं, वे हिंदी में अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं, तो वह दृश्य 'अनेकता में एकता' का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है।

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा और संस्कृति से होती है। भाषा केवल संवाद का माध्यम ही नहीं, बल्कि समाज की आत्मा भी होती है। भारत जैसे बहुभाषी और विविध संस्कृति वाले देश में 'हिंदी' वह सूत्र है, जो उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम को भावनात्मक रूप से जोड़ती है। राजभाषा हिंदी का संवर्धन केवल संवैधानिक दायित्व नहीं है, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखने का एक अनुष्ठान है।

आज जब हम वैश्वीकरण के युग में जी रहे हैं, तब हिंदी की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को मान्यता दिलाने के प्रयास चल रहे हैं, और विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन केंद्र स्थापित हो रहे हैं। यह हिंदी की वैश्विक स्वीकार्यता का प्रमाण है। हमारा संस्थान, केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, बौद्ध दर्शन एवं तिब्बती अध्ययन का विश्वप्रसिद्ध केंद्र है। यद्यपि संस्थान में तिब्बती, संस्कृत, पालि एवं अन्य प्राचीन भाषाओं का गहन अध्ययन होता है, तथापि प्रशासनिक कार्यों, शैक्षणिक चर्चाओं एवं प्रकाशनों में हिंदी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है।

मैं संस्थान के सभी संकाय सदस्यों, अधिकारियों, कर्मचारियों और विशेष रूप से 'राजभाषा कार्यान्वयन समिति' को इस सुंदर पत्रिका के संपादन के लिए बधाई देता हूँ। एक पत्रिका केवल पन्नों का संग्रह नहीं होती, वह संस्थान की बौद्धिक प्रगति का दर्पण भी होती है।

अंत में, मैं यही कहूँगा कि हिंदी का सम्मान देश का सम्मान है। आइए, हम सब मिलकर संकल्प लें कि हम अपने दैनिक जीवन और सरकारी कार्यों में हिंदी को गरिमापूर्ण स्थान देंगे। शांति, करुणा और प्रज्ञा के मार्ग पर चलते हुए हम राजभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते रहेंगे, इसी विश्वास के साथ मैं इस पत्रिका के सफल संपादन की कामना करता हूँ।

प्रो. वङ्छुग् दोर्जे नेगी

डॉ. सुनीता चन्द्रा
कुलसचिव
Dr. Sunita Chandra
Registrar

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

सम्पादकीय

सुधी पाठकों,

राजभाषा-पत्रिका **बोधिप्रभ** के इस अंक के लिए संपादकीय लिखते हुए मुझे आत्मिक आह्लाद की अनुभूति हो रही है। यद्यपि यह संस्थान तिब्बती (भोटी) विद्या एवं संस्कृति के संरक्षण और विकास की दिशा में कार्यरत है, तथापि भारत सरकार की राजभाषा नीति के अनुरूप कार्यालयी कार्यों में हिंदी के प्रयोग को संस्थान निरंतर बढ़ावा दे रहा है। हमारे शिक्षक, कर्मचारी एवं छात्र हिंदी को केवल एक भाषा के रूप में नहीं, अपितु राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक धरोहर की प्राणधारा के रूप में अपनाए हुए हैं। हिंदी भारत की आत्मा है। यह केवल एक भाषा नहीं, अपितु अनेकता में एकता का जीवंत स्वरूप है। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में हिंदी की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को मान्यता दिलाने के प्रयास चल रहे हैं, और विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन केंद्र स्थापित हो रहे हैं। वैश्विक परिदृष्य में यह हिंदी की सार्थकता और स्वीकार्यता का प्रमाण है। इस संस्थान में तिब्बती, संस्कृत, पालि एवं अन्य प्राचीन भाषाओं का गहन अध्ययन होता है। इसके साथ ही हिंदी का प्रयोग प्रशासनिक कार्यों, शैक्षणिक चर्चाओं एवं प्रकाशनों में निरंतर सुदृढ़ और समृद्ध हो रहा है। संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति नियमित रूप से हिंदी कार्यशालाएं आयोजित करती है, हिंदी सप्ताह मनाती है तथा कर्मचारियों को हिंदी टंकण, पत्र लेखन एवं अनुवाद का प्रशिक्षण प्रदान करती है। विगत अनेक वर्षों से हमारे अधिकांश महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हिंदी में भी उपलब्ध कराए गए हैं। भारत के आमजन को बौद्ध दर्शन के ग्रन्थों को हिंदी भाषा में उपलब्ध कराना अत्यंत महनीय कार्य है। संस्थान के लिए हिंदी का प्रयोग न केवल एक प्रशासनिक आवश्यकता है, अपितु सांस्कृतिक निरंतरता को आत्मसात करने का उत्तरदायित्व पूर्ण कर्त्तव्य भी है। हमारे छात्र, जो तिब्बत, हिमालयी क्षेत्र एवं विश्व के विभिन्न भागों से आते हैं, हिंदी सीखकर भारतीय संस्कृति से जुड़ते हैं। हिंदी उनके लिए भारत की आत्मा से संवाद का द्वार खोलती है। राजभाषा की

पत्रिका 'बोधिप्रभ' जैसे प्रकाशन हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये पत्रिकाएं न केवल सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहित करती हैं, अपितु सृजनशीलता को भी बढ़ावा देती हैं। हिंदी का प्रयोग न केवल संवैधानिक कर्तव्य है, अपितु सांस्कृतिक गौरव के उन्नयन का पवित्र दायित्व भी है।

मैं पत्रिका हेतु सामग्री प्रदान करने वाले लेखकों, केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति एवं सभी अधिकारियों/कर्मचारियों को धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने में अपना योगदान दिया है। मैं सुधी पाठकों/लेखकों से पत्रिका को और अधिक उपयोगी बनाने का सुझाव आमंत्रित करती हूँ और आशा करती हूँ कि आपके सुझावों से हमारी पत्रिका का गुणात्मक उन्नयन होगा। साथ ही मैं बोधिप्रभ पत्रिका के सफल प्रकाशन की कामना करती हूँ।

डॉ. सुनीता चन्द्रा

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
1.	जीवन का उद्देश्य : महायानी दृष्टि	प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी	1-6
2.	बौद्ध अष्टमंगल : संक्षिप्त परिचय	डॉ. विजयराज वज्राचार्य	7-9
3.	भातीय दर्शन में प्रमाण-लक्षण	डॉ. छुलटिम सङगे	10-18
4.	देवदत्त बुद्ध होने के लिए नहीं होते	प्रो. उमेश प्रसाद सिंह	19-24
5.	अप्प दीपो भव	हेमन्त शर्मा	25-30
6.	रिवालसर-पद्म-सरोवर-तीर्थ का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व	टी. आर. शाशनी	31-42
7.	मेरी भूटान की यात्रा	डॉ. रमेश चन्द्र नेगी (माथस)	43-55
8.	चरथ भिक्खवे-2 रोहिन नदी के साथ चलते हुए	रामसुधार सिंह	56-61
9.	कार्यालयी प्रलेखों का मशीनी अनुवाद	राजेश कुमार मिश्र	62-71
10.	आज के वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का महत्व	श्री भगवान पाण्डेय	72-77
11.	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	डॉ. रवि गुप्त मौर्य	78-92
12.	भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं हिन्दी दलित उपन्यास	डॉ. अनुराग त्रिपाठी	93-97
13.	तुलसी के रामः लोक मंगल के हित प्रगटे मर्यादा पुरुषोत्तम	ओम धीरज	98-100
14.	भटकी ममता	डॉ. अरुण कुमार राय	101-105
15.	नदी का घर	संजय गौतम	106-110
16.	जायस नगर मोर स्थानू	रामजी प्रसाद "भैरव"	111-114

17.	स्वच्छता और स्वास्थ्य : हमारी जिम्मेदारी	दीपंकर त्रिपाठी	115-119
18.	तीर्थाटन और पर्यटन में अंतर	हृदयनारायण दीक्षित	120-122
19.	सफर लम्बा है	प्रो. बाबूराम त्रिपाठी	123-130
20.	उसने कहा था	चंद्रधर शर्मा गुलेरी	131-142
21.	मानव जीवन-मूल्य और संस्कृति	एस. पी. सिंह	143-149
22.	प्रकृति और हम	दिनेश कुमारी	150-155
23.	गत पचास वर्ष में अरुणाचल	वाङ्छेन गम्पो	156-157
24.	मैं बड़बड़ाहट का एक समन्दर हूँ	राजेन्द्र राजन	158
25.	भिक्षु	एम. एल. सिंह	159-160
26.	दस्तक	अमित कुमार विश्वकर्मा	161
27.	राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा आयोजित कार्यक्रमों का विवरण		162-168

•

नोट - पत्रिका में दी गई रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं।

जीवन का उद्देश्य : महायानी दृष्टि[1]

—प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी—

सच तो यह है कि मुझे इस विषय पर लिखने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि कम से कम मैं स्वयं से परोक्ष नहीं हूँ। मैं अपने से अच्छी तरह परिचित हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा विचार और अनुभव क्या है? मैं गत 10-12 वर्षों से भिक्षु दीक्षा से दीक्षित हूँ। यहीं तक ही सीमित नहीं, अपितु बोधिचित्त की दीक्षा से भी शायद सन्तुष्ट न होकर कालचक्र आदि अनेक उत्कृष्ट अनुत्तर तन्त्रों की दीक्षा से भी दीक्षित हुआ हूँ। लेकिन मैं देख रहा हूँ मेरी चित्तवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। ऐसा क्यों? पुनः इसका अभिप्राय यह भी नहीं है कि मैं इस ओर एक क्षण भी प्रयास नहीं करता। मैं ही क्यों, मैं समझता हूँ कि आधी से भी अधिक जनता किसी न किसी रूप से अध्यात्म की ओर झुकी है। किसी न किसी धर्म की अनुयायी है। दूसरी ओर वैज्ञानिकों ने, जो भौतिक पदार्थों पर अपने विश्लेषण और प्रयोग किये हैं, उससे 200-300 वर्षों के अन्दर ही आकाश और पृथ्वी के अनेक रहस्यों को जानकर उनका उपयोग मानव हित में हो रहा है। लेकिन हजारों वर्षों से चले आ रहे हमारे अध्यात्म की क्या स्थिति है ?- यह विचारणीय है। विशेषकर उन लोगों के लिए तो और भी अधिक विचारणीय है जो अध्यात्म और धर्म-दर्शन के नाम पर अपना जीवन-निर्वाह कर रहे हैं या मेरे जैसे जो लोग धर्म का चोला पहने हैं। यदि हम लोग तटस्थ होकर इस पर विचार नहीं करते हैं तो हम किसी भी तरह से ईमानदारी से अपना कर्त्तव्य पालन नहीं कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्या हमें बीच का जीवन छोड़ नहीं देना चाहिए ? जिससे कोई उचित मार्ग का प्रादुर्भाव हो। क्योंकि मेरी दृष्टि में मानव समाज में अशान्ति और संघर्ष का एक मूल कारण आचरण, विचार और वाणी के बीच की खाई है।

पारमार्थिक दृष्टि- जीवन का उद्देश्य क्या है? मोक्ष ? सर्वज्ञत्व ? या सप्तावयव से युक्त वज्रधरपद या उसकी भूमि ? फिर प्रश्न उठता है मोक्ष किसके लिए? उसको खोज निकाला जाय जो मोक्ष चाहता है। यदि खोज कर्त्ता अहं, मैं का अस्तित्व ही नहीं तो मोक्ष और सर्वज्ञता किसके लिए और कैसे ? गत कई वर्षों से मोक्ष का अभिलाषी 'मैं' की खोज में हूँ, लेकिन न इस शरीर से बाहर उसका स्वतन्त्र कोई अलग अस्तित्व प्राप्त हो रहा है और न शरीर के भीतर,

1. 'हिमालयी संस्कृति स्मारिका', पंचदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी, 3-7 अक्टूबर, 1989 केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, चोगलमसर, लेह-लद्दाख से प्रकाशित।

न सिर से पाद तल तक। कण-कण को भेदन कर देखता हूँ तो भूतों के कणों का एक संघात जो हेतु और प्रत्यय की सापेक्षता का पिण्ड मात्र है, उसके अतिरिक्त 'अहं' नाम की कोई एक स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। जब चित्त को देखता हूँ तो वह भी भूत, भविष्य आदि अनेक क्षणिक समूह के अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्र कूटस्थ या नित्य वस्तु के रूप में नहीं दिखती जिसके लिए मोक्ष या किसी उद्देश्य की प्राप्ति करनी हो। यदि कोई आत्मा या अहं नाम की नित्य या कूटस्थ वस्तु एवं पदार्थ है भी तो उसका अन्तिम उद्देश्य मोक्ष से क्या सम्बन्ध है? वह तो नित्य है? नित्य है तो उसे अच्छे और बुरे का क्या असर होगा! जब-जब भी 'मैं' (अहं) पर विचार करता हूँ तो अनन्त विस्तृत रेगिस्तान में पहुँचता प्रतीत होता हूँ। न कहीं मंजिल है, न पथ है और न स्वयं पथिक। विस्मित होता हूँ, खोजता हूँ अब क्या करूँ? मेरे मोक्ष का प्रयास किसके लिए जबकि खोज कर्ता 'मेरा' का ही कुछ अस्तित्व नहीं तो मैं के अभाव में मेरा मोक्ष भी कैसे और किसलिए?

सांवृत्तिक दृष्टि- ऐसा लगता है कि मुझे अब और आकाशगंगा में उड़ान नहीं भरना है। वहाँ खो जाने और विस्मृत होने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मैं जिस धरातल पर हूँ, यहीं मुझे रहना है, यहीं का मुझे सोचना है। जब स्वयं और स्वयं जैसे कितने लोग दर-दर ठोकरें खा-खाकर मानों गर्म रेत पर पड़ी मछली की तरह छटपटा रहे हैं तो उनका उद्धार कैसे होगा? उन्हें कैसे छुटकारा दिलाया जाय? हाँ, यहाँ परमार्थ के सम्यक् बोध से ही हम संवृति में अपना सम्यक् मूल्य निर्धारण कर सकते हैं तथा जीवन के उद्देश्य की स्थापना कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। इसलिये मैं समझता हूँ परमार्थ-सत्य ही संवृति-सत्य को सम्यग् रुप से जानने का एक मार्ग है। अब प्रश्न उठता है कि विश्व समाज में जो दुःख और अशान्ति है उससे छुटकारा कैसे मिले? शायद यदि कोई सर्वव्यापी उद्धारकर्त्ता होता, बशर्ते वह निर्दयी और पक्षपाती भी न होता, तो प्राणियों के अन्दर विद्यमान यह छटपटाहट कब की दूर हो गयी होती। इसलिये मुझे तो पूरा विश्वास है कि ऐसा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, ईश्वरनुमा कोई नहीं है, वैसा उद्धारकर्ता नहीं है जो अपने महाबल से हमारा उद्धार करे। मनुष्य स्वयं अपना मालिक है, कोई दूसरा नहीं। अपना उद्धार स्वयं अपने को करना होगा। इसलिए मानव-जीवन की प्राप्ति अति दुर्लभ हो या न हो, मनुष्य का जीवन अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ तो अवश्य ही है। क्योंकि यदि वह अपने विवेक से काम ले तो प्राणिमात्र का यहाँ बहुत हित कर सकता है। ऐसी स्थिति में सामर्थ्यसम्पन्न मानव जीवन की प्राप्ति भी निश्चित ही दुर्लभ हो जाती है। और सामर्थ्य ही मनुष्य की पहचान है। मूल्यवत्ता, सामर्थ्य और पुरुषार्थ में विद्यमान हैं। हमें उनकी पहचान की आवश्यकता है। यदि हम अपने को 2 वर्ष के बच्चे के हाथ में पड़े 100 रु. के नोट को

एक कागज के सदृश खेल और मनोरंजन का विषय बनाकर रख दें तो जीवन व्यर्थ हुआ। लेकिन वही रुपया किसी समझदार व्यक्ति के हाथ लगे और सही विवेक से काम ले तो पैसे का मूल्य तो बना ही, उसके उपयोग से अपना या अन्यों का भी हित हो सकता है। इसलिए जहाँ एक ओर अदना-सा आदमी जो कुछ भी नहीं है, वहीं दूसरी ओर मनुष्यरूपी शरीर को धारण कर, महामानव बुद्ध भी बन जाता है। जीवन का अर्थ और उद्देश्य भी क्या है! बस, मानव समाज में स्वयं अपनी दुर्लभता को प्रकट कर रुपये की भाँति अपना मूल्य निर्धारण कर उससे मानव समाज का हित करना ही तो है। मूल्य का निर्धारण मानव समाज करता है। मुद्रा नोट स्वयं अपने में क्या है? मात्र कागज ही तो है। उसी प्रकार मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन भी क्या है? मात्र कागज सदृश ही तो है। यदि उस कागजरूपी मनुष्य का मूल्य बनाना है तो उसे समाज के हित में अपने को प्रकट करना होगा। मेरी दृष्टि में व्यक्ति एक इकाई है। क्योंकि व्यक्ति का जीवन ज्यादा से ज्यादा 80-90 वर्ष है। वह अनित्य है। लेकिन दूसरी ओर हमारे मानव समाज का जीवन तो अनन्त है। ऐसी स्थिति में इकाई का क्या महत्त्व हो सकता है? विशेषकर उस स्थिति में जब व्यक्ति स्वार्थ में अपना जीवन निकाल दे। महायानियों के मत संस्थापकों ने जीवन के उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि- **"चित्तोत्पादः परार्थाय सम्यक्सम्बोधिकामता।"**

सर्वोच्च उद्देश्य 'परार्थ'- परार्थ के लिए बोधि की कामना करना। यही महायानियों के जीवन का उद्देश्य है। यहाँ यह विचारणीय है कि यदि परार्थ के लिए बोधि की कामना करना है तो क्यों न आरम्भ से ही परार्थ किया जाय? क्या बोधि की प्राप्ति के बिना परार्थ नहीं हो सकता ? अन्ततोगत्वा जब हमें परार्थ करके पारमिताओं का आचरण करके ही उसे प्राप्त करना है तो परार्थ को ही क्यों न जीवन का उद्देश्य स्वीकारा जाये ?

परार्थ का स्वरूप महायानी सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ भी हो मेरी अपनी व्यक्तिगत मान्यता है कि निष्पक्ष रूप से अपने कर्तव्य का पालन करते हुए ज़रूरतमन्द की सेवा करना ही वास्तविक परार्थ है। अन्यथा व्यक्ति के लिए सेवा की प्रक्रिया या तो समाज द्वारा थोपी गयी मज़बूरी बन जायेगी या स्वार्थ से प्रेरित चापलूसी। परार्थ से ही स्व तथा पर दोनों का हित हो सकता है; व्यक्ति सुखी बन सकता है। व्यक्ति जब तक समाज हितैषी नहीं बनता तब तक वह शान्त एवं सुखी कैसे हो सकता है? क्योंकि वह समाज में रहता है, समाज आश्रित है। उसे शान्ति सुख, सम्मान और इज्जत समाज से ही हासिल करनी है। अतः जब तक वह समाज के विषय में नहीं सोचता तब तक उसे क्या अधिकार है कि वह समाज से मान-मर्यादा और इज्जत प्राप्ति की कामना करे। कैसी विडम्बना है कि मनुष्य समाज में सम्मान तो चाहता

है लेकिन समाज का हित करना नहीं चाहता। व्यक्ति जिस सीढ़ी से ऊँचे पद पर पहुँचा होता है, उस सीढ़ी को पुनः गिरा देना चाहता है, ताकि कोई दूसरा चढ़ न सके। धर्म के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में और समाज के अन्य क्षेत्रों में कितने ऐसे पदाधिकारी हैं। किसी पोप ने अपने सत्य अनुभूति को प्रकट करते हुए कहा था कि, "अपने पोप होने से पहले, मैं पोप के भूल न करने का विश्वास करता था, किन्तु अब मैं कुछ और ही अनुभव करता हूँ।" ऐसा क्यों? यद्यपि इतना अनुभव करना भी बहुत है। अन्यथा हर अधिकारसम्पन्न व्यक्ति व्यक्तिगत हित में दूसरों का शोषण करना चाहता है। ऐसी स्थिति में समाज क्या सुखी हो सकता है? नहीं, कथमपि नहीं। जब तक समाज सुखी नहीं होगा, व्यक्ति के सुख की अपेक्षा करना मृगमरीचिका होगी क्योंकि व्यक्ति समाज का एक अंग है।

हम लोगों का चित्त सने हुए आटे की तरह है। उससे शान्त, रौद्र आदि किसी भी रूप में व्यक्ति का मुखड़ा निर्मित किया जा सकता है। मानव चित्त का यह गुण है कि इसे किसी भी धारा में प्रवृत्त किया जा सकता है। यदि इसे भौतिक खोज में लगाये तो यही मानव महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन भी बन सकता है। करुणा और मैत्री की ओर अपने को प्रवृत्त करे तो बुद्ध और ईसा भी बन सकते हैं। वही अपने को राग में लिप्त करे तो आज अपने को आधुनिक कहने वाले लोग पशु की तरह आचरण करने वाला मनुष्य भी बन सकता है। क्या-क्या करने लगेंगे, क्या कोई कल्पना कर सकता है? अतः महायानी आचार्यों ने मनुष्यों को सम्पूर्ण प्राणिमात्र के हित में उत्सर्ग कर पारमिताओं का अनुशीलन करने के लिए प्रेरित किया है। शिक्षा समुच्चय में कहा गया है, **"दानं हि बोधिसत्त्वस्य बोधिरिति"**। सांसारिक दुःख का मूल सर्व परिग्रह है, अतः अपरिग्रह द्वारा भव-दुःख से विमुक्ति मिलती है। शील का अर्थ है प्राणातिपात आदि सभी गर्हित कार्यों से चित्त की विरति । क्षान्तिपारमिता को स्पष्ट करते हुए बोधिचर्यावतार में कहा है-

भूमिं छादयितुं सर्वां कुतश्चर्म भविष्यति।
उपानच्चर्ममात्रेण छन्ना भवति मेदिनी॥ (5/13)

अर्थात् यह संभव नहीं होगा कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर पैर में चुभने वाले काँटों से बचने के लिए चर्म बिछाया जाय। यदि उसके स्थान पर चर्म का जूता पहना जाये तो आप किसी भी काँटों वाली भूमि में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। उसी प्रकार हम यदि बाहर उत्पन्न या विद्यमान दोषों का नाश करने में लगे रहे तो उसमें कभी सफल नहीं होंगे। पहले स्वयं को दोषों से विमुक्त करना होगा।

महायानी दृष्टि से जीवन में सुख-दुःख जो भी आये, उसे यथावत् स्वीकार करना तथा भूतकाल का भार न ढोते हुए और भविष्य के काल में काल्पनिक विचारों को त्यागते हुए वर्तमान प्रभास्वर स्वरूप में स्थित होना ही ध्यान और प्रज्ञापारमिता है। परोपकारी बोधिसत्त्वों की चर्या को अपनाने वालों को शान्तिदेव विरचित बोधिचर्यावतार, शिक्षा-समुच्चय और नागार्जुन विरचित रत्नावली आदि का अवलोकन करना चाहिए। सारांश में हम कह सकते हैं कि एक महायानी सम्पूर्ण प्राणिमात्र को अपनी माँ समझता है। वह ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहता जिससे प्राणियों का अहित हो। वह प्राणियों को बुद्ध के रूप में देखता है। सत्त्वों या प्राणियों की सेवा ही बुद्ध की पूजा है। बुद्ध ने सभी सत्त्वों को अनुगृहीत किया है, अपनाया है। अतः हम प्राणियों का अनादर कर बुद्धों को कैसे खुश कर सकते हैं। पुत्र को सताकर माता को खुश नहीं किया जा सकता। विनयपिटक में स्वयं बुद्ध कहते हैं- "जो मेरी सेवा करना चाहते हैं, वे बीमारों की सेवा करें"....... आदि। अतः प्राणियों की सेवा से ही तथागत खुश होंगे। इसी से स्वार्थ की सिद्धि भी होगी तथा लोक का दुःख भी इसी से नष्ट होगा। जैसा कि बोधिचर्यावतार में कहा है-

आत्मीकृतं सर्वमिदं जगत् तैः कृपात्मभिर्नैव हि संशयोऽस्ति।
दृश्यन्त एते ननु सत्त्वरूपास्त एव नाथाः किमनादरोऽत्र॥ (6/126)

मानव समाज की सेवा का संकल्प और उसके आचरण के बिना समाज सुखी नहीं बन सकता है। समाज में शान्ति की कामना करनी है तो महायानियों के आचार्यों द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुकरण करना होगा। व्यक्ति महायान का आचरण भी तभी सम्यक् रूप से कर सकेगा जब नैरात्म्य या वस्तुओं की शून्यता के स्वरूप को समझेगा या परमार्थसत्य से सम्यक् रूप में अवगत होगा। जब तक धर्मों की निःस्वभावता को नहीं समझेगा तब तक उसका चित्त किसी न किसी धर्म में आसक होगा। जो विस्तार को प्राप्त कर स्वार्थ के गर्त में गिर जायेगा और जहाँ स्वार्थ प्रकट हुआ वहाँ द्वन्द्व शुरु होगा। उसका परिणाम अशान्ति होगी। निर्द्वन्द्व और निष्पक्ष मन से मानव-समाज की सेवा करने से ही समाज सुखी एवं सम्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। सारांश में, महायानी साधक का जीवन का उद्देश्य एवं आदर्श यद्यपि अपने में महान है, लेकिन जब तक जीवन में इसकी महानता सिद्ध नहीं होगी तब तक हम उसे आत्मसात न कर सकेंगे। कामना तो अनन्त प्राणियों के उत्कर्ष की करें और प्रयोग में एक व्यक्ति की समृद्धि को देखकर भी जलने लगे तो जीवन के लिए सुख कुछ भी अर्थ नहीं रहेगा। अतः समझदार लोगों से, और विशेषकर अपने को बौद्ध कहने वालों से, मेरा अंजली

जोड़कर निवेदन होगा कि वे धर्म और दर्शन को अपने जीवन में उतारें। मात्र वाणी-विलास और जीवन-यापन का साधन न बनावें। अन्यथा हम भी समाज में स्वार्थी कहलायेंगे। युवाओं से यह निवेदन करूँगा कि वे बृहत समाज की सेवा के लिए पहले गहरा अध्ययन करें तथा अपने अन्दर विद्यमान घोर स्वार्थ की वृत्तियों, अज्ञानता, भय और समाज की रूढ़िगत विचारधाराओं को, जिनसे कमज़ोर वर्गों और दलितों का शोषण हो रहा है, तोड़ने की प्रतिज्ञा करें॥ जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है व्यक्ति का अपना क्या अस्तित्त्व है? लेकिन समाज में जो कुरीतियाँ हैं वे हमारे चले जाने के बाद भी समाज में बनी रहें तो एक। मनुष्य के रूप में जन्म लेने के कारण हमें धिक्कार होगा। हम भी इन कुरीतियों के भागीदार होंगे, क्योंकि हमने भी इसे सहन किया और स्वीकारा है। युवाओं को चाहिये कि वे निःस्वार्थ मन से समाज की सेवा की प्रतिज्ञा लें, सम्पूर्ण जीवन समाज के लिए समर्पित करें; काय, वाक्, चित्त द्वारा जो भी कार्य सम्पन्न हो, वह समाज के हित में हो, ऐसी भावना करें। इससे आप भी एक प्रकार से अमर हो सकते हैं, क्योंकि समाज अमर है।

अन्त में तथागत बुद्ध से यही प्रार्थना है कि सम्पूर्ण मानव जाति का हर श्वास-प्रश्वास मानव समाज के हित में हो, जो विचार मानव जाति के लिए बुद्ध के मन में उत्पन्न हुआ था, वही सभी के मन में उत्पन्न हों और उसका आचरण करें तथा उसी के लिए जीयें। यही सभी का जीवन उद्देश्य बने। तदर्थ मनुष्यों को कठिन परीक्षा देने की क्षमता हासिल हो और आदिकाल से प्राणियों का अपने-अपने ऊपर जो ऋण हैं, उससे उऋण हों।

शायद यहाँ प्रस्तुत किये गये विचारों में विरोधाभास हो, लेकिन लेखक का आग्रह है कि वाक्यों की संरचना पर न जाकर उसके पीछे छिपी भावना को महत्त्व दिया जाय। उस भावना के सही और गलत होने या न होने की स्थिति पाठकों के चिन्तन एवं परख पर निर्भर है। सर्वमंगलम्।

निबन्धावली से साभार — के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

बौद्ध अष्टमंगल : संक्षिप्त परिचय

—डॉ. विजयराज वज्राचार्य—

परिचयः

महायानी बौद्धधर्म, संस्कृति एवं परम्परा में अष्टमंगल अर्थात् आठ प्रकार के शुभ चिह्न अत्यन्त महत्त्व एवं पवित्र माने जाते हैं । ये प्रतीक बौद्ध अनुयायियों के जीवन में सौभाग्य, समृद्धि, शान्ति एवं आध्यात्मिक उन्नति का संकेत देते हैं। बौद्ध परम्परा में इन्हें बुद्ध के उपदेश और ज्ञान से जुड़ा माना जाता है, जो साधकों को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। इन आठ प्रतीकों (अष्टमंगल चिह्नों) में शंख= धर्म का प्रसार एवं शान्ति का स्वर, ध्वज = अज्ञान के ऊपर विजय, छत्र= सुरक्षा एवं संरक्षण, कलश= समृद्धि एवं असीम आशीर्वाद, पद्म= पवित्र एवं मुक्ति, दो सोने की मछली = स्वतन्त्रता और सौभाग्य, अनन्त गाँठ= ज्ञान और करुणा के अनन्त सम्बन्ध, और धर्मचक्र = धर्म के मार्ग और मोक्ष आते हैं। ये अष्टमंगल के प्रतीक प्रायः गोन्पाओं, मठों, मन्दिरो, थंका चित्रों, विविध रंगो के खतक और धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग में देखे जाते हैं, ये प्रतीक बाह्य सौंदर्य, आन्तरिक शुद्धता और आध्यात्मिक अर्थ का समन्वय दर्शाते हैं। उनकी नामावली–

1. शंख 2. ध्वजा 3. छत्र 4. मीनयुगल
5. कमल 6. अनन्त गाँठ 7. रत्नकलश 8. धर्मचक्र।

अष्टमंगल अर्थ:

1. शंख

क. यह सफेद शंख दायीं ओर घूमा हुआ होता है।

ख. यह बुद्ध की वाणी, धर्मदेशना एवं सत्य की ध्वनि(नाद) को दर्शाता है।

ग. इसकी ध्वनि(आवाज) संपूर्ण संसार में गूंजने वाली बताई जाती है।

2. ध्वजा

क. विजय ध्वजा असत्य, दुःख और नकारात्मकता पर सत्य और धर्म की विजय का प्रतीक है।

ख. यह ध्वजा आध्यात्मिक उन्नति को दर्शाता है।

3. छत्र

क. यह छत्र (छतरी) सुरक्षा, रक्षा और आश्रय का प्रतीक है।

ख. यह धर्म में शरण लेने की भावना को प्रकट करता है।

4. मीनयुगल– (दो मछलियाँ)

क. दो मछलियाँ जीवन की स्वतन्त्रता, जन्म-मरण के चक्र से पार पाने की क्षमता का संकेत देती हैं।

ख. यह मुक्ति एवं स्वतन्त्र चेतना का प्रतीक है।

5. कमल

कमल फूल कीचड़ में उत्पन्न होकर भी पवित्र और सुन्दर होता है। यह पवित्रता, ज्ञान और निर्वाण को दर्शाता है।

6. अनन्त गाँठ (Endless Knot)

इसका कोई आरम्भ या अन्त नहीं होता। यह कारण और परिणाम (कर्म), करुणा और प्रज्ञा के मेल, अनन्तता और पारस्परिक सम्बन्ध को दर्शाता है।

7. रत्नकलश

यह धन, आयु और स्वास्थ्य प्रदान करने वाला कलश है।

यह आध्यात्मिक सम्पत्ति, दीर्घायु और अमरत्व का प्रतीक है।

8. धर्मचक्र

आठ तीलियों वाला धर्मचक्र बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है।

यह उस क्षण को याद दिलाता है जब बुद्ध ने धर्म का प्रथम उपदेश दिया– जिसे "धर्मचक्र प्रवर्तन" कहा जाता है।

अष्टमंगल प्रतीकों का महात्म्य

1. शंख (धर्म की ध्वनि)-

कहानी के अनुसार जब बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया (धर्मचक्र प्रवर्तन), तो उनकी वाणी शंख की ध्वनि की भांति सम्पूर्ण संसार में गूंजी। इसलिए शंख धर्म का स्वर और शिक्षा के प्रसार का प्रतीक बन गया।

2. ध्वजा (विजय का प्रतीक)-

प्राचीन भारत में राजा युद्ध जीतने पर विजय ध्वज स्थापित करते थे। बौद्ध परम्परा में यह ध्वजा अज्ञान और पाप पर धर्म, सत्य और ज्ञान की विजय का प्रतीक है।

3. छत्र (रक्षा और करुणा)-

प्राचीन काल में छत्र राजाओं को सम्मानस्वरूप दिया जाता था। बौद्धधर्म में यह दर्शाता है कि सभी जीव धर्म और करुणा की छाया में सुरक्षित रहते हैं।

4. मीनयुगल (मुक्त चेतना)-

जैसे मछलियाँ जल के बिना जीवित नहीं रह सकतीं, वैसे ही वे जब स्वतन्त्र होकर तैरती हैं तो जीवन सुखमय होता है। यह प्रतीक जन्म-मरण के सागर से पार होने और चेतना की मुक्ति का संदेश देता है।

5. कमल (पवित्रता का प्रतीक)-

कमल कीचड़ में उगने के बावजूद सुन्दर और सुगन्धित होता है। यह दर्शाता है कि संसार में विकार और अज्ञान होते हुए भी, धर्म के मार्ग पर चलकर पवित्रता और ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

6. अनन्त गाँठ (कर्म और संबंध)-

इस गाँठ की कोई शुरुआत या अन्त नहीं होता। यह कर्म के सिद्धान्त, करुणा और बुद्धिमत्ता की एकता और सभी चीजों के आपसी सम्बन्ध को प्रकट करता है। यह जीवन की निरन्तरता का प्रतीक है।

7. रत्नकलश (अमृत और समृद्धि)-

देवताओं की कथाओं में यह कलश अमृत से भरा होता है। जो इसे पीता है उसे दीर्घायु, समृद्धि और शान्ति प्राप्त होती है। बौद्ध दृष्टिकोण से यह आध्यात्मिक सम्पदा और पुण्य का प्रतीक है।

8. धर्मचक्र (ज्ञान और मुक्ति का मार्ग)-

बुद्ध ने सारनाथ, वाराणसी में प्रथम उपदेश दिया जिसे "धर्मचक्र प्रवर्तन" कहा जाता है। धर्मचक्र की आठ तीलियाँ अष्टांगिक मार्ग को दर्शाती हैं, जो मुक्ति और निर्वाण की ओर ले जाती है।

निष्कर्ष:

अतः अष्टमंगल केवल सजावटी प्रतीक नहीं हैं, बल्कि ये गहरे दार्शनिक अर्थ, कथाओं और शिक्षाओं से जुड़ी हुई हैं। ये प्रतीक धर्म, पवित्रता, विजय, दीर्घायु, ज्ञान और मुक्ति को दर्शाने वाले परम शुभ संकेतक हैं।

द.बौ.ग्र.शो.वि.
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9455695530

भातीय दर्शन में प्रमाण-लक्षण

—डॉ. छुलटिम सङ्गे—

भारतीय दर्शन में प्रमाण का लक्षण व्यक्त करने से पूर्व इस शास्त्र के इतिहास के बिन्दु पर प्रकाश डाले तो, प्राचीन भारत में ज्ञान मीमांसा का आरम्भ कब हुआ, इसे निश्चित रूप से कहना कठिन है, परन्तु **जैकोबी के अनुसार** न्यायिक मत से इसका समय दूसरी और पाँचवीं शताब्दी ई० के मध्य काल माना जाता है।[1] न्यायदर्शन की रचना न्यायसूत्र के प्रणेता मर्हषि गौतम ने की जिन्हें विद्वान्, अक्षपाद के नाम से भी जानते हैं। बौद्ध-आचार्य नागार्जुन ने अपनी <<वैदल्यनामप्रकरण>> रचना में न्यायसूत्र का खण्डन किया।[2] 400 ई० में वात्स्यायन ने न्यायभाष्य के द्वारा इसका प्रत्युत्तर दिया। पाँचवी शताब्दी में बौद्ध आचार्य दिङ्नाग ने <<प्रमाणसमुच्चयनामप्रकरणम्>> ग्रन्थ की रचनकर न्यायभाष्य का खण्डन किया जिसका खण्डन (550 ई०) में आचार्य उद्योतकर ने न्यायवार्तिक[3] में किया। सातवीं सदीं में धर्मकीर्ति ने अपने प्रमाणवार्तिक आदि में न्यायवार्तिक[4] का खण्डन किया। ततपश्चात् (841 ई०) में वाचस्पति मिश्र ने न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका में धर्मकीर्ति द्वारा रचित प्रमाणवार्तिक का खण्डन किया।[5] शान्तरक्षित ने भी (725-788) तत्त्वसंग्रह के द्वारा न्यायवार्तिक का खण्डन किया। फिर (दसवीं सदीं) में बौद्धाचार्य ज्ञानमिश्र ने 'द्वादश निबन्धः' में वाचस्पति मिश्र का खण्डन किया। उदयनाचार्य ने (975-1050) न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकापरिशुद्धि, न्यायकुसुमाञ्जलि आदि ग्रन्थों द्वारा बौद्धाचार्य ज्ञानमिश्र का खण्डन किया। 11वीं शताब्दी में बौद्धाचार्य

---

1. Journal of the American Oriental Society 1911 (P2. 13)
2. दिङ्नाग ने अपने ग्रन्थों में दूसरे दर्शनों और वात्स्यायन के भाष्य पर पाशुपताचार्य उद्योतकर भारद्वाज को सिर्फ उसका उत्तर देने के लिए न्यायवार्त्तिक लिखना पडा। राहुल सांकृत्यायन का <बौद्ध दर्शन> पृ. 123
3. यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद ।
   कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतुः करिष्यते तस्य मया निबन्धः । न्यायवार्तिक 1.1.1
4. धर्मकीर्त्ति की प्रतिभा का लोहा उनके पुराने प्रतिद्वंदी भी मानते थे। उद्योतकर (550 ई०) के "न्यायवार्तिक" को धर्मकीर्त्ति ने अपने तर्कशास्त्र से इतना छिन्न-भिन्न कर दिया था। राहुल सांकृत्यायन का <बौद्ध दर्शन> पृ.124 तथा तर्कभाषा भूमिका (तिब्बती) पृ. 35
5. वाचास्पति ने अपने उसपर टीका करके (धर्मकीर्त्ति) "तर्कपंक में- मग्न उद्योतकर की अत्यन्त बूढी गायों के उद्धार करने" का पुण्य प्राप्त करना चाहा । राहुल सांकृत्यायन का <बौद्ध दर्शन> पृ.123

तन्त्रकीर्ति ने बारह प्रमाण शास्त्र लिखे और विशेष कर उदयननिराकरणम् नाम से खण्डन किया। तब से लेकर अब तक कोई उस तरह का खण्डन मण्डन परक शास्त्र उपलब्ध नही है।

मुख्य आर्य और उनके ग्रंथ

काल	**आचार्य**	**ग्रंथ / कार्य**	**किसका खण्डन या प्रत्युत्तर**
(ईस्वी)	महर्षि गौतम (अक्षपाद)	न्यायसूत्र	--------
2वीं न.	बौद्धार्चाय नागार्जुन	वैदल्यप्रकरणम्	न्यायसूत्र का खण्डन
400 ई.	वात्स्यायन	न्यायभाष्य	नागार्जुन का प्रत्युत्तर
5वीं श.	दिङ्नाग	प्रसारणसमुच्चय	न्यायभाष्य का खण्डन
550 ई.	उद्योतकर	न्यायवार्तिक	प्रमाणसमुच्चय का खण्डन
7वी श.	धर्मकीर्ति	प्रमाणवार्तिक	न्यायवार्तिक का खण्डन
725 ई.	शान्तरक्षित	तत्त्वसंग्रह	न्यायवार्तिक का पुनः खण्डन
841 ई.	वाचस्पति मिश्र	न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका	धर्मकीर्ति का (प्रमाणवार्तिक) खण्डन
10वीं श.	ज्ञानमिश्र (बौद्धाचार्य)	द्वादश निबन्धः	वाचस्पति मिश्र का खण्डन
975-1050 ई	उदयनाचार्य	न्यायवार्तिकतात्पर्य टीकापरिशुद्धि, न्यायकुसुमाञ्जलि	ज्ञानमिश्र का खण्डन
11 वीं श.	तन्त्रकीर्ति (बौद्धाचार्य)	बारह प्रमाणशास्त्र, विशेषतः उदयननिराकरणम्	उदयन मिश्र का खण्डन

प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति

"प्रमाण" शब्द भारतीय दर्शनशास्त्र का अत्यंत महत्वपूर्ण दार्शनिक पद है। इसके *व्युत्पत्तिगत व्याकरणिक* तथा *दार्शनिक* — तीनों दृष्टियों से अर्थ और सिद्धि समझना आवश्यक है।

संस्कृत धातु से इसका निर्माण इस प्रकार माना गया है —**“प्र + मा +ल्युट् (अन्)”** (धातुः — *मा* धातु, अर्थ — मापनम् (मापना / जानना /

विग्रहः

- **प्र** — उपसर्ग जिसका अर्थ है “विशेष रूप से”, “पूर्ण रूप से”, “साम्यपूर्वक”।
- **मा (धातु)** — धातुपाठ में “माङ् माने” (मापने या जानने के अर्थ में)।
- **ल्युट् (प्रत्यय)** — भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए प्रत्यय।

अतः **प्र+मा+ल्युट् = प्रमाणम्**

शब्दार्थः शाब्दिक रूप से "**प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्**" अर्थात् जिससे किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान (सत्य ज्ञान) प्राप्त होता है, वह प्रमाण कहलाता है ।

दार्शनिक परिभाषाः विभिन्न दर्शनों में इसकी परिभाषाएँ कुछ भिन्न है, पर भाव समान है

1. **न्याय दर्शन:**
2. ***“प्रमाणं नाम यथार्थज्ञानजनकं कारणम्”*** अर्थात् जो यथार्थ ज्ञान उत्पन्न करे, वही प्रमाण है। अर्थात् जो यथा ज्ञान उत्पन्न करे, वहीं प्रमाण है।
3. **मीमांसा दर्शनः**
   प्रमातुः प्रमाणेनार्थे यथार्थज्ञानम् प्रमाण वह साधन है जिससे विषय (अर्थ) का यथार्थ ज्ञान होता है।
4. **बौद्ध दर्शनः**
   अविसंवादकं ज्ञानं संयकज्ञनाम्[1] अर्थात् सच्चा या संवादक ज्ञान को संयक ज्ञान कहा जाता है। प्रमाण ज्ञान से उत्पति हुआ है, तो ज्ञान का अर्थ सनातन में कुछ प्रकार भिन्न भी है।

प्रमाण का स्त्रोत

सांख्य दर्शन के अनुसार प्रमाण स्त्रोत ज्ञान को वैशेषिक, न्याय और बौद्धों ने बुद्धि को माना हैं। बौद्ध एवं बौद्धेत्तर सारे सिद्धान्त प्रमाण के रुप ज्ञान को ही स्वीकार करते हैं, परंतु अर्थ के प्रतिपादन में भिन्न भिन्न ग्रंथों में विभिन्नता होती है।

ज्ञान की परिभाषा

ज्ञान एक सरल प्रत्यय है और इसी सरलता के कारण इसकी संतोषप्रद परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है । सामान्य रूप में ज्ञान का अर्थ विषय का प्रकाशन है।

---

1. न्यायबिन्दुटीका, पृ. 139

वाचस्पति मिश्र ने <<भामती>> में ज्ञान का लक्षण इस प्रकार बताया है- **योऽयमर्थप्रकाशः फलम्** अर्थात् - जिससे ग्रंथ या विषय प्रकाशित होता है, वही ज्ञान है। ज्ञान की तुलना प्रकाश से की जा सकती है। जिस प्रकार प्रकाश होते ही अंधकार का नाश हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ज्ञान रूपी प्रकाश फैलते ही अज्ञान रूपी अंधकार का नाश हो जाता है।

ज्ञान के दो अर्थ-- "ज्ञान" शब्द "ज्ञा" धातु से उत्पति हुई है, जिसका अर्थ है- "जानना"। दार्शनिक परंपरा में "ज्ञान" शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है- **व्यापक और सीमित।**[1]

व्यापक अर्थ

व्यापक दृष्टि से ज्ञान का अर्थ है- चेतना या प्रकाश।

इस दृष्टि के अनुसार केवल उच्च कोटि के प्राणियों में ही नहीं, बल्कि निम्न कोटि के पशुओं तथा वनस्पतियों में भी चेतना का प्रकाश (चाहे गुप्त रूप में ही क्यों न हो) विद्यमान रहता है।

सीमित अर्थ

सीमित दृष्टि से ज्ञान का ग्रंथ है—सविकल्प चेतना, अर्थात् ऐसी चेतना जो निर्णय लेने में समर्थ हो।

व्यापक और सीमित ज्ञान का संबंध

व्यापक और सीमित दोनों ही ज्ञान की अवस्थाएँ हैं । इनमें केवल स्तर-भेद है, कोटि-भेद नहीं।

वस्तुतः दोनों ही स्तरों में चेतना का प्रकाश ही ज्ञान कहलाता है। ऐसा न्याय दर्शन मानता हैं।

प्रमाण का लक्षण

प्रमाता, प्रमेय, प्रमा तथा प्रमाण सभी में 'प्र' पूर्वक 'मा' धातु का प्रयोग है। प्रमाण शब्द में 'प्र' पूर्वक 'मा' धातु से करण अर्थ में 'ल्युट्' (अन) प्रत्यय हुआ है। अतः इसका व्युत्पत्त्यर्थ है-'प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्' (प्रमा अन् प्रमाण = ल्युट् +) जिससे प्रमा की उपलब्धि है। वात्स्यायन के अनुसार प्रमाण का लक्षण है कि **उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानि**[2] ॥ अर्थात् उपलब्धि ज्ञान के साधन प्रमाण हैं। वात्स्यायन ने उपलब्धि शब्द का प्रयोग किया है जो ज्ञान

---

1. *न्यायमीमांसा-प्रमाण*-, अभेदानन्द, दार्शनिक त्रैमासिक, अंक 2, वर्ष 14, अप्रैल 1968, पृष्ठ 75
2. न्यायसूत्त 1/1/3

का वाचक है। साथ ही उन्होंने साधन शब्द का प्रयोग किया है। वात्स्यायन के प्रमाण लक्षण में ऐसा बोध होता है कि किसी भी ज्ञान के सभी प्रकार के साधन प्रमाण कहे जा सकते हैं, परन्तु यह कहना अनुचित है क्योंकि न्याय दर्शन में अव्यभिचारी, असन्दिग्ध आदि विशेषणों से प्रमाण की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है।[1]

जयन्त भट्ट ने भी स्पष्ट किया है कि प्रमाण के साधनत्व सामान्य नहीं अपितु करणसूचक है और करण का लक्षण **साधकतमं करणम्**[2] प्रकृष्ट साधक करण है। इससे फलितार्थ के रूप में प्रमाण का वह प्रसिद्ध लक्षण प्राप्त होता है जो तर्कभाषा जैसे ग्रंथों में पाया जाता है। तर्कभाषा के अनुसार, **प्रमाकरणं प्रमाणम्।**[3] तथा अन्नम्भट्ट के तर्कसंग्रह में 'सर्वाधिक सिद्ध कर्म को **असाधरणं कारणं करणम्**[4] के परिभाषित किया है। इनसे स्पष्ट है कि 'प्रमा' के प्रत्येक साधन या कर्म को कारण नहीं कहा है।

नव्य नैयायिकों ने करण की परिभाषा स्पष्ट करते हुए कहा है कि करण का लक्षण **फलयोगव्यवच्छिन्नं कारणम्** अर्थात् ऐसा कारण जिसके घटित होने पर तुरन्त ही कार्य उत्पन्न हो जाता है। अतः केशव मिश्र के अनुसार, उपपत्ति, प्रमेय आदि को कारण नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इनका अस्तित्व होने पर भी, इन्द्रिय सन्निकर्ष के बिना प्रमा की उत्पत्ति नहीं होती, इन्द्रिय सन्निकर्ष आदि ही प्रमाण को मानते हैं।

सांख्य दर्शन में वाचस्पति मिश्र ने प्रमाण का स्वरूप इस प्रकार निरूपित किया है- **प्रमीयते अनेन इति निर्वचनात् वृत्तिः। बोधश्च पौरुषेय फलं प्रमा तत्साधनं प्रमाणम्।**[5] अर्थात् जिससे प्रमाण ग्रहण किया जाता है उस प्रमा को प्रमाण का साधन समझा जाता है। यह प्रमाण-संदेह ही वह मनोवृत्ति है जो अज्ञात ग्रंथ को विषय बनाती है। मनुष्य में जो बोध है, वही प्रमा है। इस प्रमा का साधन ही प्रमाण है। ऐसा सांख्य मानते हैं। जब हम किसी बाह्य वस्तु को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करते हैं तो हमारी बुद्धि वस्तु के आकार को धारण कर लेती है। बुद्धि यद्यपि जड़ है किन्तु आत्मा के प्रकाश अथवा चेतना से वह चेतनवत हो जाती है। उसका विषय के आकार को धारण करना ही ज्ञान माना जाता है। बुद्धि का विषयाकार

---

1. आव्यभिचारिणीमसन्दिग्धार्थोपलब्धिं विदधती बोधाबोधस्वभाव सामाग्री प्रमाणम्। न्यायमञ्जरी, पृ.28
2. न्यायमञ्जरी, पृ. 29
3. तर्कभाषा पृ. 1
4. तर्कसंग्रह पृ. 99
5. सांख्यतत्वकौमुदी, कारिका 4

होना ही बुद्धिवृत्ति (चित्तवृत्ति) कही जाती है। विषयाकारित बुद्धि में पड़े पुरुष के प्रतिबिम्ब को जो विषय का बोध होता है वही पौरुषेय बोध या प्रमा है।

योगदर्शन में भी **प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।**[1] भाष्यकार ने इसी तरह का विवेचन किया है। इस प्रमा का जो करण बनता है वहीं प्रमाण कहलाता है।

आप्तमीमांसा के अनुसार **तत्त्वज्ञानं प्रमाणम् ।**[2] अर्थात् तत्त्व ज्ञान ही प्रमाण है।

अद्वैत वेदान्त में **प्रमाकरणं प्रमाणम्**[3] ही प्रमाण का लक्षण स्वीकृत किया गया है। प्रमा के लक्षण में उन्होंने अनधिगत और अबाधित विषय के ज्ञान को ग्रहण किया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में विद्वानों में परस्पर मतभेद हैं। वेदान्त के अनुसार प्रमा के करण चक्षु आदि को भी प्रमाण माना जाता है। यद्यपि वेदान्त के अनुसार चैतन्य ही ज्ञान है और वह अनादि है। फिर नेत्रादि उसके कारण कैसे हो सकते हैं। इसके विषय में इनकी मान्यता है कि इसका साधन होने से चक्षु आदि को भी प्रमाण कहा जा सकता है।

बौद्धमत अपने तत्त्व दर्शन पर आधारित प्रमाण और प्रमाण का फल (प्रमा) एक ही तत्त्व मानता है। बौद्धों के अनुसार ज्ञान प्रक्रिया सामान्य क्रिया से नितान्त भिन्न है। यहाँ इन्द्रियाँ हैं, विषय है और विज्ञान है। तीनों में समन्वय अवश्य है, किन्तु कोई किसी पर निर्भर नहीं है। न कोई किसी को उत्पन्न करता है। यहाँ एक ओर विषय संवेदन है और दूसरी ओर विषय का ज्ञान दोनों में सारूप्य है। हम इस ज्ञान को विशिष्ट विषय स्वलक्षण का प्रमाण मान सकते हैं। जैसे बताया है **कि अर्थसारूप्यमस्य प्रमाणम् ।**[4] एक ही तत्त्व प्रमा और फल दोनों है। विषय के साथ ज्ञान का सारूप्य विषय के ग्रहण में उपकारक माना जाने के कारण प्रमाण माना जा सकता है। किन्तु सारूप्य ज्ञानत्व में भिन्नता नहीं है।

शास्त्रदीपिका सम्मत प्रमाण लक्षण

प्रमाता को जिस प्रकृष्ट साधन द्वारा विषय का यथार्थ ज्ञान होता है, उसे प्रमाण कहा जाता है। मीमांसकों ने भी प्रमाण के इसी करणार्थ की ओर संकेत किया है। कुमारिल भट्ट ने **तस्माद् दृढं यदुत्पन्नं नापि संवादमृच्छति। ज्ञानान्तरेण विज्ञानं तत्प्रमाणं प्रतीयताम् ।।**[5]

---

1. योगसूत्र 1/7
2. आप्तमीमांसा, कारिका 101
3. वेदान्तपरिभाषा. 19
4. न्यायबिन्दु, पृ. 18
5. न्यायबिन्दु, पृ. 18

अर्थात् उस ज्ञान की प्रमाणता मानी है जो ज्ञानान्तर से बाधित नहीं होता तथा जिसके विषय में संवाद का अवकाश भी नहीं रहता। ऐसा कुमारिल भट्ट मानते है।

पार्थसारथी मिश्र ने **औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशो-व्यतिरेकश्चार्थेअनुपालब्धे तत्प्रमाणं बादशणस्यानपेक्षत्वात्।**[1] इस मीमांसा सूत्र के द्वारा हेतु-त्रुटि और बाधक ज्ञान से रहित को प्रमाण का लक्षण माना गया है।[2]

नैयायिकों ने इस "अगृहीतग्राहीज्ञान" को प्रमाण का लक्षण मानने में त्रुटियाँ की हैं। विधिवेत्ताओं का प्रश्न है कि इस प्रकार ज्ञात अर्थ को ग्रहण करने वाला क्रमबद्ध ज्ञान प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि प्रथम क्षण में देखा गया पात्र अज्ञात अर्थ का ज्ञान है, किन्तु द्वितीय चरण में देखा जाने पर वह अज्ञात ग्रंथ का ज्ञान है, किन्तु जब उसे दूसरे क्षण में देखा तो वह अज्ञात नहीं था अर्थात् दूसरे क्षण में तो ज्ञात अर्थ का ही पुनर्ज्ञान है, तब क्या द्वितीय क्षण में दृष्ट घट अप्रमाण होगा मीमांसकों के लक्षण से तो यही सिद्ध होता है। इस प्रकार धारावाहिक ज्ञान में प्रमाण का लक्षण कैसे घटित होगा। मीमांसक यदि यह कहें कि प्रथम ज्ञान में प्रथमक्षणविशिष्ट घट की प्रतीति होती है, द्वितीय में द्वितीयक्षणविशिष्ट की और तृतीय में तृतीयक्षणविशिष्ट की। इस प्रकार धारावाहिक ज्ञान में द्वितीय आदि ज्ञान का विषय जो तृतीयक्षणविशिष्ट घट आदि है वह अज्ञात ही है। इसलिए धारावाहिक ज्ञानों में भी यह लक्षण घटित हो जायेगा, किन्त नैयायिक उसमें सहमत नहीं है। नैयायिकों की आपत्ति है कि प्रत्यक्ष के द्वारा सूक्ष्म कालभेदों का ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसलिए यह ज्ञान असम्भव है जिसमें यह प्रतीत हो, यह प्रथमक्षणविशिष्ट घट है, यह द्वितीयक्षणविशिष्ट है।

मीमांसकों ने नैयायिकों की इस आपत्ति का समाधान किया है कि सूक्ष्म कालभेद प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। पार्थसारथि मिश्र ने सूक्ष्म कालभेद का ग्रहण प्रत्यक्ष माना है और धारावाहिक ज्ञान की प्रामाणिकता को सिद्ध किया है।[3] इसलिए यथार्थ अगृहीतग्राहि ज्ञान प्रमाण है। इस प्रकार धारावाहिक ज्ञान में भी उत्तरोत्तर काल में सम्बन्ध होने से अगृहीत का ग्रहण हो जायेगा।[4] पार्थसारथि मिश्र ने यहाँ प्रमाण लक्षण में यथार्थ पद ग्रहण किया है। यथार्थ

---

1. मीमांसासुव, 1//1/5
2. एतच्च विशेषणत्रयमुपाददानेन सुत्रकारेण कारणदोषबाधकज्ञानरहितमगृहीतग्राहिज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणं सुचितम्। शात्रदीपिका, पृ. 71
3. सन्नपि काभेदो-अतिसूक्ष्मत्वान्न परामृश्यत इति चेत्? अहो सूक्ष्मदर्शी देवानां प्रियः।.................. शास्त्रदीपिका, पृ. 76
4. तस्माद् यथार्थमगृहीतग्रहिज्ञानं प्रमाणं इति वक्तव्यम्। शास्त्रदीपिका, पृ. 75

से अभिप्राय है जहाँ प्रयत्नपूर्वक खोजे जाने पर भी कोई कारणदोष अथवा बाधक ज्ञान उपलब्ध न हो वही प्रमाण है, अन्य नहीं।[1]

प्रभाकर ने अनुभूति को प्रमाण माना है।[2] पार्थसारथि मिश्र ने भी इसका समर्थन किया है। स्मृति से व्यतिरिक्त प्रतीति अनुभूति है। स्मृति तो संस्कारजन्य ज्ञान है।[3] इस प्रकार संस्कार से अतिरिक्त कारण से जन स्वप्नभिन्न जो अनुभूति है, उसकी प्रमाणता है।[4]

प्रमाण विषयक परिभाषाओं में सभी दार्शनिकों ने यथार्थ के ऊपर शेष बल दिया है। अन्य दार्शनिकों की अपेक्षा मीमांसकों ने अगृहीतग्राहि को प्रमाण लक्षण में स्वीकार किया है। इस प्रकार मीमांसा के अनुसार दृढ़, अविसंवादी अगृहीतार्थग्राहक ज्ञान प्रमाण है अर्थात् जो ज्ञान ज्ञानान्तर से अन्यथा न सिद्ध होता है, न बाधित होता है, न सन्दिग्ध अर्थ का बोध होता है, वही ज्ञान प्रमा है। यहाँ 'अगृहीतग्राहिं' से परोक्ष का ज्ञान ध्वनित होता है। अज्ञात ग्रंथ को ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण है।

सूत्रकार जैमिनि ने इस अनधिगतार्थ अथवा अगृहीतार्थ का उल्लेख 'अर्थेऽनुपलब्धे' कहकर किया है। मीमांसकों की प्रमाण परिभाषा का आधार यही मीमांसासूत्र है।

उपसंहार

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि **भारतीय दर्शन में ज्ञानमीमांसा का** विकास एक दीर्घ, सतत और अत्यंत सूक्ष्म **खण्डन-मण्डन की परंपरा** के माध्यम से हुआ। न्याय और बौद्ध - इन दो प्रमुख दार्शनिक धाराओं के बीच लगभग नौ सौ वर्षों (2वीं से 11 वीं शताब्दी) तक प्रमाण, प्रमा, ज्ञान. करण, इन्द्रिय सन्निकर्ष, सारूप्य आदि विषयों पर अत्यंत गहन तर्क-विर्क चलता रहा।

इस अवधि में- गौतम से प्रारम्भ होकर नागार्जुन, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध आचार्य और वात्स्यायन, उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र, उदयनाचार्य जैसे नैयायिक आचार्य लगातार एक-दूसरे के सिद्धांतों का परीक्षण, समीक्षा और खण्डन करते हुए भारतीय ज्ञानमीमांसा को क्रमशः अधिक विकसित, सूक्ष्म और तार्किक बनाते गए।

---

1. अतो यत्र प्रयत्नेनानान्विष्यमात्तरेषं कालान्तरसम्बन्धस्यागृहीतस्य ग्रहणाद् युक्तं प्रामाण्यम्। शास्त्रदीपिका, पृ. 81
2. अनुभूतिश्च नः प्रमाणम्। बृहती, पृ. 103
3. तस्मात् अनुभूतिः प्रमाण इति प्रमाणलक्षणम्। स्मृतिव्यतिरिक्ता च प्रतीतिरनुभृतिः। स्मृतिश्च संस्कारमात्रजं ज्ञानमभिधीयते। शास्त्रदीपिका, पृ. 72
4. मीमांसासूत्र, 1/1/5

प्रमाण और ज्ञान की परिभाषा

प्रमाण का मूल उद्देश्य 'यथार्थ ज्ञान' तक पहुँचना है। विभिन्न दर्शनों— न्याय, मीमांसा, सांख्य, योग, वेदान्त, बौद्ध-सभी में परिभाषाएँ भिन्न होते हुए भी एक बात समान है। ज्ञान वही मान्य है जो अविसंवादी, अबाधित और अगृहीतार्थग्राही हो।

मीमांसा ने इस पर सबसे गहरी दृष्टि दी और "अगृहीतार्थग्राही यथार्थ ज्ञान" को ही प्रमाण कहा।

नैयायिकों ने 'करण' की सूक्ष्म विशिष्टता बताई और प्रमाण को "प्रमा का प्रकृष्ट साधन" स्वीकार किया।

बौद्धों ने प्रमाण और प्रमा को एक ही तत्त्व माना जिसमें ज्ञान और विषय का सारूप्य मुख्य है।

समाप्ति में 11वीं शताब्दी के बाद इस प्रकार की परंपरागत प्रतिवाद-प्रधान प्रमाणमीमांसा मंद पड़ गई, परंतु उससे पहले विकसित हुई यह विशाल परंपरा भारतीय दर्शन को विश्व का **सबसे संगठित, तर्कसंगत और वैज्ञानिक ज्ञानमीमांसीय ढाँचा** प्रदान कर चुकी थी। अतः समग्र रूप में ज्ञानमीमांसा भारतीय दर्शन की रीढ़ है।

प्रमाण-प्रमा-ज्ञान के स्वरूप पर बहुस्तरीय विचार-विमर्श ने इसे अत्यंत परिपक्व बनाया। विभिन्न दर्शनों का परस्पर संवाद ही इसकी शक्ति और विकास का आधार रहा।

भवतु सर्वमंगलम्।

के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8604167555

देवदत्त बुद्ध होने के लिए नहीं होते

—प्रो. उमेश प्रसाद सिंह—

देवदत्त बुद्ध का चचेरा भाई था। वे एक ही कुल में पैदा हुए थे। एक ही कुल में पैदा होने भर से हर कोई एक जैसा हो जाता है, क्या?

नहीं, कुल का एक होना व्यक्तियों के एक जैसा होने का आधार कत्तई नहीं होता। प्रायः लोग यह भूल जाते हैं कि कुल की कुलीनता कोई धरोहर में मिलने वाली चीज नहीं होती। वह तो मनुष्यता के गौरवशाली उत्थान में व्यक्ति के योगदान के प्रतिदान में मिलने वाले सामाजिक पुरस्कार की तरह है। किसी कुल की कुलीनता उस कुल के संरक्षक और सहयोगी सदस्यों के आत्मिक उत्कर्ष और सामाजिक उत्तरदायित्वों के कुशल निर्वहन की योग्यता की प्रशंसनीयता का अभिलेख होता है। कुलीनता आत्मश्लाघा की चीज नहीं होती। वह प्रदर्शन की वस्तु भी नहीं है। गहरी आस्था को बस उत्प्रेरित करने की निष्ठा ही उसे सुशोभित करती है। मगर कुल में कोई ऐसा भी पैदा होता है, जो कुलीनता को अश्व बनाकर सवार हो जाता है और बिना लगाम के उसे निषिद्ध प्रदेश मे मनमाना दौड़ाता रहता है।

आदमी की बनावट बड़ी विचित्र है। इतनी विचित्र की उसे समझ पाना सामान्यतया असंभव जैसा ही है। आदमी को जानने समझने की प्रायः जितनी प्रविधियाँ अनुसंधानित की गई है- शिक्षा, चिकित्सा, मनोविज्ञान, विज्ञान और अन्यान्य शाखाओं, प्रशाखाओं में प्रसरित अध्ययन, अनुशीलन की दिशाएँ हैं, वे सभी मनुष्य के आंशिक और ऊपरी स्वरूप को ही अंशमात्र में कुछ जानने समझने की सामर्थ्य रखती हैं। हमारी आधुनिक सभ्यता में शिक्षा की सीमा और प्रवृत्ति व्यापक अस्तित्व के ऊपरी और स्थूल स्वरूप की समझ को ही अपना ध्येय बना चुकी है। संसार केवल भौतिक नहीं है। भौतिक और अभौतिक के सूक्ष्य सम्मिलन से ही प्रकृति संचालित है। मनुष्य जीवन तो भौतिक-अभौतिक और सूक्ष्म-स्थूल की आश्चर्यजनक अभिव्यक्ति है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ जितना अधिक समान है, उससे बहुत अधिक असमान भी है। उनमें एक दूसरे के बीच समानता से अधिक असमानता भी है।

भारतीय चिन्तन परम्परा बिल्कुल दूसरे तरह की चिन्तन परम्परा है। हमारी परम्परा विराट परम्परा है। विराट की परम्परा है। विराट की तरफ उन्मुख होने का चिन्तन हमारे चिन्तन का केन्द्र रहा है। रहता आया है। हमारी परम्परा में मनुष्य केवल एक तुच्छ इकाई

नहीं है। इसीलिए हमारी परम्परा के मनीषियों ने बार-बार कहा है,- ''जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है'। बड़ी अद्भुत बात है। बड़ी मूल्यवान बात है। मनुष्य चराचर जगत से विच्छिन्न प्राणवान प्राणी नहीं है। नहीं, मनुष्य चराचर जगत से संयुक्त है। चराचर जगत की समूची तात्विकता उसमें समाहित है। वह समूचे ब्रह्माण में फैला हुआ है। समूचा ब्रह्माण्ड मनुष्य में और मनुष्य समूचे ब्रह्माण्ड में समाहित है। एक ही अस्तित्व सबमें समाहित है। समूची सृष्टि की एकात्मकता का यह बोध कितना अर्थवान बोध है। मनुष्य केवल पार्थिव नहीं है। वह अपार्थिव भी है। मनुष्य केवल मर्त्य नहीं है। अमरता भी उसमें सन्निहित है। मनुष्य एक इकाई भी है, अभिव्यक्ति की, और असीम प्रकृति और विराट चराचर जगत का अपने में संवाहक भी है। सबकुछ मनुष्य में सन्निहित है। हमारी परम्परा का मनुष्य सचमुच कितना विराट है।

मनुष्य में व्याप्त विराटता के मर्म को जानने की अभीप्सा ही, बुद्धत्व की तरफ जाने के मार्ग का संधान करती है। चराचर जगत से विच्छिन्न मनुष्य के क्षुद्र अहं की उपलब्धियों में डूब जाने की लालसा देवदत्त का निर्माण करती है।

देवदत्त मनुष्य की लघुतम इकाई के अहं का उपासक है। उपासक नहीं, चाकर है। अहं, मनुष्य का वह बोध है, जिसमें वह अपने को विराट अस्तित्व से विच्छिन, अपनी क्षुद्र इयत्ता को अलग और स्वायत्त समझकर उसके उत्कर्ष का आयोजन करता है। आयोजन पर आयोजन करता विकल रहता है। व्यस्त रहता है। विषण्ण रहता है। मनुष्य का अहं व्यापक प्रकृति से विच्छिनता के आधार पर ही स्थित होता है। अपने को सबसे अलग समझने के कारण वह सबका प्रतिस्पर्धी बन जाता है। वह द्वन्द्व के अपार साम्राज्य में बवण्डर बनकर बौंड़ियाने लगता है। वह अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के असमाप्त और अशान्त उद्योग में आजीवन लस्त-पस्त लथराता रहता है। देवदत्त बचपन से लेकर आजीवन बुद्ध की प्रतिस्पर्धा में उत्तप्त और उन्मत्त बना रहा। उसकी प्रतिपर्धा के केन्द्र में बुद्ध नहीं, बुद्ध का प्रभाव रहा। बुद्ध नहीं रहे, बुद्ध की प्रभा रही। बुद्ध नहीं रहे, बुद्ध की श्रेष्ठता रही। उसे यह पता नहीं हो सका कि बुद्ध का प्रभाव, बुद्ध की प्रभा और बुद्ध की श्रेष्ठता उनके आत्मस्वरूप का सहज परिणाम थी। किसी को भी पता नहीं हो पाता। अहं से ग्रस्त व्यक्ति को आँख होती ही नहीं। जब आँख होती ही नहीं तो भला खुलेगी कैसे। अन्धा आदमी कुछ भी कैसे देख सकता है। वह तो दूसरों की आँख से देखने को विवश होता है। दूसरों की आँख से देखा हुआ, कुछ भी सच नहीं होता। केवल सच ही असीम नहीं होता। झूठ भी अपार होता है। बिना आँख का आदमी झूठ में ऐसा डूबता है कि मर ही जाता है।

बुद्ध जन्म से ही अपनी अभीप्सा के अद्वितीय राजकुमार हैं। उनमें अप्रतिहत अभीप्सा का गान निरन्तर बजता रहता है। अभीप्सा आत्मा के सबसे सन्निकट की गूँज है। आत्मा की जागृति की ध्वनि ही अभीप्सा में आंदोलित होकर गूँजती है और व्यक्ति को क्षुद्र सीमाओं का अतिक्रमण करके विराट में समाहित हो लेने को उद्वेलित करती है। बुद्ध में बचपन से ही विराट चेतना में समाहित होने की विकलात का आनन्द प्रगट है। वही उत्प्रेरणा उनके सम्मुख मारने वाले से बचाने वाले की श्रेष्ठता का मर्म उद्घाटित करती है। सृजन का, सृष्टि का मार्ग स्रष्टा तक पहुँचाने का मार्ग है। स्रष्टा को पा लेने का मार्ग है। विराट सृष्टि की विराटता उसके स्रष्टा में सहज सन्निहित है। बुद्ध की उपासना अहं की उपासना नहीं है। उनकी उपासना अस्तित्व की उपासना है। अस्तित्व की उपसना कुछ चाहने की उपासना नहीं है। कुछ होने की उपासना नहीं है। बुद्ध की उपासना कुछ न चाहने और कुछ न होने की उपासना है।

देवदत्त भी शाक्यों के प्रतिष्ठित कुलीन कुल में पैदा हुआ था। यह वही कुल था, जिसमें बुद्ध भी पैदा हुए थे। जब बुद्ध गौतम थे तब भी वे कुल की गरिमा पर आरुढ़ नहीं थे। देवदत्त अपने कुल के गौरव की ऊँचाई पर अधिष्ठित होकर अपने को श्रेष्ठ समझता था। देवदत्त को बचपन से ही श्रेष्ठता का रोग लगा हुआ था। वह अपने को किसी भी तरह श्रेष्ठ साबित करने के लिए कुछ भी करने के लिए आमादा था। अपने आप में स्वतः स्फूर्त उसकी कोई चाह नहीं थी। उसकी जीवन के बारे में और जगत के बारे में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसकी दिलचस्पी केवल एक बात में थी, लोग उसे गौतम बुद्ध से श्रेष्ठ समझें। उसका प्रयास गौतम बुद्ध से श्रेष्ठ होने में नहीं, श्रेष्ठ समझे जाने में था। वह दूसरों की आँख से दूसरों को देखने का अभ्यस्त तो था ही दूसरों की आँख से खुद को भी देखने का आकांक्षी बना हुआ था। देवदत्त केवल बुद्ध की प्रतिष्ठा का प्रतिस्पर्धी था।

देवत्त यह कभी नहीं जान सका कि प्रतिष्ठा किसी को प्रयत्न से प्राप्त नहीं होती है। प्रतिस्पर्धा से भी उसे प्राप्त कर सकना संभव नहीं होता। ईर्ष्या ओर द्वेष जनित षड्यंत्रों से तो कत्तई ही नहीं। ईर्ष्या व्यक्ति की अयोग्यता और उसकी न्यूनता का सबसे बड़ा प्रमाण है। बचपन से जागृत देवदत्त की गौतम के प्रति ईर्ष्या जनित प्रतिस्पर्धा उनके बुद्ध हो जाने के बाद भी गई नहीं। उनका शिष्य बन जाने के बाद भी नहीं। देवदत्त का समूचा वजूद ही वासनाओं का विग्रह बना हुआ बाना बदलकर अभिशाप भोगने को विवश रहा।

व्यक्ति के भीतर जैसे ही ईर्ष्या का जन्म होता है, बहुत ही बलवान द्वेष उसकी सुरक्षा में उसके पीछे खड़ा हो जाता है। वैसे सामान्यतः ईर्ष्या बहुत मामूली-सी चीज लगती है। मगर वह मामूली है, नहीं। उसकी जड़े बड़ी लम्बी और उसकी छाया बड़ी विशाल होती है।

सामान्यतः ऊपरी तौर पर देखने में लगता है कि ईर्ष्या कोई बड़ा दोष नहीं है। वह सामाजिक रूप में कोई खास हानिकारक नहीं माना जाता। मगर वास्तविकता बिलकुल इसके विपरीत है। ईर्ष्याग्रस्त आदमी बेहद स्वार्थी, घातक, कठोर, क्रूर और हिंसक होता है। वह अपने स्वार्थ में ऐसा अन्धा हो जाता है कि अपनी श्रेष्ठता के अलावा कुछ देखता ही नहीं। दूसरे के गुण, सामर्थ्य और योग्यताएँ उसे दिखती ही नहीं। उसका सारा उपक्रम दूसरे को छोटा, तुच्छ और महत्वहीन बनाने का होता है। मनुष्य को छोटा और तुच्छ बनाने का उद्योग मनुष्यता के संसार में बेहद निन्दनीय अपराध है। अक्षम्य हिंसा है। हिंसा केवल अस्त्र-शस्त्र पर ही अवलम्बित नहीं होती। वह तो बहुत बाद की बात है। हिंसा अपने उत्स में भावनाओं में ही सन्निहित होती है। ईर्ष्या अहिंसक-सा दिखने वाला बेहद हिंसक भाव है।

पहली नजर में ऐसा लगता है कि ईर्ष्या दूसरे के उत्कर्ष से दुखी होने वाला भाव है। दूसरे की समृद्धि, कीर्ति और यश की वृद्धि से केवल स्वयं में दुखी हो लेना ईर्ष्या की सम्पूर्ण व्याप्ति नहीं है। नहीं, ईर्ष्या जैसे ही जनमती है, द्वेष का तूफान उमड़ आता है। द्वेष उस व्यक्ति के प्रति उसके समूचे वजूद को दूषित बना डालता है। ईर्ष्याग्रस्त व्यक्ति जिससे ईर्ष्या रखता है, उसे हर तरह की हानि पहुँचाने की सारी प्रछन्न कोशिशों में जुट जाता है। वह दुश्मन नहीं बनता। खुलेआम दुश्मनी की उद्घोषणा नहीं करता। मगर अपने इरादों में वह दुश्मन से भी अधिक खतरनाक हो उठता है। बुद्ध के प्रति देवदत्त का जीवन पर्यन्त आचरण ईर्ष्या के भयानक और अपराधी चरित्र का बड़ा स्पष्ट उदाहरण है।

बुद्ध के समय में देवदत्त एक ऐसा आदमी था, जो किसी भी स्थिति में, किसी भी तरह से बुद्ध को बुद्ध होते देखने को राजी नहीं था। उसे बुद्ध के बुद्धत्व से कुछ लेना-देना नहीं था। बुद्धत्व में उसकी कोई रूचि नहीं थी। उसका कोई आकर्षण नहीं था। उसका लेना-देना बुद्ध की ख्याति से था। उनकी कीर्ति से था। उनके प्रति लोगों की श्रद्धा और सम्मान से था। बुद्ध की श्रेष्ठता उसे स्वीकार नहीं थी। उसने कभी स्वीकार नहीं की। बचपन से ही वह बुद्ध के विरूद्ध खड़ा होता रहा। जब उसका कोई वश न चला तो वह बुद्ध का शिष्य बन गया। बुद्ध संघ में शामिल हो गया। मगर शिष्य होने से क्या।

शिष्य होने के भी अलग-अलग कारण होते हैं। जो जिस कारण से शिष्य बनता है, उसको साधने की साधना में लगा रहता है। आदमी का जो आन्तरिक संघठन है, उसका बदलना बड़ा मुश्किल है। व्यक्ति की मनोरचना प्रायः बदलती नहीं है। ऊपर-ऊपर बदल जाने का कोई खास मलतब नहीं होता। वस्त्र बदल लेने से, वाणी बदल लेने से, व्यवहार बदल लेने

से, आदमी के बदलने का सम्बन्ध नहीं बन पाता। देवदत्त बदलकर भी नहीं बदला। तनिक भी नहीं बदला।

बुद्ध से साधना की पद्धति देवदत्त ने सीख ली। साधना करके उसने सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं। मगर क्यों, सिद्धियों का आत्मिक उत्कर्ष में क्या प्रयोजन है। क्या सिद्धियाँ व्यक्ति चेतना को विराटता के मार्ग की तरफ ले जाने में सहायक है? नहीं, कत्तई नहीं। सिद्धियाँ अहं का विस्तार करती हैं। अहं को विस्फोटक बनाती हैं। सिद्धियां सिर्फ दूसरों को प्रभावित करने के काम आती हैं। दूसरों को कौन प्रभावित करना चाहता है? अहं का उपासक। अस्तित्व की विराटता में विलय का मार्ग दूसरा है। वह मार्ग बुद्ध का मार्ग है। देवदत्त ने उस मार्ग पर पैर ही नहीं रखा, बुद्ध का शिष्य बन जाने के बावजूद।

सिद्धियाँ, असमान्य वासना की पूर्ति की सहायक है। साधना की विधियों से असामान्य क्षमताओं का अधिकारी बन जाना सिद्धियों का पुरस्कार होता है। मगर सिद्धियों का प्राप्त करने का प्रयोजन क्या है? यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। सिद्धियों के सहारे चमत्कार प्रदर्शन से दूसरों को प्रभावित करने की क्या फलश्रुति हो सकती है। अपनी श्रेष्ठता का निदर्शन! यही न। श्रेष्ठता का बोध और अपनी श्रेष्ठता की व्यापक स्वीकृति की आकांक्षा अहं का विस्तार ही करती है। अहं का विस्तार मनुष्य को विराट नहीं क्षुद्र ही बनाता है। व्यक्ति का अहं चाहे जितना बड़ा हो जाय विश्व, ब्रह्माण्ड में व्याप्त अस्तित्व के सम्मुख वह बेहद क्षुद्र ही है।

देवदत्त याचक की तरह, भिखारी की तरह बुद्ध की अनुकम्पा लेकर सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। वह सिद्धियों को पाकर उनके बल पर बुद्ध को पददलित करने की उत्कट कोशिश में लीन हो जाता है। वह सिद्धियों का बुद्ध के विरूद्ध हथियार की तरह उपयोग करता है। बुद्ध के उपासक नरेशों के राजकुमारों को अपने चमत्कारों से अभिभूत करके अपना वशवर्ती बनाने का उद्योग करता है। उन्हें बुद्ध के विरूद्ध भड़काकर राजशक्ति के सहारे बुद्ध की हत्या के खड़यंत्र रचता है। देवदत्त तप को हिंसा का कलुषित माध्यम बनाने का जघन्य अपराध करता है। अपने को बड़ा और ऊँचा न बनाकर दूसरों को छोटा बनाने का उद्योग आदमी को पतन के गर्त में गिरा देता है। यह प्रकृति का सहज नियम है। देवदत्त बुद्ध की हत्या की सारी कोशिशों में बुरी तरह विफल होता है। अन्त में स्वयं हत्या की कोशिश करते हुए विनष्ट हो जाता है।

देवदत्त का विनष्ट हो जाना दूषित भावनाओं और विचारों के अन्ततः विनष्ट हो जाने की सनातन प्राकृतिक परिणति का स्पष्ट उदाहरण है। किसी भी व्यक्ति की पहचान उसकी आन्तरिक बनावट और बुनावट की आभा के आलोकवृत्त पर निर्भर करती है। दूसरों को

छोटा बनाकर बड़ा बनने की वृत्ति निन्दनीय हिंसक वृत्ति है। यह प्राकृतिक व्यवस्था के प्रतिशोध का प्रदूषित प्रयोग है, जो स्वयं को तो पतन के गर्त में गिराता ही है, साथ ही सामाजिक समरसता के आनन्द विधान को आहत करके सामूहिक हित की हत्या का अपराधी भी बनाता है। दूसरों को छोटा बनाने की प्रतिस्पर्धा मनुष्य की अमानवीय वृत्ति का निन्दनीय अलंकरण है। मनुष्य के भीतर प्रसुप्त आन्तरिक गुणों के विकास का मार्ग ही मनुष्यता के उत्थान का मार्ग है। बुद्ध इसी मार्ग के अन्यतम अनुसंधाता है। बुद्ध का गौरव मनुष्य की आन्तरिकता में व्याप्त असीमता के अनुसंधान का गौरव है। बुद्ध की महत्ता मनुष्य को विराट की महत्ता की तरफ उन्मुख करने में निहित है। देवदत्त नकली और मिथ्या महत्ता के मोह का लोलुप संवाहक है।

दूसरों को प्रभावित करने का उद्योग आत्मवंचना का व्यापार है। परछाई आदमी के कद की तुलना में चाहे जितनी भी बड़ी दिखाई दे, मगर उसका कोई मतलब नहीं होता। उसका अपना कोई वजूद नहीं होता। सम्मान, प्रतिष्ठा, श्रेष्ठता यह सब कुछ व्यक्ति के अस्तित्व की परछाई है। अहं अस्तित्व नहीं अस्तित्व की प्रतिच्छाया है। प्रतिच्छाया झूठ है, भ्रम है, अवास्तविक है। देवदत्त का समूचा उद्योग परछाई की उपासना का उद्योग है। झूठ की आराधना झूठ में ही समाहित हो जाती है। अहं के क्षुद्र ऐश्वर्य की उपासना में आसक्त प्राणी कभी भी अस्तित्व की असीमता में अवगाहन के लिए उन्मुख नहीं हो सकता। देवदत्त कभी भी बुद्ध होने के लिए नहीं होते।

बुद्ध हमेशा नहीं होते। मगर देवदत्त हमेशा होते है। हर समय में होते हैं। हर जगह होते हैं। देवदत्त केवल बुद्ध के पीछे ही नहीं होते। किसी भी शुद्ध और प्रबुद्ध के पीछे एक देवदत्त जरूर खड़ा हो जाता है।

विजिटिंग प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9305850728

अप्प दीपो भव

—हेमन्त शर्मा—

सुबह सुबह फिर मुतरेजा। इस बार उसकी समस्या नई थी। अबकी उसे तथागत बुद्ध परेशान कर रहे थे। उसकी समस्या थी जिस सनातन पर इस वक्त इतना कटायुद्ध हो रहा है। उस सनातन को बुद्ध ने सबसे ज़्यादा नुक़सान पहुँचाया। फिर हम बुद्ध को भगवान् क्यों मानते हैं ? और उनके जन्मदिन पर इतना धूम धाम क्यों?

"मुतरेजा ! बुद्ध सनातन के खिलाफ नहीं थे। सनातन की कुरीतियों के खिलाफ थे। उसके पाखंड और पोंगापंथ के खिलाफ थे। इसलिए इन कुरीतियों से परेशान लोगों ने उन्हें अपनाया। बुद्ध के प्रति दुराग्रह मत पालो। बुद्ध ज्ञानी थे। दृष्टा थे। महानायक थे।"

"आप तो काशी के हैं। फिर काशी के पंडितों ने उन्हें शहर के बाहर क्यों खदेड़ा। काशी तो अनंत काल से विद्या और ज्ञान की राजधानी रही है। वहाँ इन ज्ञानी पुरुष को पंडितों (विद्वानों) ने क्यों नहीं घुसने दिया। इनके ज्ञान को जानने के बजाय इन्हें बुद्धू कहा, बुद्धू शब्द बुद्ध का मज़ाक़ उड़ाने के लिए ही बना।" मुतरेजा रौब के साथ बोला।

"काशी के पंडितों की बात मत करो। वे अपने आगे किसी को नहीं समझते। तुलसी दास को इन्ही लोगों ने अस्सी घाट से भगा दिया। वे उनकी लिखी मानस की पाण्डुलिपि गंगा में फेंक देते थे। फिर जो आचार्य शंकर अपने ज्ञान के कारण विश्व विजयी हुए उन्हें काशी में ही चुनौती मिली। उन्हें काशी में ही एक चाण्डाल से ज्ञान लेना पड़ा। इन लोगों ने बुद्ध को भी नहीं समझा। उन्हें वरुणा नदी के पार काशी की सीमा के बाहर सारनाथ तक खदेड़ दिया। हार कर बुद्ध ने अपने पहले पाँच शिष्य यहीं ढूँढे। और कौण्डिण्य, वप्प, भद्दीय, अस्सजि और महानाम को ज्ञान दिया, जिसे दुनिया धम्मचक्र प्रवर्तन का नाम देती है।"

"सर आप हर गलत आदमी के वकील क्यों बन जाते हैं। इस आदमी ने हमारे सनातन धर्म को तार तार कर दिया। मठ, मंदिर तोड़े गए। हमारे आर्ष ग्रन्थ नष्ट कर दिए गए। हमें अहिंसा की शिक्षा दे कायर बना दिया। महाप्रतापी अशोक महान के बाद हम कोई युद्ध नहीं जीत पाए।"

मुतरेजा सही कहते हो बुद्ध ने सनातन को बहुत नुक़सान पहुँचाया। अगर ऐसा न होता तो सनातन की पुनर्स्थापना के लिए आचार्य शंकर न पैदा होते। देश के चारों कोने पर शंकराचार्यों की चार पीठ न बनती। उनकी रक्षा के लिए तेरह अखाड़े न बनते। मुतरेजा बुद्ध को समझना बहुत आसान है। तुम अपनी धारणा बदलो। वो धार्मिक नहीं है। वह दार्शनिक

भी नहीं हैं। वे किसी पर कुछ थोपना नहीं चाहते। वे दृष्टा हैं। दार्शनिक सोचता है। दृष्टा देखता है। सोचने से दृष्टि नहीं मिलती। बुद्ध का ज़ोर दृष्टा बनने पर है। वे किसी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं करते। कोई दर्शन नहीं देते। सिर्फ़ दृष्टि दे रहे हैं। बुद्ध पारम्परिक नहीं,मौलिक हैं। वे इस बात पर पर ज़ोर नहीं देते की वेद में लिखा है इसलिए मानो। अतीत में कहा गया है इसलिए मानो। वे यह भी नहीं कहते की मैं कह रहा हूँ इसलिए मानो। वे सिर्फ़ इस बात पर ज़ोर देते हैं कि जब तक तुम स्वंय जान न लो, तब तक मानो मत। मुतरेजा विचार अतीत के होते हैं। और दृष्टि वर्तमान की।"

मुतरेजा भौंचक हो मुझे देख रहा था। उसकी सुई वहीं फँसी हुई थी। "सर बुद्ध ने सनातन को ज़्यादा नुक़सान पहुँचाया या इस्लाम ने ?"

मुतरेजा तुम्हारे जैसी सोच के लोगों ने सनातन का ज़्यादा नुक़सान पहुँचाया। ऐसे लोगों ने बुद्ध से नफ़रत के चलते बुद्धू शब्द का ईजाद किया। बुद्ध के विरोध के चलते जो मूर्ख लोग होते थे उनको बुद्धू कहा गया। पूरब के गाँवों में गर्मियों में जिनका दिमाग़ सनक जाता था उसे कहते थे बौधा गया है। दरअसल बुद्ध ने कोई अलग पंथ नहीं बनाया। हमें उसी वक्त उन्हें आत्मसात् करना चाहिए था। जब बौद्ध विचार दुनिया में फैला तो हमने बुद्ध को विष्णु का अवतार बताया। इसी कारण ऐच.जी वेल्स, ने अपने विश्व इतिहास में लिखा है। "शायद गौतम बुद्ध ही सिर्फ ऐसे नास्तिक व्यक्ति हैं जो फिर भी वह ईश्वर के स्वरूप हैं।"

मुतरेजा बुद्ध महामानव थे। वे मानव जाति की वैचारिक स्वतंत्रता के लिए अकेले खड़े थे। धार्मिक कर्मकांड की ज़ंजीरों से मनुष्य को मुक्ति के आकांक्षी रहे। बुद्ध कोई धार्मिक शिक्षा नहीं देते। वे केवल चाहते हैं कि जो भी हो, तुम सहज रहो। यही है तुम्हारा धर्म-- अपनी सहजता में जीना। किसी मनुष्य ने आज तक स्वतंत्रता से इतना प्रेम नहीं किया। किसी मनुष्य ने आज तक मानवता से इतना प्रेम नहीं किया। उन्हें अनुयायी नहीं सहयात्री चाहिए। किसी को अपना अनुयायी स्वीकार करने का अर्थ है उसकी गरिमा को नष्ट करना। इसलिए उन्होंने केवल सह यात्रियों को स्वीकार किया। कुशीनगर में शरीर त्यागने से पहले उनका जो अंतिम वाक्य था, "मैं अगर दोबारा लौटा तो तुम्हारा मैत्रेय बन कर लौटूँगा।" मैत्रेय का मतलब होता है मित्र।

उनकी सरलता के कारण लोग गौतम बुद्ध को समझ नहीं पाए। मौन में बैठना, ध्यान लगाना खुद को पहचानना, तुम्हारे लिए यह कोई मूल्य नहीं रखता। मुतरेजा तुम्हें लगता है कि मंदिर मे प्रार्थना करनी चाहिए, मन्त्रजाप करने होंगे। किसी मंदिर में जाकर इंसान के ही

बनाये हुए भगवान की पूजा करनी होगी। शांत बैठे-बैठे क्या होगा ? ऐसा करने वाला बुद्धू होगा।

मुतरेजा बुद्ध बनने से पहले वे राजकुमार थे। यह भी नहीं जानते थे की व्यक्ति बूढ़ा होता है, बीमार होता है मरता भी है। सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनाने वाला उनका सारथी छन्न था। छन्न राजकुमार गौतम को रोज़ घुमाने ले जाता था। इसी घुमाने में ही एक रोज़ एक बूढ़े, दूसरे रोज़ एक रोगी, तीसरे रोज़ एक शव और चौथे रोज़ एक संन्यासी को देख सिद्धार्थ का मन बदला। सिद्धार्थ ने सारथि से पूछा। क्या मैं भी बीमार पडूँगा, मैं भी बूढ़ा हूँगा, मैं भी मरूँगा। सारथि छन्न ने कहा हम सबको एक दिन मरना होगा। सारथि छन्न ने सिद्धार्थ की आँखें खोल दी। वे जीवन और जगत के गूढ़ रहस्य समझ गए। और इस तरह राजकुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध हो गए। गया में एक पीपल के पेड़ के नीचे उन्हें ज्ञान मिला। वे बोधिसत्व हो गए। और यह हिट फ़ार्मूला ढूँढ लिया। संसार में दुख है। दुख का कारण है। इस दुख का निवारण संभव है। और निवारण का मार्ग अष्टांगिक है।

मुतरेजा एक कहानी सुनो। शायद कुछ आँख खुले।

मैं अपने अध्ययन कक्ष में लिख रहा था कि बिजली चली गयी। अचानक अंधकार में डूब जाता हूँ। मेरी छाया भी मुझसे अलग हो लुप्त होने लगी। अक्षर भी कालिमा ओढ़कर गुमसुम हो गए। हाथ में मौन हुई मेरी कलम है और मेरे भीतर है एक विचारों का ज्वार। बाहर अंधकार का सागर और भीतर विचारों का ज्वार के बीच खोजता हूँ कि कहीं प्रकाश भी है क्या ?

जब आपकी छाया भी जुदा हो जाती है वह आपका साथ छोड़ देती है तो कुछ भी नहीं सूझता है। कर्मण्यता शिथिल पड़ जाती हो, शायद यही विपत्ति की स्थिति है और है अंधकार का प्रतिपल। इसीलिए तो अंधकार विपत्ति का प्रतीक हो गया, महान् दुःखों का सूचक, अन्यथा लोग क्यों कहते कि उसके घर का चिराग गुल हो गया।

चिराग गुल हुआ कि कुछ सुझाई नहीं पड़ता फिर भी चाणक्य उन अंधों में नहीं आता।

न पश्यन्ति च जन्मान्धा, कामान्धा नैव पश्चन्ति,

महोन्मत्ता न पश्चन्ति, अर्थी दोषां न पश्चन्ति।

चाणक्य कहता है। जन्मांध को दिखायी नहीं देता। कामांध को सुझाई नहीं देता। मदोन्मत्त को भी सुझाई नहीं देता। विश्वास मानिए इन चारों में मैं नहीं हूँ, फिर भी इस समय मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा है। कैसे कहूँ कि चाणक्य को नहीं मालूम था कि सूझने का संबंध प्रकाश से है। प्रकाश की उपस्थिति ही सूझना तथा प्रकाश का अभाव न सूझना है। और

अंधता? वह तो प्रकाश को नकारना है। आँखों में यदि परदा है तो हजारों सूर्य के प्रकाश में भी हम अंधे हैं। विचारों पर यदि परदा है, तब भी हम अंधे हैं। चाणक्य ने इसी दूसरे प्रकार की अंधता की ओर संकेत किया है।

जो हो मैं इस समय अँधेरे में हूँ। वस्तुतः अंधकार का कोई अस्तित्व नहीं है, वह तो प्रकाश का अभाव मात्र है। अस्तित्व है प्रकाश का, जो ज्ञान का प्रतीक है और परमात्मा का भी, साथ ही हमारी अस्मिता का भी। तभी तो वैदिक ऋषियों ने कहा था—"तमसो मा ज्योर्तिगमय। अंधकार की ओर से हमें प्रकाश की ओर ले चलो।"

इस बीच पत्नी की आवाज सुनाई देती है, "अँधेरे में बैठ क्या कर रहे हो, एक दीया क्यों नहीं जला लेते?" लगता है मेरी पत्नी के साथ मैडम फ़िशर मुझसे कह रही है। "अंधकार को कोसने से कहीं अच्छा है, एक दीपक जला लेना।" "यही आवाज बार-बार मुझसे टकराती है और धीरे-धीरे उससे उभरती एक सौम्य आकृति देखता हूँ तथागत की।"

कुशीनगर में शाल वृक्ष के नीचे तथागत बुद्ध लेटे हैं। उन्हें मरणांतक पीड़ा हो रही है, पर वे उसे बड़े सहज भाव से बिना दुख की अनुभूति के भोग रहे हैं। सड़ा मांस खाने से उन्हें अतिसार हो गया। मामला सँभल नहीं रहा था। लगा समय आ गया है। उन्होंने एक करवट बदली और अपने शिष्य आनंद से कहा, "जल पिलाओ।"

आनंद बुद्ध के सहायक और उनके चचेरे भाई थे। लेकिन प्रिय शिष्य भी थे। बुद्ध उन्हीं के ज़रिए बाहरी दुनिया से संवाद करते थे। आख़िर के पचीस साल वे बुद्ध के साथ रहे।

आनंद जल ले आया। उन्हें पिलाया और पीने के बाद वे बोले, "वत्स, अब मैं परिनिर्वाण ग्रहण करूँगा।"

आनंद विचलित हो उठा। वह तथागत के पास रह न सका। दूर, एक वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगा।

बुद्ध ने पुनः करवट बदली। उन्हें आनंद दिखाई नहीं दिया। उन्होंने अपने दूसरे शिष्य से पूछा, "आनंद कहाँ है?"

"महाराज, वह दूर वृक्ष के नीचे बैठा रो रहा है।" "क्यों रो रहा है?" तथागत की मुद्रा अत्यधिक शांत थी, "उसे बुलाओ"।

आनंद बुलाया गया। उसे देखते भगवान् बोले, "क्यों रो रहे हो?"

"भगवान्, आप जा रहे हैं। अँधेरा हो रहा है।" आनन्द बोला।

भगवान् की प्रशांत मुद्रा जरा-सी मुसकरायी। "न मैं कहीं से आया था, न मैं कहीं जा रहा हूँ। अस्सी साल का हो गया, शरीर तो छोड़ना ही होगा। ...और कहाँ है अँधेरा?"

आनंद चुपचाप खड़ा रहा। आँखें पसीजती रहीं। सारा साहस बटोरकर उसने धीरे-से कहा, "आप जब नहीं रहेंगे प्रभु! तब कौन मुझे रास्ता दिखाएगा? कौन मुझे प्रकाश देगा?"

''अप्प दीपो भव।" भगवान् बुद्ध ने कहा, "मैंने जो कुछ कहा है उसे भूल जाओ। तुम्हारे पूर्वजों ने जो भी कहा है, उसे भूल जाओ और अपने अंतःकरण पर विश्वास करो। अपने विवेक पर विश्वास करो। दूसरे के प्रकाश के भरोसे से कहीं अच्छा है कि स्वयं दीप हो जाओ। अप्प दीपो भव। और अपना पथ स्वयं आलोकित करो।" बुद्ध का दुनिया को महान संदेश मिल चुका था।

मुतरेजा सुनो ! तथागत का परिनिर्वाण हो गया। आनंद ने अपने आँसू पोंछे या नहीं, यह तो पता नहीं, पर मैं अंधकार को नहीं कोसता, क्योंकि अब मैं दीप जलाने में विश्वास करता हूँ। मत परवाह करो कि कोई क्या कह रहा है। तुम सिर्फ़ दिए जलाओ। उजाला करो।

क्योंकि सिद्ध वही है, जो दोष देखने की प्रवृत्ति से पार जा चुका हो। भगवान् बुद्ध ने इसी सत्य को अपने शिष्यों को बताया था। महामानव बनने की भी यही शर्त है। ऐसा व्यक्ति ही देश-समाज का भ्रमण कर जनमानस के सम्मान का अधिकारी होता है। बुद्ध के इस शिष्य ने अपने गुरु के इस सार को यथावत् ग्रहण किया था। उस रोज भगवान् बुद्ध खुद उसकी परीक्षा ले रहे थे।

भगवान् बुद्ध के उस शिष्य ने भगवान् के चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

"तुम क्या चाहते हो?" भगवान् ने पूछा।

शिष्य ने कहा, "भगवान्! यदि आप आज्ञा दें तो मैं विश्व का भ्रमण करना चाहता हूँ।"

"दुनिया में भले-बुरे सब तरह के मनुष्य होते हैं। बुरे लोग तुम्हारी निंदा करेंगे और तुम्हें अपशब्द कहेंगे। तब तुम्हें कैसा लगेगा?" भगवान् बुद्ध ने पूछा।

"मैं समझ लूँगा कि वे बहुत भले लोग हैं, क्योंकि उन्होंने मुझ पर धूल-मिट्टी नहीं फेंकी और ईंट-पत्थर नहीं फेंके।" शिष्य ने उत्तर दिया।

भगवान् बुद्ध ने कहा, "उनमें से कुछ लोग धूल भी फेंक सकते हैं और ईंट-पत्थर भी मार सकते हैं।"

"मैं उन्हें भी इस कारण भला समझूँगा कि वे मुझे डंडे नहीं मारते।" शिष्य ने कहा।

"तुम्हें डंडे मारने वाले भी कुछ लोग मिल सकते हैं।"

"वे मुझे हथियारों से नहीं मारते, इस कारण वे भी भले जान पड़ेंगे।"

बुद्ध ने कहा, “दुनिया बहुत बड़ी है। जंगलों में डाकू रहते हैं। डाकू तुम्हें हथियारों से मार सकते हैं।”

“वे डाकू भी मुझे दयालु जान पड़ेंगे, क्योंकि उन्होंने मुझे जीवित तो छोड़ा।”

“यह कैसे जानते हो कि डाकू जीवित छोड़ देंगे। वे तुम्हें जान से मार सकते हैं।” बुद्ध ने कहा।

“भगवान्! आपने कहा है, मृत्यु समय से पहले नहीं आती। कोई अन्य ही मार दे तो यह उसकी दया ही है, क्योंकि वह प्रकृति का कार्य कर रहा है।”

शिष्य की बात सुनकर भगवान् बुद्ध बेहद खुश हुए। उन्होंने कहा, “अब तुम भ्रमण करने योग्य हो गए हो। मेरा सच्चा शिष्य वही है, जो कभी किसी दशा में किसी को बुरा नहीं कहता। जो दूसरों की बुराई नहीं करता, उसमें कोई दोष नहीं निकालता,जो सबको भला ही समझता है। वही पारिव्राजक है। दूसरों में दोष निकालना मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है।”

बुद्ध के उपदेश विश्व-मानवता के लिए थे। भीतरी और बाहरी टकराव, विषाद, दोष, अवगुण आदि के चक्रव्यूह में उलझी दुनिया को जब कभी भी शांति की सरिता में गोते लगाने की जरूरत महसूस होगी, उसे बुद्ध की इन्हीं शिक्षाओं की ओर लौटना पड़ेगा। बुद्ध सकारात्मकता का शिखर हैं और सकारात्मकता के बिना जीवन में न शांति मुमकिन है और न ही आनंद।

मुतरेजा आज बुद्ध पूर्णिमा है। पूर्णिमा को वे जन्मे, पूर्णिमा को वैभव छोड़ा, पूर्णिमा को ही गए। पूर्णिमा का चाँद उन्हें ताज़ा बनाए रखता है। स्थायित्व देता है। मुतरेजा जाओ। बुद्धं शरणं गच्छामी। संघ शरणं गच्छामी। धम्मम् शरणम् गच्छामी।”

“सर मैं संघ की शाखा में जाता हूँ।” मुतरेजा बोला और खिसक लिया।

मुझे लगा अब तक मैं भैंस के आगे बीन बजा रहा था।

निदेशक
टी.वी. 9 भारतवर्ष,
फिल्म सिटी, नोएडा

रिवालसर-पद्म-सरोवर-तीर्थ का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

—टी. आर. शाशनी—

हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिले में स्थित रिवालसर नामक स्थान धार्मिक-पर्यटन-स्थल के रूप में विश्व-विख्यात है। सुरम्य वादियों से घिरा तथा रमणीक झील से सुशोभित रिवालसर तीर्थ बौद्ध, सिक्ख तथा सनातन परम्परा के अनुयायियों के लिए अत्यन्त पवित्र धार्मिक स्थान है। प्राचीन समय में रिवालसर मण्डी रियासत के 'रवाल' नामक राणा शासक का हिस्सा था। आज भी स्थानीय लोग रिवालसर को 'रुआल-सर' या 'रवाल-सर' शब्द से अभिव्यक्त करते हैं, जो इस रियासत के शासक से सम्बद्ध होने का सूचक है। वहीं, बौद्ध अनुयायी रिवालसर को छो-पद्मा(=पद्म-सरोवर) के नाम से अभिव्यक्त करते हैं, जो गुरु पद्मसंभव और डाकिनी मन्दारवा की प्रज्ञोपाय-युगनद्धचर्या से अधिष्ठित पवित्र तीर्थ-स्थल है।

सनातन-परम्परा में ऐसी मान्यता है कि रिवालसर में लोमश ऋषि ने इस सरोवर के किनारे साधना किया था, इसलिए यह स्थान उनकी तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध है। पुराण के अनुसार लोमश ऋषि को ब्रह्मा का मानसपुत्र माना जाता है। महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर और पांडवों को विभिन्न तीर्थों का महत्त्व बताने वाले मुनि के रूप में भी लोमश ऋषि का वर्णन मिलता है। इसलिए लोमश ऋषि को तीर्थयात्रा का मार्गदर्शक भी कहा जाता है। वर्तमान में रिवालसर सरोवर के किनारे लोमश ऋषि की एक गुफा एवं मन्दिर दर्शनार्थ विद्यमान है।

सिक्ख-धर्म के अनुसार मण्डी के राजा सिद्धसेन के समय यहाँ पर गुरु गोविन्द सिंह जी ने चालीस पहाड़ी राजाओं का सम्मेलन बुलाया था। इस तरह सिक्खों के लिए भी रिवालसर धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान है। यहाँ पर श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के पधारने की स्मृति में गुरुद्वारा श्री गुरु गोबिन्द साहिब, रिवालसर, का निर्माण किया गया है, जहाँ आज प्रतिदिन हज़ारों की संख्या में दर्शनार्थियों का आवागमन होता है।

अस्तु, पूरे विश्व में आज रिवालसर धार्मिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन का केन्द्र बन चुका है। निस्संदेह, इस स्थान को धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व प्रदान करने में भोट-बौद्धधर्म के प्रमुख चार सम्प्रदायों में से प्राचीन सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित ञिङ्मा-सम्प्रदाय के निधि-उद्घाटक-सद्गुरुओं का विशेष योगदान रहा है। इन्हीं सद्गुरुओं की महती कृपा एवं दिव्यदृष्टि से

ही यह स्थान आचार्य पद्मसंभव(=गुरु रिन्पोछे) के साधना-स्थल के रूप में उजागर हुआ है और समूचे महायानी बौद्ध-समाज में रिवालसर स्थित सरोवर को गुरु-पद्मसंभव-सरोवर-तीर्थ के रूप में प्रतिष्ठा मिली है।

कालान्तर में इस पवित्र स्थान में विशेषकर, भोट-बौद्ध सम्प्रदाय के ञिङ्मा तथा कर्ग्युद सम्प्रदाय से सम्बद्ध विभिन्न सद्गुरुओं ने अनेक पारम्परिक-बौद्ध-मठों एवं विहारों को स्थापित किया, जहाँ इन सम्प्रदायों के तिब्बती, हिमालयी तथा विदेशी अनुयायियों के लिए साधना-परम्परा, दर्शन-शास्त्र एवं तान्त्रिक-अनुष्ठानों के अध्ययन की सुविधा की व्यवस्था की गई। इस तरह, इन सम्प्रदायों के बौद्ध-अनुयायी जो अधिकाँश नेपाल, भूटान, तिब्बत आदि देशों तथा भारतीय हिमालयी बौद्ध-बहुल-क्षेत्रों के निवासी हैं, उनके लिए रिवालसर बौद्ध-अध्ययन एवं साधना का केन्द्र बन गया। इनके अतिरिक्त, विश्व के अनेक देशों में स्थापित इन सम्प्रदायों के मठों एवं अध्ययन-केन्द्रों के अनुयायियों के लिए भी आज यह पवित्र स्थान ध्यान-भावना एवं धार्मिक तीर्थाटन के रूप में प्रतिष्ठित है। रिवालसर-तीर्थ की ख्याति वैश्विक रूप में प्रतिष्ठित होने से, आज यहाँ प्रतिदिन देश-विदेश के हज़ारों पर्यटकों का भी आवागमन होता है, जिसके कारण स्थानीय लोगों के लिए भी रोज़गार के अच्छे अवसर प्राप्त हुये हैं। इस तरह, आज हिमाचल-प्रदेश के आर्थिक विकास में भी रिवालसर-तीर्थ का योगदान देखा जा सकता है।

दूसरी ओर, रिवालसर को पद्म-सरोवर-तीर्थ के रूप में उजागर करने के काल से ही यहाँ लद्दाख, जंस्कर, लाहौल, पतनम, पांगे-पलदर, स्पिति, किन्नौर आदि विभिन्न दुर्गम क्षेत्रों के बौद्ध अनुयायी यातायात की सुविधा न होने के बावजूद गुरु-पद्मसंभव सरोवर-तीर्थ का महात्म्य और इसमें गहरी आस्था के कारण अनेक दुर्गम स्थानों को लाँघते हुए, कई-कई दिनों तक लम्बी पैदल यात्रा करके दर्शनार्थ आते थे। आस्था ही वह शक्ति थी जिसके कारण इतनी लम्बी पैदल यात्रा करने में वे सक्षम होते थे। कालान्तर में, यातायात की सुविधा सुलभ होने के बाद, आर्थिक अभाव के बावजूद, यहाँ के निवासी वर्ष में एक बार इस पवित्र तीर्थ-स्थल का दर्शन करने अवश्य रिवालसर आते थे। विशेषकर, इन क्षेत्रों के बुजुर्गों की यह इच्छा होती थी कि वे अपने जीवन-काल में एक बार अवश्य रिवालसर स्थित गुरु-पद्मसंभव-सरोवर-तीर्थ का दर्शन करें, ताकि जीवन-मुक्ति में यह तीर्थ-दर्शन सहायक सिद्ध हो सके।

रिवालसर-तीर्थ भौगोलिक दृष्टि से उपर्युक्त क्षेत्रों से दूरस्थ होने पर भी, आज इन सभी हिमालयी बौद्ध-क्षेत्रों के निवासी, जिन्हें पहले साल में बड़ी कठिनाई से एक बार आने का

सुयोग मिलता था, उन्हें आज आर्थिक-सम्पन्नता के कारण बारम्बार दर्शनार्थ आने का सु-अवसर मिल रहा है। आज इन निवासियों के पास निजी वाहनों की सुलभता के कारण, रिवालसर-तीर्थ में हिमालयी बौद्ध दर्शनार्थियों की संख्या में भारी वृद्धि देखने को मिलती है। प्रसन्नता की बात यह है कि वर्तमान समय में यह तीर्थ हिमालयी बौद्ध क्षेत्रों के बुजुर्गों के अतिरिक्त युवा-पीढ़ियों में काफी प्रसिद्ध है। इन क्षेत्रों के युवाजन रिवालसर-तीर्थ के महात्म्य से भली-भाँति परिचित हो रहे हैं और गुरु पद्मसंभव की साधना एवं दर्शन की परम्परा के साथ-साथ बौद्ध-धर्म की विभिन्न शाखाओं की आम्नाय-परम्पराओं के अध्ययन में भी रुचि लेने लगे हैं। यद्यपि इन क्षेत्रों के अधिकाँश युवाजन पारम्परिक बौद्ध-परिवार से सम्बद्ध रखते हैं, लेकिन उन्हें बौद्धधर्म के बारे में अभी भी और अधिक जानकारी रखने की आवश्यकता है। इधर कुछ वर्षों में, यहाँ के युवाओं को भी इस बात का अहसास हुआ है, जिसके फलस्वरूप आज यहाँ के युवाजन भोटी भाषा को पढ़ने तथा बौद्धधर्म को जानने में अधिक रुचि रखने लगे हैं। वर्तमान भौतिकवादी और तकनीकी युग में भी इन क्षेत्रों के युवाओं में अध्यात्म के प्रति गहरी रुचि और आस्था में वृद्धि होना, शुभ संकेत है जो निश्चित रूप से उनके जीवन की सार्थकता को सिद्ध करेगी तथा हिमालयी बौद्ध-समाज में सद्धर्म के प्रभाव को और अधिक दृढ़ता प्रदान करेगी। हिमालयी बौद्ध समाज के युवाओं को अपनी अध्यात्मिक विरासत की रक्षा करने के लिए तथागत बुद्ध के द्वारा उपदेशित सद्धर्म और कालान्तर में उनके शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा प्रचारित-प्रसारित और विकसित सद्धर्म के विभिन्न मार्गों को भी जानना होगा; तभी मैत्री, करुणा, अहिंसा, पर-हित, स्व-पर-समता, सह-अस्तित्व आदि सद्धर्म के मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज की संरचना में योगदान दे सकेंगे।

जैसा कि विदित है आज रिवालसर-तीर्थ-स्थल सनातन, बौद्ध और सिक्ख धर्मों के अनुयायियों का धार्मिक एवं सांस्कृतिक समागम का केन्द्र बन चुका है, जो धर्मों के परस्पर सौहार्द्ध के लिए एक ऐतिहासिक एवं अनूठा धार्मिक-संगम-स्थल है। इस तीर्थ-क्षेत्र में धर्मों में परस्पर सौहार्द्ध बहुत ही आवश्यक है। सभी धर्मों का उद्देश्य प्राणी मात्र का कल्याण करना है, जिसमें मानव जाति के हित के साथ-साथ सभी प्राणियों एवं भौगौलिक परिवेश का भी हित निहित है। कोई भी प्राणी दुःख नहीं चाहता है, सभी सुख चाहते हैं। ये तीनों धर्म 'बसुधैव कुटम्बकम्' के आदर्श को मानने वाले हैं। इसलिए प्रत्येक प्राणी की दुःख-निवृत्ति एवं सुख-प्राप्ति में मार्ग-दर्शक के रूप में इन धर्मों का योगदान आवश्यक है। धार्मिक तीर्थ-स्थलों का

महात्म्य भी इसी में है कि तीर्थ-स्थानों के दर्शन से लोग मनोवाँछित फल की अभिलाषा के साथ-साथ चित्त-विशुद्धि, मानसिक-शान्ति, सह-अस्तित्व एवं अहिंसा का भाव लेकर जायें और मैत्री और करुणा से युक्त होकर अपने जीवन को सुखमय बनायें। निस्संदेह, सभी धर्मों का मूलभूत उद्धेश्य समाज में मैत्री, करुणा, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व एवं विश्व-बन्धुत्व को प्रतिष्ठित करना है। इसी संदर्भ में रिवालसर-तीर्थ-स्थल का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व समाज में सदा बनी रहे और यह तीर्थ-स्थल लोकोपयोगी सिद्ध हो, इसके लिए सनातन, सिक्ख और बौद्ध धर्म के अनुयायियों को स्थानीय जनता के साथ मिलकर सत्प्रयास करना होगा, इस तीर्थ-स्थल के महात्म्य और प्रतिष्ठा को सदा बनाये रखना होगा, तभी रिवालसर तीर्थ-स्थल की सार्थकता सिद्ध होगी।

निस्संदेह, हिमाचल सरकार ने भी विगत वर्षों में देश-विदेश में विख्यात रिवालसर-तीर्थ के महत्त्व को पहचाना है और धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पर्यटन की दृष्टि से रिवालसर क्षेत्र को अधिक महत्त्व दिया है। अभी भी इस क्षेत्र को सुव्यवस्थित तरीके से विकसित करने की आवश्यकता है, ताकि देश-विदेश से आध्यात्मिक शान्ति की तलाश में आने वाले तीर्थ-यात्रियों को असुविधा न हो। राज्य सरकार ने प्रत्येक वर्ष गुरु पद्मसंभव त्सिङ्गापा बौद्ध सभा, रिवालसर, मण्डी के तत्त्वावधान में गुरु पद्मसंभव के जीवन से जुड़े छ़े-चु अर्थात् दशमी तिथि को आयोजित धार्मिक-अनुष्ठान एवं सांस्कृतिक उत्सव को व्यापक-स्तर पर आयोजित करने का जो निर्णय लिया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इस तीर्थ-स्थल के महत्त्व को अन्तरराष्ट्रीय जगत में भी उजागर कर धार्मिक पर्यटन-स्थल के रूप में मार्ग प्रशस्त करने का राज्य सरकार का यह प्रयास पर्यटन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। निस्संदेह देश-विदेश से धार्मिक-पर्यटकों के आवागमन से राज्य सरकार को भी आर्थिक लाभ होगा, जो राज्य के विकास में सहायक सिद्ध होगा।

गुरु पद्मसंभव की जीवन-लीला से सम्बद्ध दशमी तिथि अर्थात् 'छ़े-चु' आज हिमालयी बौद्ध बहुल क्षेत्रों में 'छ़ेशु' के रूप में एक सांस्कृतिक उत्सव का रूप ले चुका है। 'छ़े-चु' शब्द यद्यपि दशमी तिथि का सूचक है, जो निर्माण-काय के रूप में लोक-कल्याणार्थ उपस्थित गुरु पद्मसंभव के जीवनचरित का एक महत्त्वपूर्ण दिवस है। इस दिन बौद्ध-विहारों में विशेष रूप से गुरु पद्मसंभव के जीवन से सम्बद्ध धार्मिक-अनुष्ठान सम्पन्न किये जाते हैं और उत्सव के दौरान छम अर्थात् धार्मिक-नृत्य या मुखौटा-नृत्य आदि का प्रदर्शन किया जाता है, जिसमें वज्रयान के विभिन्न इष्टदेवों, धर्मपालों, रक्षकों तथा यम आदि देवता के

मुखौटे लगाकर धार्मिक अनुष्ठानिक-नृत्य का प्रदर्शन करते हैं। इन धार्मिक अनुष्ठानिक-नृत्यों में बौद्ध-अनुयायियों के लिए जीवन और मृत्यु के आलोक में धार्मिक संदेश भी निहित रहता है। रिवालसर-तीर्थ में आयोजित धार्मिक-अनुष्ठान एवं उत्सव में सम्मिलित होने के लिए दूर-दराज़ के हिमालयी बौद्ध अनुयायी विशेषकर, लाहौल, स्पिति, किन्नौर, पांगे, पलदर, जंस्कर, लद्दाख, सिक्किम, अरुणांचल, भूटान, नेपाल तथा भारत के विभिन्न भूभाग में निवासरत भोटदेश के निर्वासित जनता सहित देश-विदेश के बौद्ध-अनुयायी आते हैं और पुण्यार्जन करते हैं। इसलिए रिवालसर तीर्थ-स्थल में इस धार्मिक-उत्सव के आयोजन का विशिष्ट महत्त्व है।

बौद्ध धर्म के महायानी परम्परा के अनुसार रिवालसर झील गुरु पद्मसंभव के निर्माणकाय की चर्या से जुड़ा हुआ तीर्थ है। इसलिए सर्वप्रथम गुरु पद्मसंभव के जीवन-चरित का संक्षेप में पर्यालोचना करना समीचीन प्रतीत होता है। भोटदेश, भूटान, नेपाल सहित समूचे हिमालयी बौद्ध क्षेत्रों के अनुयायी गुरु पद्मसंभव को गुरु रिनपोछे, ओ-ग्यन रिनपोछे, गुरु पद्मा-जुङ्-ने आदि नामों से संबोधित करते हैं। इन समस्त क्षेत्रों के बौद्ध अनुयायी तथागत बुद्ध के पश्चात् गुरु पद्मसंभव को द्वितीय बुद्ध की प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं। यद्यपि भारतीय ज्ञान-परम्परा में गुरु पद्मसंभव की जीवनी का विवरण विस्तृत रूप से देखने को नहीं मिलता है। केवल चौरासी सिद्धों के वृत्तान्त में संक्षिप्त रूप में उनकी जीवनी मिलती है, परन्तु भोटदेश में विशेषकर, ञिङ्मा-परम्परा में उनके जीवन-चरित के अनेकानेक स्रोत उपलब्ध हैं। उनमें से उनकी जीवन-चरित से सम्बद्ध ग्रन्थ 'पद्मा-क-थङ्' सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध है। तदनुसार, उनका जीवन-चरित ऐतिहासिकता के साथ-साथ आलौकिकता से भी परिपूर्ण है। अतः गुरु पद्मसंभव के निर्माणकाय रूपी जीवन-चरित को समझने के लिए ऐतिहासिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता की आवश्यकता अधिक है। समूचा भोटदेश और हिमालयी प्रदेश का जनसमुदाय गुरु पद्मसंभव को ञिङ्मा-सम्प्रदाय का संस्थापक-गुरु मानते हैं और उनके द्वारा उपदेशित साधना-मार्ग को मुक्ति का साधन मानकर सांसारिक दुःख-सागर से मुक्त होने के लिए उनके उपदेशों और साधनाओं का अनुसरण करते हैं। भोट-बौद्ध-परम्परा में गुरु पद्मसंभव के जन्म के सम्बन्ध में मुख्यतः दो परम्परायें प्रचलित हैं– इनमें से प्रथम उपपादुक-सत्त्व (=आकस्मिक रूप से उत्पन्न प्राणी) तथा दूसरा जरायुज-सत्त्व(=गर्भ से उत्पन्न प्राणी) के रूप में उत्पत्ति। ञिङ्मा-परम्परा के अधिकांश अनुयायी गुरु पद्मसंभव को उपपादुक-सत्त्व के रूप में उत्पन्न मानते हैं और ओडियान प्रदेश के राजघराने से सम्बन्ध स्वीकारते हैं।

भौगोलिक दृष्टि से विद्वानों में ओडियान देश के बारे में मतैक्य नहीं है। कई विद्वान् वर्तमान अफगानिस्तान और पाकिस्तान सीमा पर स्थित स्वात घाटी को और कई विद्वान् भारत के उड़ीसा क्षेत्र को ओडियान प्रदेश का भूभाग मानते हैं। अस्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र निस्संदेह वज्रयान का केन्द्र था। सिद्धाचार्य इन्द्रभूति ओडियान देश का राजा था, जिन्होंने गुरु पद्मसंभव को अपना आध्यात्मिक दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। उनकी अनेक रचनाओं में से 'ज्ञानसिद्धि' प्रमुख है। विद्वानों ने इनका काल लगभग 687-717 ई. सन् निश्चित् किया है। सिद्धाचारिणी लक्ष्मींकरा इनकी बहन थी। इन्होंने 'अद्वयसिद्धि' नामक ग्रन्थ की रचना की है। ये दोनों ग्रन्थ वज्रयान-साहित्य में 'अष्टसिद्धि-संग्रह' के अन्तर्गत संकलित हैं और वर्तमान में संस्कृत भाषा में उपलब्ध है। यह ग्रन्थ विभिन्न सिद्धाचार्यों की रचना का संग्रह है। इन रचनाओं में बौद्ध सिद्धाचार्यों ने चित्त की सहजावस्था के साक्षात्कार को विशेष बल दिया है।

ओडियान देश के तत्कालीन राजा इन्द्रभूति के शासन-काल में राज्य धन-धान्य से अत्यन्त सम्पन्न था। राजा इन्द्रभूति बहुत ही करुणाशील तथा दानी व्यक्ति थे। उन्होंने एक बार राज-दरबार के सम्पूर्ण खज़ाने को ज़रूरतमन्द लोगों को बाँट दिया। अन्ततः उनका खज़ाना रिक्त हो गया। दूसरी ओर, राजा के निःसंतान होने के कारण राजा तथा प्रजा सभी दुःखी थे। यद्यपि राजा इन्द्रभूति की अनेक रानियाँ थीं, किन्तु उनसे उन्हें संतान की प्राप्ति नहीं हुई। इस तरह, राजा इन्द्रभूति राजवंश को जारी रखने के लिए सन्तान न होने से प्रायः दुःखी रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने राज-दरबार के मन्त्रियों से देश को पुनः धन-धान्य से सम्पन्न बनाने के लिए मन्त्रणा की। राज दरबार के मन्त्रियों ने अपनी-अपनी दृष्टि से अनेक उपाय बताये। उनमें से एक मन्त्री ने राजा इन्द्रभूति को सुझाव दिया कि वे महासागर के धनकोश झील में चिन्तामणि रत्न की खोज में जायें, जिससे राज-दरबार पुनः धन-धान्य से सम्पन्न हो सके। यह सुझाव राजा इन्द्रभूति को सबसे उचित प्रतीत हुआ। तत्पश्चात् राजा अनुभवी सार्थवाहों तथा सेवकों के साथ महासागर की यात्रा पर निकल पड़े। इस यात्रा में कृष्णधर नामक अनुभवी मन्त्री भी राजा इन्द्रभूति के साथ सम्मिलित था। महासागर की लम्बी यात्रा के पश्चात् अन्ततोगत्वा उन्हें चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति हुई। राजा इन्द्रभूति नेत्रहीन भी थे। इस चिन्तामणि रत्न के प्राप्त होते ही राजा की आँखों की रोशनी फिर से लौट आयी। इस तरह, समुद्री-यात्रा के उद्देश्य में सफल होकर वापिस लौटते समय राजा इन्द्रभूति ने समुद्र में एक स्थान पर अत्यन्त अद्भुत दृश्य देखा। उस स्थान पर चारों ओर प्रकाश फैला हुआ था। आस-

पास में रंग-बिरंगे पक्षी कलरव करते हुए उड़ रहे थे। उत्सुकतावश राजा इन्द्रभूति ने मन्त्री कृष्णधर को उस स्थान का निरीक्षण करने भेजा। जब मन्त्री कृष्णधर उस स्थान पर पहुँचा तो उन्होंने देखा कि वहाँ सरोवर के मध्य में मनमोहक कमल खिला हुआ है और उस कमल के ऊपर एक तेजस्वी शिशु विराजमान है। इस दृश्य को देखकर मन्त्री कृष्णधर हतप्रभ रह गये और अचम्भित भी हुआ। उसे अपने आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने जब स्थिर होकर अच्छी तरह से देखा तो उसे वही दृश्य साफ-साफ दिखाई दिया। तत्काल उसने वहाँ जाकर कमल सहित उस दिव्य शिशु को गोद में उठा लिया और राजा इन्द्रभूति के पास लौट आये। जब राजा इन्द्रभूति ने उस दिव्य शिशु को देखा तो वह आश्चर्यचकित रह गए और अत्यन्त आह्लादित भी हुए। राजा इन्द्रभूति उसे अपने साथ राजमहल में ले आये और उसे अपना पुत्र स्वीकारते हुए, राजकुमार के रूप में घोषित किया और पद्म के मध्य प्राप्त होने से उस शिशु का नाम 'पद्मसंभव' रखा। तबसे 'पद्मसंभव' का उस राजमहल में राजकुमार के रूप में लालन-पालन हुआ। राजकुमार ने आवश्यक सभी विद्याओं एवं कलाओं में निष्णात होकर, युवावस्था में डाकिनी प्रभावती से विवाह भी किया। लेकिन राजमहल का राजसी जीवन उन्हें रास नहीं आ रहा था। अन्ततः उन्होंने राजमहल के विलासी जीवन से असंतुष्ट होकर, तथागत के सद्धर्म के द्वारा जगत् का कल्याण करने हेतु गृह-त्याग का निर्णय लिया। क्योंकि, इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए ही उन्होंने निर्माणकाय के रूप में जन्म लेकर राजा इन्द्रभूति का सानिध्य प्राप्त किया था। ओडियान नरेश इन्द्रभूति का इकलौता पुत्र होने के कारण, पद्मसंभव के लिए गृह-त्याग का योग नहीं बन रहा था। अन्ततः गुरु पद्मसंभव ने ओडियान देश के राजकीय नियम के विरुद्ध कोई गम्भीर अपराध करने का निश्चय किया, जिसके कारण राजा को राज-दरबार के नियमानुसार देश से निष्कासित करने को बाध्य होना पड़े। इसी योजना के तहत उन्होंने उपाय-कौशल्य से ओडियान देश के एक मन्त्री के पुत्र का बध कर दिया, जो मृत्यु के उपरान्त बुद्धक्षेत्र में उत्पन्न हुआ। राज-दरबार सहित सभी देशवासी इस कृत्य से अत्यन्त क्रोधित हुये। अन्ततः इस अपराध के लिए उस देश के नियमानुसार राजा इन्द्रभूति को न चाहते हुए भी अपने इकलौते पुत्र को देश से निष्कासित करने का दण्ड सुनाना पड़ा। आचार्य पद्मसंभव इसी निर्णय की प्रतीक्षा में थे, जिससे उनके गृह-त्याग का मार्ग प्रशस्त हो सके। दूसरी जरायुज-परम्परा के अनुसार, गुरु पद्मसंभव राजा शुक्र और रानी जालीन्द्र के गर्भ से साधारण मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुये थे। जन्म के समय उनके शरीर में वज्र और पद्म के चिह्न अंकित थे। वास्तव में गुरु पद्मसंभव का उपपादुक-सत्त्व के रूप में

उत्पत्ति ही अधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध है। इसे भगवान् बुद्ध के भविष्यवाणी से भी जोड़कर देखा जाता है। भगवान् बुद्ध ने परिनिर्वाण के समय यह घोषणा की थी कि कालान्तर में ओडियान देश के धनकोष झील में एक ऐसा उपपादुक सत्त्व का जन्म होगा जो मेरे शासन को व्यापक रूप से प्रचारित एवं प्रसारित करेगा।

ओडियान देश से निष्कासित होने के बाद गुरु पद्मसंभव ने जम्बूद्वीप के 'शीतवन', 'नन्दनवन' आदि विभिन्न महाश्मशानों में डाक-डाकिनियों को वश में करके अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कीं। इसके बाद 'धनकोश द्वीप' तथा 'पारुषवन' की ओर प्रस्थान किया जहाँ डाक-डाकिनियों के मार्गदर्शन से आध्यात्मिक चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया। तत्पश्चात् बोधगया स्थित वज्रासन की यात्रा की और वहाँ से 'ज़होर' प्रान्त की ओर प्रस्थान किया। इसी क्रम में उन्होंने आचार्य प्रभहस्ति से प्रव्रज्या ग्रहण की तथा तत्कालीन सद्धर्म के महान् गुरुओं के शरण में जाकर सूत्र एवं तन्त्र का सांगोपांग अध्ययन किया।

'ज़होर' प्रान्त में पहुँचने पर गुरु पद्मसंभव ने राजकुमारी मन्दारवा से भेंट की, जो वास्तव में एक डाकिनी थी। उन्होंने डाकिनी मन्दारवा को तान्त्रिक गुह्यचर्याओं में कर्ममुद्रा के रूप में सहचरी बनाया। वहाँ से दोनों मरतिक गुफा की ओर प्रस्थान किये, जहाँ तीन माह तक दीर्घायु की साधना करने के उपरान्त अन्ततः अमितायु बुद्ध से साक्षात् अभिषेक ग्रहण कर विद्याधर के उच्च स्तर को प्राप्त किये और जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो गये अर्थात् दोनों अमरता को प्राप्त हुये।

जब 'ज़होर' के राजा को राजकुमारी मन्दारवा से गुरु पद्मसंभव की सहचारिणी होने की जानकारी मिली तो उन्होंने अपने मन्त्रियों को बुलाकर दोनों को एक साथ जीवित दाह-संस्कार करने का आदेश दिया। राजा के आदेशानुसार, मन्त्रियों ने गुरु पद्मसंभव और डाकिनी मन्दारवा को जीवित अवस्था में ही दाह-संस्कार कर दिया। किन्तु, दोनों अग्नि के प्रभाव से अछूता रहा और उस स्थान पर पद्म(=कमल) से युक्त एक रमणीक सरोवर प्रकट हुआ, जहाँ कमल के मध्य में गुरु पद्मसंभव और डाकिनी मन्दारवा प्रज्ञोपाय-युगनद्ध रूप में आलिङ्गबद्ध थे। वास्तव में दोनों अमरता की सिद्धि को प्राप्त कर चुके थे, अर्थात् उन दोनों का काय वज्रकाय के रूप में परिणत हो चुका था। जब मन्त्रियों ने इस अलौकिक घटना के बारे में राजा को सूचित किया तो राजा को अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने प्रायश्चित स्वरूप राज्य सहित अपना सर्वस्व सद्धर्म के लिए गुरु पद्मसंभव को सौंप दिया। इस तरह गुरु

पद्मसंभव ने राजा सहित सम्पूर्ण प्रजा को सद्धर्म में दीक्षित कर सभी को तथागत के सद्धर्म का अनुयायी बना दिया।

इस काल-खण्ड में पद्मसंभव पूरे भारत में तान्त्रिक सिद्ध गुरु के रूप में समादृत थे, इसी बीच गुरु पद्मसंभव श्रीनालन्दा महाविहार में तान्त्रिक आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुये। जिसका वर्णन आचार्य शान्तरक्षित ने तिब्बत में भोट नरेश ठ्रि-स्रोङ् दे-च्चन के समक्ष बौद्धधर्म की स्थापना के संदर्भ में किया था। विदित है कि भोट नरेश ठ्रि-स्रोङ् दे-च़न ने तिब्बत में बौद्ध धर्म की स्थापना के लिए भारत से तत्कालीन नालन्दा महाविहार के महोपाध्याय आचार्य शान्तरक्षित को आमन्त्रित किया था। भोटदेश के नरेश के निवेदन को सादर स्वीकार कर जब आचार्य शान्तरक्षित ने भोटदेश में तथागत बुद्ध के सद्धर्म की स्थापना का प्रयास किया तो उस समय तिब्बत में अनेक विधर्मियों ने बाधा पहुँचाना शुरु किया। आचार्य शान्तरक्षित के सत्प्रयास के बावजूद, भोट नरेश को तिब्बत में सद्धर्म की स्थापना में सफलता नहीं मिली। अन्ततः आचार्य शान्तरक्षित ने इसके निवारण के लिए भोट नरेश को तत्कालीन भारत में सुप्रसिद्ध तान्त्रिक सिद्धाचार्य पद्मसंभव को तिब्बत में आमन्त्रित करने का सुझाव दिया। इसी घटना के फलस्वरूप आठवीं शताब्दी में गुरु पद्मसंभव का तिब्बत में पदार्पण हुआ, जो कालान्तर में विधर्मियों का उपाय-कौशल्य से मर्दनकर उन्हें बौद्धधर्म की रक्षा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया। इस तरह गुरु पद्मसंभव ने भोटदेश में भिक्षुसंघ की स्थापना करने में आचार्य शान्तरक्षित का भरपूर सहयोग किया, जिसके फलस्वरूप तिब्बत में भिक्षुसंघ एवं बौद्धधर्म की विधिवत् स्थापना हुई। इसी क्रम में, तिब्बत की राजधानी ल्हासा में ओदन्तपुरी महाविहार के अनुरूप वर्ष 814 ई. में 'समये' महाविहार की स्थापना की गयी, जहाँ बुद्ध-वचनों तथा भारतीय आचार्यों द्वारा रचित बौद्ध-शास्त्रों का संस्कृत से भोट-भाषा में अनुवाद का कार्य, भोट नरेश की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय अनुवाद परिषद् की देख-रेख में प्रारम्भ हुआ। इस ऐतिहासिक महाविहार में शैक्षणिक एवं अनुवाद-कार्य को प्रारम्भ करने में आचार्य शान्तरक्षित एवं गुरु पद्मसंभव का योगदान अविस्मरणीय है। कालान्तर में भोटदेश में यह परम्परा वर्षों तक जीवित रही, जिसके फलस्वरूप सूत्र, तन्त्र, सहित पाँच महाविद्याओं से सम्बद्ध विशाल साहित्य का सृजन हुआ जो क-ग्युर एवं तन्ग्युर के रूप में भोट-भाषा में संकलित है। आज विश्व में सद्धर्म की श्रीनालन्दा-परम्परा का मुख्य स्रोत यही भोट-साहित्य है, जिसकी जीवित-आम्नाय-परम्परा भोटदेश के सद्गुरुओं एवं विद्वानों के पास सुरक्षित है

और यह भोट-साहित्य विश्व के विभिन्न भाषाओं में अनूदित होकर सद्धर्म के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान दे रही है।

गुरु पद्मसंभव के जीवन-काल में तिब्बत में अनेकानेक शिष्य एवं प्रशिष्य हुये हैं। उनमें राजा ठ्रि-स्रोङ् दे-त्सन सहित उनकी रानी भी थी। कालान्तर में, समूचे तिब्बत में व्याप्त उनके अनेक शिष्यों ने लौकिक एवं लोकोत्तर सिद्धियाँ प्राप्त कीं। भोट-साहित्य के अनुसार, भोट नरेश ठ्रि-स्रोङ् दे-त्सन ने अपनी रानी येशे छ़ो-ग्यल को अभिषेक के समय गुरु पद्मसंभव को मण्डल-स्वरूप भेंट किया था। गुरु पद्मसंभव ने डाकिनी येशे छ़ो-ग्यल को अपना शिष्या स्वीकारा जो तिब्बत के खारचेन वंश की राजकुमारी थी। कालान्तर में योगिनी येशे छ़ो-ग्यल तिब्बत में गुरु पद्मसंभव की गुह्य-चर्याओं में कर्ममुद्रा रूपी सहचारिणी बनी और महामुद्रा की सिद्धि प्राप्त की। उन्होंने गुरु पद्मसंभव के साथ तत्कालीन तिब्बत के समस्त भूभाग में सद्धर्म के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान दिया। गुरु पद्मसंभव के निर्देशानुसार उनके उपदेशों को भविष्य में यथोचित काल में प्रकट करने के लिए निधि के रूप में सुरक्षित रखा गया, जिन्हें बाद में निधि-उद्घाटक सद्गुरुओं के द्वारा समय-समय पर प्रकट किया गया। वास्तव में डाकिनी येशे छ़ो-ग्यल भगवती तारा स्वरूपा थी, जो काल विशेष में सद्धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उपस्थित त्रैकालिक बुद्ध गुरु पद्मसंभव की सहचरी योगिनी के रूप में लोक में प्रकट हुई थी। इस तरह सम्पूर्ण तिब्बत सहित हिमालयी भूभाग में गुरु पद्मसंभव और डाकिनी येशे छ़ो-ग्यल सहित उनके प्रमुख शिष्यों ने वर्षों तक सद्धर्म के वज्रयान-साधना का परचम लहराया, जिसका एक लम्बा इतिहास भोट-साहित्य में दर्ज है। कालान्तर में गुरु पद्मसंभव के भविष्यवाणी के अनुसार उनके शिष्यों और प्रशिष्यों ने तिब्बत, भूटान, नेपाल, तथा भारत के हिमालयी क्षेत्रों में उनकी शिक्षाओं को चहुँ ओर प्रकाशित एवं प्रसारित किया जो अद्यावधि सतत जारी है। इस तरह, तिब्बत, भूटान, नेपाल के अतिरिक्त अरुणांचल, सिक्किम, हिमाचल, लद्दाख, जंस्कर आदि भारतीय हिमालयी भूभाग में भी, गुरु पद्मसंभव की गुह्य-साधना से सम्बद्ध अनेक ऐतिहासिक तीर्थ-स्थल मौजूद हैं, जिन्हें व्यापक रूप से उजागर करने की आवश्यकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु पद्मसंभव की जीवन-लीला का मुख्य उद्देश्य भोटदेश सहित हिमालयी भूभाग में सद्धर्म के वज्रयान शाखा का विशेष रूप से प्रचार-प्रसार करना था। हम देख सकते हैं कि इस भूभाग के अनेकानेक स्थलों में उन्होंने डाक-डाकिनियों के साथ आध्यात्मिक गुह्यचर्यायें सम्पन्न की हैं, जो सम्प्रति तीर्थ-स्थल का रूप ले चुके हैं। आज भी इन स्थलों में उनके पाद-चिह्न, साधना-स्थल, बिहार आदि बहुतायात में दर्शनार्थ उपलब्ध

हैं। ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा कि गुरु पद्मसंभव ने भविष्यत् काल में इस भूभाग के जन-सामान्य में सद्धर्म के प्रचार-प्रसार तथा लोक-कल्याण को ध्यान में रख कर ही इन आध्यात्मिक गुह्य-स्थानों में विभिन्न साधनाओं को प्रकट किया गया होगा,जो कालान्तर में तीर्थ-स्थल का रूप ले सके, जिससे सद्धर्म के प्रति जन-मानस में श्रद्धा उत्पन्न हो तथा सद्धर्म का अनुपालन कर जीवन को सार्थक बना सके। निस्संदेह, ये स्थान आज सत्त्वों के पुण्यार्जन के लिए महातीर्थ का स्वरूप ले चुके हैं। इन्हीं में से एक रिवालसर का पद्मससंभव-तीर्थ भी है, जिसको ऐतिहासिक दृष्टि की अपेक्षा आध्यात्मिक दृष्टि से देखने की अधिक आवश्यकता है। गुरु पद्मसंभव का निर्माणकाय स्वरूप जीवन-चरित का कार्यक्षेत्र बहुत ही व्यापक एवं रहस्यमय है। भोट-साहित्य में उनके जीवन-काल की आठ प्रमुख लीलाओं के आधार पर, पद्म-र्ग्यल-पो, शा-क्य सेङ्-गे, ब्लो-ल्दन म्छोग्-ग्सेस्, ञि-मयि-होद्-ज़ेर, से-ङ्गे-ग्र-स्ग्रोग्, म्छो-स्क्येस्-र्दो-र्जे(=पद्म-स्क्येस्-प), ऽजिगस्-मेद्-र्ग्यल-पो, र्दो-र्जे-ग्रो-लो आदि उनके आठ नाम प्रचलित हैं। लोक में सद्धर्म की प्रतिष्ठा के लिए विभिन्न कालों में गुरु पद्मसंभव के द्वारा प्रदर्शित इन आठ जीवन-चरितों का विवरण भोट-साहित्य में विस्तृत रूप में प्राप्त होता है, विस्तार-भय से उनका विवरण यहाँ नहीं दिया गया है।

भोट-साहित्य के अनुसार, 'ज़होर' शब्द प्राचीन समय में पूर्वी भारत के किसी स्वतन्त्र और समृद्ध प्रान्त का नाम था। इस सम्बन्ध में कुछ भोट विद्वान् 'ज़होर' शब्द को 'सहोर' का प्राकृत रूप भी मानते हैं, जो समीचीन प्रतीत होता है। भोट-साहित्य में विद्वानों ने 'ज़होर' नामक भूभाग को ओडियान के पूर्व में स्थित माना है। कुछ विद्वान् असम, बंगाल तथा त्रिपुरा के विस्तृत भूभाग को मानते हैं। योगिनी मन्दारवा इसी प्रदेश की राजकुमारी थी, जो भारत में गुरु पद्मसंभव की प्रमुख योगिनियों में से एक थीं। निस्संदेह, यह भूभाग सातवीं-आठवीं शताब्दी में वज्रयान तान्त्रिक-साधना का केन्द्र था। भोट-परम्परा में श्रीनालन्दा के प्रसिद्ध उपाध्याय एवं आचार्य शान्तरक्षित तथा आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान को भी 'ज़होर' प्रदेश का ही निवासी माना जाता है। अधिकाँश आधुनिक विद्वानों ने भी इन दोनों आचार्यों के जन्म स्थान को तत्कालीन वृहद् बंगाल ही माना है। दूसरी ओर, 'ज़होर' प्रदेश को केवल भौगोलिक ही नहीं, अपितु आध्यात्मिक साधना-भूमि का भी प्रतीक माना जाता है। इस तरह, परम्परावादी बौद्ध-अनुयायी एवं कुछ आधुनिक विद्वान् मण्डी रियासत के रिवालसर क्षेत्र को भी 'ज़होर' प्रदेश से जोड़कर देखते हैं, जहाँ वर्तमान में गुरु पद्मसंभव और मन्दारवा की गुह्यचर्याओं की गुफा एवं अन्य पाद-चिह्न आदि मौजूद हैं। गुरु पद्मसंभव प्रज्ञा और करुणा से युक्त सर्वज्ञ एवं

कालातीत व्यक्तित्व की प्रतिमूर्त्ति थे। ऐसे व्यक्तित्व की लीला की कोई सीमा नहीं होती है। वह लोकहितार्थ किसी भी काल-खण्ड में प्रकट हो सकते हैं। ऐतिहासिक पुरुष होते हुए भी उनके निर्माणकाय रूपी जीवन-चरित को केवल इतिहास के झरोखे से देखने का प्रयास करना उनके लोकोत्तर व्यक्तित्व को नहीं समझना है। इसलिए जन-समुदाय को श्रद्धा एवं भक्ति से ओत-प्रोत होकर इन तीर्थ-स्थलों में जो सकारात्मक ऊर्जा का संचरण हो रहा है, उसे आत्मसात कर जीवन को अध्यात्ममय एवं सुखमय बनाने की आवश्यकता है, न कि ऐतिहासिकता के जाल में फँसकर उलझने की। आज का इतिहासकार वर्तमान स्रोतों के आधार पर पद्म-सरोवर रिवालसर-तीर्थ में गुरु पद्मसंभव के पदार्पण को सिद्ध न कर पाये, लेकिन इस भूभाग के प्रत्येक कण में जो आध्यात्मिक रहस्य छिपा हुआ है, जिसकी अनुभूति लाखों लोगों को यहाँ आने पर होती है। वास्तव में, यही अध्यात्म का रहस्य है और इस तीर्थ-स्थल का महात्म्य भी। संक्षेप में, यही रिवालसर-पद्म-सरोवर-तीर्थ का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पैमाना है। इस लेख में संदर्भ-ग्रन्थों तथा अन्य टिप्पणियों को प्रमाण के रूप में संकेत नहीं किया गया है, क्योंकि यह आलेख केवल सूचनात्मक विवरण के रूप में लिखा गया है॥ भवतु सर्वमंगलम्॥

सह आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो. नं. - 9415447466

मेरी भूटान की यात्रा

—डॉ. रमेश चन्द्र नेगी (माथस)—

यात्रायें मनुष्य के जीवन में कई अनुभूतियों से साक्षात्कार कराती हैं। इससे मनुष्य समाज के कई महत्त्वपूर्ण ज्ञान से पूरित होते हैं और नए ज्ञान से रूबरू भी होते रहते हैं। भारत एक विभिन्न परम्पराओं, संस्कृतियों, धार्मिक विरासतों, भाषाओं आदि का अद्भुत देश है और एक अत्यन्त प्राचीन देश होने के कारण यहाँ के अध्यात्म की गूँज विश्व के देशों में प्रतिबिम्बित भी होती रहती हैं।

भारतीयता का अर्थ है- मानवीयता अथवा मावनता या विश्वप्रेम, विश्वबन्धुत्व, वसुधैव कुटुम्बकम् आदि। यह विश्वबन्धुत्व की धारा भारत से होकर ही गुज़रती है और सारे संसार को विशुद्धतम मार्ग भी भारत ही दिखाता है, अतः 'भारत' रूपी यह नाम अपने अर्थ के अनुरूप ही सिद्ध होता है। इसीलिये इस देश को 'आर्यों का देश' भी कहा गया है। अर्थात् यह देश साधु, सन्त, महात्मा, अर्हन्त, बोधिसत्त्व एवं बुद्धों का देश रहा है। इस भद्रकल्प के 'शाक्यमुनि बुद्ध' जैसे महापुरुष इसी धरती की ऊपज हैं, जिन्हें विश्व के बुद्धिजीवी लोग विश्व-शान्ति का केन्द्र-बिन्दु मानते आये हैं, क्योंकि इन्होंने महाकरुणा को धर्म का केन्द्र माना है।

पिछली बार मार्च, 2025 ई. में, मैं श्रीलंका के महाथेरो रेवत (महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया के भूतपूर्व महासचिव) जी के साथ श्रीलंका की यात्रा पर गया था और इसी वर्ष 8-18 नवम्बर पर्यन्त मुझे भूटान यात्रा पर जाने का भी सुअवसर मिला, जो मन को बहुत ही आह्लादित एवं उत्साहित करता है।

भूटान के चतुर्थ राजा परम माननीय जिग्स-मेद् सेङ्-गे वङ्छुग के 70वें जन्म दिवस पर वहाँ की रायल सरकार द्वारा बुद्ध के पवित्र अवशेषों को भूटान की अपनी जनता के दर्शनार्थ भेजने के लिये भारत सरकार से निवेदन किया था, जिसे हमारी सरकार ने सहज रूप से स्वीकार कर लिया। इसी यात्रा में भारतीय प्रतिनिधि के रूप जाने हेतु 34 लोगों की सूची की घोषणा संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा की गई थी, जिसमें मेरा नाम भी सम्मिलित था। इस हेतु मैं संस्कृति मन्त्रालय सहित आई.बी.सी., दिल्ली का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ। विशेषतया मैं डॉ. आशीष भावे जी का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने मुझसे सम्पर्क कर इस यात्रा में सम्मिलित होने के लिये प्रेरित किया।

क्योंकि भूटान पूरे विश्व में एक ऐसा देश है, जहाँ वज्रयान पर्यन्त सभी बौद्ध परम्परायें आज भी पूर्णतया पारम्परिक अवस्था में ही नहीं, वहाँ के लोगों की आम ज़िन्दगी में यह परम्परा समाई हुई है। यही कारण था कि मैं इस पवित्र भूमि के साक्षात् दर्शन करने की लालसा को रोक नहीं सका। मैंने इस प्रतिनिधि-मण्डल में सम्मिलित होने का मन बना लिया और अपनी स्वीकृति प्रदान की। ऐसे ही जब यात्रा की अवधि को भूटान नरेश के निवेदन पर 18 नवम्बर, 2025 ई. को पुनः 26 नवम्बर, 2025 ई. तक बढाया गया, तब भी मैंने उस प्रतिनिधि-मण्डल के साथ रहकर पवित्र बुद्धधातु के साथ ही वापस लौटने का निर्णय लिया।

फिर बुद्ध के पवित्र धातु के साथ रहने का अवसर कहाँ मिलता है? तथागत शाक्यमुनि बुद्ध का साक्षात् दर्शन मैं नहीं कर पाया। लेकिन मेरे लिये तो 'पवित्र धातु' ही 'बुद्ध' है, जिसकी पूजा तथा दर्शन के लिये आज भी सारे विश्व के बौद्धानुयायी सदा तरसते रहते हैं। मैं अपने को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि मुझे लगभग 18 दिन पर्यन्त पवित्र बुद्धधातु के साथ रहने का अवसर मिला और 25 नवम्बर, 2025 ई. को पवित्र बुद्धधातु के साथ ही भूटान से भारत लौटा तथा पवित्र बुद्धधातु को दिल्ली के 'राष्ट्रीय संग्रहालय' में स्थापित कर 26 नवम्बर को सारनाथ, वाराणसी लौटा।

यह यात्रा प्रथम 8 नवम्बर, से 18 नवम्बर, 2025 ई. तक होनी थी, लेकिन पवित्र बुद्धधातु के भूटान पहुँचने के बाद इसे भूटान नरेश के विशेष आग्रह पर यह यात्रा 24 नवम्बर, 2025 ई. तक बढायी गयी, क्योंकि भूटान के दूर-दराज़ के लोग इतने कम समय में बुद्धधातु का दर्शन नहीं कर पा रहे थे, और साथ ही ए.एस.आई. ने इस धातु को सुरक्षा आदि की दृष्टि से थिम्फू के अलावा भूटान के अन्य जगहों पर ले जाने की अनुमति नहीं दी थी।

संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार के निर्देश के अनुसार माननीय श्री वीरेन्दर कुमार, मन्त्री सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मन्त्रालय, भारत सरकार के नेतृत्व में दिनांक 8 नवम्बर, 2025 ई. को हमारे विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी, डॉ. तन्ज़िन ञिमा नेगी एवं मैंने, प्रतिनिधिमण्डल के अन्य सदस्यों के साथ भारतीय वायु सेना के विशेष विमान द्वारा भगवान् बुद्ध के पवित्र धातु-अवशेष को लेकर भूटान के लिए प्रस्थान किया। विमान द्वारा ढाई घण्टे की लगातार हवाई यात्रा के बाद भूटान के पारो नामक विमानतल पर प्रातः 9.30 बजे वायु सेना का विशेष विमान उतरा और वहाँ राजकीय स्वागत के साथ पवित्र धातु-अवशेष को यहीं पर बने एक विशेष कक्ष में सम्मानपूर्वक ले जाकर

वहाँ वज्रयानीय विधि से पूजन कर स्थापित किया गया तथा वहाँ उपस्थित लोगों द्वारा दर्शन किया गया।

पारो विमालतल के बाद 8 नवम्बर, 2025 ई. को ही पवित्र धातु अवशेष का पारो में ही कुछ समय तक विशेष जुलूस के साथ अनेक लोगों को दर्शन दिया गया और तत्पश्चात् पवित्र धातु को सीधा थिम्फु, भूटान विशेष सम्मान-सत्कार के साथ अनेक गाड़ियों के काफिले में लाया गया तो सम्पूर्ण मार्ग में हज़ारों लोग 'खतग' आदि के साथ बुद्ध-धातु के दर्शन एवं सम्मान के लिये खड़े दिखे। इस तरह पवित्र धातु के थिम्फू, भूटान पहुँचने में सामान्य समय से ज्यादा समय लगा।

इस दौरान वहाँ के लोगों में बुद्ध के प्रति जो श्रद्धा दिखाई दी वह स्वाभाविक एवं सहज लगी और उसमें कोई कृत्रिमता की बू नहीं दिख रही थी। अन्ततः लगभग दो-ढाई घण्टे की यात्रा समाप्त कर थिम्फू के 'टशी छोस ज़ोङ' विहार के प्रांगण में समस्त भूटान की जनता के लिये पवित्र धातु को दर्शनार्थ स्थापित किया गया, जो वहाँ पर बुद्धधातु के स्वागत के लिये उपस्थित थी। यहाँ पर प्रथम सेना द्वारा सलामी दी गई और तत्पश्चात् भारतीय राष्ट्रगान के साथ भूटान का राष्ट्रगान भी गाया गया।

इसके बाद पवित्र धातु को 'टशी छोस् ज़ोङ' विहार के मुख्य कक्ष में स्थापित कर इस विहार के भिक्षुओं ने सर्वप्रथम बुद्ध-धातु की वज्रयानीय पद्धति के अनुसार विशेष पूजा-अर्चना (ठुस्-सोल आदि) की तथा तत्पश्चात् एक संक्षिप्त समारोह का आयोजन भी हुआ। इसमें वहाँ के गृहमन्त्री के संक्षिप्त उद्बोधन के बाद भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के प्रमुख माननीय श्री वीरेन्दर कुमार, मन्त्री सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मन्त्रालय, भारत सरकार ने भी उद्बोधित किया।

इस पवित्र बुद्धधातु का दर्शन भूटान पहुँचने के बाद 8 नवम्बर, 2025 ई. से लेकर 24 नवम्बर, 2025 ई. पर्यन्त कुल 17 दिनों का प्रतिदिन सुबह 7-7.30 बजे से लेकर रात्रि 6-7 बजे तक होता रहा। इस दर्शन में लाखों लोग सम्मिलित हुये। इस दर्शन के दौरान प्रारम्भ के 7-8 दिनों तक धातु-दर्शन का सुबह प्रारम्भ हुआ क्रम रात 6-7 बजे तक टूटता नहीं था। यह भूटान के जनता की तथागत शाक्यमुनि बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा को ही प्रस्तुत कर रहा था।

8 नवम्बर, 2025 ई. को ही भूटान के गृहमन्त्री द्वारा भारतीय प्रतिमण्डल के सदस्यों के साथ ही तत्सम्बन्धित अन्य सहायक लोगों के लिये रात्रि 6 बजे रात्रिभोज का आयोजन भी किया गया था। इसमें तत्सम्बन्धित सभी लोग उस भोज में सम्मिलित हुये। इससे आपसी

मेल-जोल बढ़ता गया और लोग एक दूसरे को विशेष रूप से पहचानने लगे, जो कि बहुत आवश्यक है।

9 नवम्बर, 2025 ई. को वहाँ के सर्वोच्च धर्मगुरु जे खेनपो द्वारा सर्वप्रथम प्रातः बुद्धधातु की विशेष पूजा 'ज़ोङ' में की गई। इसमें प्रतिनिधि-मण्डल के कुछ सदस्य समय की सही सूचना प्राप्त नहीं होने के कारण, उस विशेष पूजा में सम्मिलित नहीं हो पाये और जे खेनपो का दर्शन भी नहीं कर पाये। जब हम कुछ लोग वहाँ पहुँचे तो परमपावन जे खेनपो जा चुके थे।

तब हम लोगों ने 'ज़ोङ' में ही एक अन्य विशेष विहार का दर्शन किया। इसमें ऊपर चढ़ने के लिये लकड़ी की सीढ़ियाँ बहुत लम्बी-लम्बी बनी थीं। दो या तीन सीढ़ी को चढ़कर हम लोग सबसे ऊपर के कक्ष में पहुँचे तो उसमें एक स्मृति-स्तूप का विशेष रूप से दर्शन हुआ। इसमें वहाँ के 69वें जे खेनपो गेदुन रिन्छेन (1926-1997 ई.) जी का सम्पूर्ण शरीर रखा हुआ है- ऐसा कह रहे थे। यहीं बगल के कमरे में उनके द्वारा पहने गये चीवर आदि सम्भाल कर रखे गये थे, उनका भी हम लोगों ने दर्शन किया, जो कि एक श्रद्धावान् व्यक्ति के महान् गुरु के आशीर्वाद पाने के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य-सा लगता है।

उनके बारे में कहा गया कि वे अपनी मृत्यु के बाद एक वर्ष पर्यन्त एक विशेष वज्रयानी समाधि (थुग्स-दम) में रहे। इससे यह सिद्ध होता है कि वे एक बहुत बड़े महामुद्रा के साधक रहे थे। आपका साक्षात् दर्शन मैंने सन् 1983-84 ई. में परम पूजनीय खेनपो 'शद्-डुब तन्ज़िन' जी के साथ दार्जिलिङ में किया था। अब मैं उन्हें भूल चुका था, लेकिन यहाँ इनके स्तूप-दर्शन के साथ ही वह पुरानी यादें ताज़ी हो गईं। मैं अपने को सौभाग्यशाली समझने लगा कि मैंने एक महान् साधक का साक्षात् दर्शन अपने विद्यार्थी जीवन में किया था। मुझे स्मरण है कि वे दार्जिलिङ में एक छोटे से कमरे के अन्दर बहुत पतले आसन पर ही बैठे थे और जो फोटो यहाँ कक्ष में लगी थी, उसमें वे वैसे ही दिख रहे थे। उनकी विनम्रता तथा सादगी एवं आशीर्वाद को मैं अब पहचान पा रहा था।

यहाँ से हम लोग सार्वभौमिक शान्ति प्रार्थना, भूटान 2025 ई. के स्थल पर गये तथा उसमें हम लोग भी सम्मिलित हुये। मेरे सहित कुछ लोग टेन्ट नं. 11 में रहे, जहाँ पर भूटान के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री जी का भी दर्शन हुआ। इसी दौरान वर्तमान राजा परम मा. जिग्स-मेद् गे-सर वङ्छुग जी भी उस स्थल पर बैठे लोगों के विशेष अवलोकनार्थ आते हुये हमारे टेन्ट नं.11 में भी आये तथा भन्ते धम्मजोति आदि हम तीन चार लोगों ने उनके साथ फोटो भी

खिचवाया। दोपहर का भोजन इसी स्थल पर ग्रहण किये। इस विशेष सार्वभौम शान्ति प्रार्थना में भोटदेश के बड़े-बड़े गुरु सहित एक लाख के आस-पास लोग सम्मिलित हुये थे।

यहाँ से हम लोग मध्याह्न 4 बजे 'टशी छोस् ज़ोङ' विहार गये जहाँ पवित्र बुद्धधातु जनता के दर्शनार्थ स्थापित किया गया था। ठीक इसी समय यहाँ के चतुर्थ राजा परम मा. जिग्स मेद् सेङ्गे वङ्छुग जी का आगमन बुद्धधातु के दर्शन के लिये हो रहा था। हम लोगों ने उनका स्वागत भी किया तथा उनके द्वारा विशेष पूजा सहित बुद्धधातु के दर्शन के बाद उनके साथ सामूहिक फोटो भी लिया गया था।

9 नवम्बर, 2025 ई. का रात्रि भोज भारतीय दूतावास द्वारा आयोजित किया गया था। इस अवसर पर आई.बी.सी. दिल्ली द्वारा पवित्र धातु, जिसे चार बार थाईलैंड आदि देशों में विशेष दर्शन के लिये भेजा जा चुका है, उससे सम्बन्धित लघु चलचित्र को भी दिखाया गया और इसी दौरान प्रतिनिधि-मण्डल के मुखिया मन्त्री वीरेन्द्र जी, आई.बी.सी. के निदेशक हलधर जी एवं अन्य दो भिक्षुओं ने भी सभा को सम्बोधित किया था।

10 नवम्बर, 2025 ई. को ग्लोबल प्रार्थना-स्थल के पास हम लोगों ने विशेष व्यापार मञ्च का अवलोकन किया तथा थिम्फू में ही स्थित 'बुद्ध पोईन्ट' के दर्शन हेतु गये। वहाँ पर भी विस्तृत रूप से 'ग्लोबल प्रार्थना समारोह, भूटान-2025' से सम्बन्धित वज्रयानी विधि से पूजा सम्पन्न की जा रही थी। आज यह स्थल थिम्फू का एक विशेष दर्शनीय स्थल बन गया है। बुद्ध-स्तूप के नीचे के दो या तीन मञ्जिलों में महायान एवं वज्रयान से सम्बन्धित देवी-देवताओं की प्रतिमायें स्थापित की गई हैं, जो अत्यन्त ही दर्शनीय हैं। इस 'बुद्ध पोईन्ट' के मार्ग में ही एक 'हिन्दू मन्दिर' भी बनाया गया है। इसका निर्माण-कार्य 2012-13 ई. में प्रारम्भ हुआ था और इस मन्दिर की नींव परमपावन 'जे खेनपो' ने रखी थी। इस प्रकार 'भूटान' में हिन्दू धर्म को राजकीय मान्यता प्राप्त हुई है, जो दोनों देशों की मित्रता को और प्रगाढ़ करता है।

यहाँ से हम लोग 'डुग देछेन फुग', विहार गये, जो डुग्-पा काग्युद् सम्प्रदाय के धर्म-रक्षक देव 'जग्-पा मे-लेन्' का विशेष पवित्र स्थल है। यहाँ पर भी भिक्षुओं द्वारा विशेष पूजा सम्पन्न की जा रही थी और हम लोग भी उस विहार के अधिष्ठित देवों के समक्ष पंचाग प्रणाम करने के बाद कुछ देर वहीं उसी कक्ष में बैठे रहे। वह कक्ष छोटा था। यहाँ से हम लोग होटल 'ल्हादिङ' मध्याह्न 4.30 बजे लौटे।

रात्रि में आई.बी.सी., दिल्ली द्वारा केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान में पढ़े भूटान के भूतपूर्व छात्रों के लिये भोजन का आयोजन किया गया और उसमें केवल 7-8 भूतपूर्व छात्र-छात्रायें ही सम्मिलित हो सके। मा. कुलपति (केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान सारनाथ, वाराणसी) प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी के साथ विशेष वार्ता भी आयोजन की गई थी। उक्त वार्ता के अवसर पर मुझे भी छात्रों को सम्बोधित करने के लिये कहा गया और मैंने 'संघे शक्तिः कलौ युगे' विषय को आधार बना कर कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही। अन्त में कुलपति जी ने उपस्थित छात्रों को सम्बोधित किया और 'विश्वबन्धुत्व' के साथ-साथ आपसी सहयोग के विषय को प्रखर रूप से प्रस्तुत किया।

दिनांक 11 नवम्बर, 2025 ई. को चतुर्थ भूटान नरेश जिग्स-मेद् सेङ्गे वङ्छुग जी के 70वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में आयोजित विशेष कार्यक्रम में भाग लेने के लिये हम लोग प्रातः 7.30 बजे ही समारोह स्थल पर पहुँच गये। 8.30 बजे समारोह प्रारम्भ हुआ। भूटान नरेश ने एकत्रित विशाल जनसभा को विशेष रूप से सम्बोधित किया और उसके बाद भूटान का सांस्कृतिक कार्यक्रम भी दिखाया गया।

पूर्वाह्न 11.30 बजे भारत के यशस्वी प्रधान मन्त्री माननीय नरेन्द्र मोदी जी ने विशेष रूप से इस सभा में भाग लिया तथा भूटान नरेश ने स्वागत भाषण दिया तथा उसके पश्चात् विशाल जनसभा को भारत के मा. प्रधान मन्त्री श्री मोदी जी ने संबोधित किया। इस सम्बोधन के दौरान उन्होंने दिल्ली में एक दिन पहले हुये बम-ब्लास्ट का भी जिक्र करते हुये इस घृणित कार्य के तह तक जाने की बात कही। महामहिम भूटान नरेश ने भी इस घटना के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त कीं।

इस सभा के बाद हम लोग 'सेम्स-खा-तोग ज़ोङ', विहार जिसका निर्माण 1629 ई. में शब्स डुङ् ङग्-वङ् नम्-ग्यल ने असुरों को दमित कर किया गया था, का दर्शन के लिये गये। इस ज़ोङ के निर्माण के बाद यह विहार 'ज़ोङ्-खा' भाषा के अध्ययन का प्रथम स्थल भी बना। यह भूटान का प्रथम 'ज़ोङ्' है और थिम्फु जाने वाले पर्यटक इसका दर्शन अवश्य करते हैं। जब मा. प्रधान मन्त्री मोदी जी सन् 2019 ई. में भूटान गये थे तो आपने भी इस 'ज़ोङ्' का दर्शन किया था और यहाँ पर एक पेड़ भी रोपित किया था। इस वृक्ष का दर्शन अब हम लोग यहाँ पर कर सकते हैं, जिसके पास ही काष्ठ-पट पर मा. प्रधानमन्त्री द्वारा रोपित करने की बातें कही गई हैं। यह 'सेम्स-खा तोग ज़ोङ' भूटान के एकीकरण को भी दर्शाता है, जो पहले बिखरा हुआ था।

12 नवम्बर, 2025 ई. से थिम्फू, भूटान में परमपावन जे खेनपो द्वारा त्रिदिवसीय कालचक्र का अभिषेक दिया गया। इस त्रिदिवसीय कालचक्र के अवसर पर प्रतिनिधि-मण्डल के पाँच सदस्यों ने भी सम्मिलित होने का निर्णय लिया, जिसमें डॉ. श्री आशीष भावे जी भी सम्मिलित थे। आज ही प्रतिनिधि-मण्डल के कुछ लोग दिल्ली वासस लौट रहे थे, जिसमें मा. कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी जी के साथ डॉ. तन्ज़िन ञिमा भी सम्मिलित थे।

वे लोग प्रातः पारो विमानतल के लिये निकल गये। हम पाँच लोग कालचक्र-स्थल पर गये और श्री डॉ. आशीष भावे जी की कृपा से अन्दर कालचक्र-स्थल में घुस पाये, हालांकि हम लोगों ने पूर्व में इसके लिये अनुमति प्राप्त नहीं की थी। यहाँ इस अवसर पर प्रधान मन्त्री मा. मोदी जी का दर्शन अत्यन्त समीप से हो पाया, जहाँ पर उन्होंने कालचक्र-मण्डल की परमपावन जे खेनपो के साथ तीन बार प्रदक्षिणा की थी। इसके बाद वे हाथ जोड़कर लोगों के मध्य भी गये। यह मा. प्रधान मन्त्री मोदी जी को नज़दीक से साक्षात् दर्शन करने का मेरे लिये पहला मौका था। इस कालचक्र-अभिषेक में हम लोग तीनों दिन पूर्ण रूप से उपस्थित रहे। यहाँ कालचक्राभिषेक की समाप्ति के बाद हम लोग 'टशी छोस् ज़ोङ' विहार लौटे तथा वहाँ पर एकत्रित दर्शनार्थियों का अवलोकन करते रहे।

13 नवम्बर, 2025 ई. को प्रातः 10 बजे से मध्याह्न 2 बजे पर्यन्त हम दूसरे दिन के कालचक्र में सम्मिलित हुये तथा मध्याह्न 3.30 बजे से शाम 6 बजे पर्यन्त 'टशी छोस् ज़ोङ', विहार में पवित्र बुद्धधातु के साथ ही रहे।

14 नवम्बर, 2025 ई. को कालचक्र-अभिषेक का अन्तिम दिन था और यह अभिषेक सुबह 9 बजे से मध्याह्न 2 बजे तक लगातार चलता रहा और इसके बाद 4-6 बजे पर्यन्त 'टशी छोस ज़ोङ', विहार में हम बुद्ध के पवित्र धातु के साथ ही रहे। 15 नवम्बर, 2025 ई. को 'दशमी' का दिन था और 'टशी छोस ज़ोङ', विहार ने आगन्तुक लोगों के लिये विशेष 'छम-नृत्य' का आयोजन प्रातः 9 बजे से मध्याह्न 2 बजे तक किया था।

हम लोगों ने भी इस विशेष समारोह का आनन्द लिया और फिर शाम 7.30 बजे पर्यन्त पवित्र बुद्धधातु के साथ ही रहे, जहाँ सभी लोगों को इसका दर्शन कराया जा रहा था। ऐसे ही 16 नवम्बर को भी सुबह 9 बजे से मध्याह्न 4.30 बजे पर्यन्त 'टशी छोस ज़ोङ', विहार में पवित्र बुद्धधातु के साथ ही रहे और लगभग शाम 5 बजे भन्ते धम्मजोति और मैंने थिम्फू में ही स्थित 'राष्ट्रीय स्मारक-स्तूप', जो यहाँ के तीसरे महामहिम राजा जिग्समेद दोर्जे वङछुग (1928-1972 ई.) के स्मरणार्थ बनाया गया है, का दर्शन किया। इसका निर्माण 1974 ई. में

किया गया है। इसका व्यापक रूप से जीर्णोद्धार 2008 ई. में किया गया। यह स्तूप बहुत ही दर्शनीय है। यहाँ पर हम दोनों लगभग 45 मिनट तक रहे।

भूटान में नियम काफी कड़े हैं, जो कि समाज को जोड़े रखने और समृद्धि के लिये बहुत आवश्यक है। यहाँ भन्ते जी स्मारक-स्तूप के साथ मेरा फोटो खींच रहे थे तो उन्होंने कहा कि थोड़ा आप 'लान' में चले जायें, वहाँ से फोटो बहुत सही आयेगा। मैंने भन्ते जी से कहा कि यहाँ पर कोई 'लान' में जाता दिख नहीं रहा है, अतः हम दोनों को भी ऐसा नहीं करना चाहिये। लेकिन लोग कम थे तो हम दोनों को ऐसा लगा कि कोई देख नहीं लेगा और 'लान' में दो चार कदम आगे बढ़ा। जैसे ही ऐसा किया तो किनारे पर काम कर रहे एक व्यक्ति ने देख लिया और हटने के लिये कह दिया। मैं जो पत्थर बिछाया मार्ग बना था, वहाँ लौटा और वहीं से फिर फोटो खिचवाया। यह टोकना अच्छा लगा और हम दोनों के लिये बहुत कुछ सिखा गया। यहाँ से हम दोनों वापस होटल 'ल्हादिङ' लौट आये।

17 नवम्बर, 2025 ई. को हम लोग 'पारो तगछ़ङ' नामक पवित्र स्थल के दर्शन हेतु सुबह 7.15 बजे गाड़ी से रवाना हुये। इसके लिये 'पारो' के इस पहाड़ के नीचे तक गाड़ी जाती है और उसके बाद आधे रास्ते तक घोड़े एवं उसके बाद पैदल जाया जा सकता है। मैंने तो आधे मार्ग तक घोड़े पर जाने का निर्णय लिया और घोड़े वाले को 1400 रुपये प्रदान किये। घोड़े के साथ उनका एक आदमी भी लगाम पकड़े ज़रूर रहता है और मेरे साथ भी एक बहन जी आईं जो घोड़े के लगाम को पकड़ कर आगे-आगे चल रही थीं।

यह मेरी आयु (66 वर्ष) के हिसाब से ठीक ही रहा, क्योंकि घोड़े से उतरने के बाद भी 'पारो तगछ़ङ' विहार के लिये काफी चलना पड़ता है, जो शायद उमरदराज़ लोगों के लिये कुछ मुश्किल पड़ता है। बाकी हमारे मित्र लोग पैदल ही चल पड़े थे, जिसमें भन्ते जी को बाद में काफी मुश्किल हो गई थी, क्योंकि उनके पैर में पहले से ही किञ्चिद् चोट पूर्व में ही लग चुकी थी। यदि वे आधे रास्ते तक घोड़े पर आते तो शायद यह परेशानी उनको नहीं होती, हालांकि मैंने उनको घोड़े से आने के लिये कहा था। बाद में वे घोड़े पर नहीं आ पाने का पछतावा भी कर रहे थे। जिस घोड़े पर मैं चढ़ा था, उस घोड़े का नाम 'ल्हुन-डुब' था। मैं इस घोड़े के प्रति विशेष धन्यवाद करना चाहता हूँ, क्योंकि इस पवित्र स्थल 'तगछ़ङ्' के दर्शन में इस घोड़े 'ल्हुन-डुब' ने मेरी सहायता की। मुझे इसके प्रति थोड़ा दुःख भी हुआ, क्योंकि वह बार-बार हिनहिना रहा था, क्योंकि कोई अन्य घोड़ा इसके साथ नहीं चल रहा था। यदि

भन्ते जी मेरे साथ घोड़े पर आये होते तो शायद उसे अपने मित्रों की याद नहीं आती।

यह 'पारो तगछ़ङ्' नामक स्थल समुद्रतल से 9,678 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। 747 ई. में इस पवित्र स्थल पर आचार्य पद्मसम्भव जो भारत के नालन्दा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहे हैं, दोर्जे डोलोद के रूप में आये थे और 'तगछ़ङ' की इस गुफा में इन्होंने 3 वर्ष 3 महीने 3 दिन की साधना की थी।

यहाँ पर कुल आठ दर्शनीय कक्ष हैं, जिनका दर्शन लोग करते हैं। यहाँ प्रथम विहार का निर्माण ञिङ्गापा के गुरु परम पूज्य 'सोनम ग्यलछ़न' ने 1508 ई. में कराया था और 1645 ई. में इस पवित्र स्थल को भूटान के महान् गुरु 'शब्सडुङ ङग्-वङ् नम्-ग्यल' को भेंट किया गया, जो भूटान राज्य के तत्कालीन संस्थापक गुरु भी रहे हैं।

इन्होंने ही भूटान जो छोटे-छोटे कबीलों में बँटा हुआ था, को एकत्रित कर वर्तमान भूटान की आधार-शिला रखी थी। सन् 1961-1965 ई. के मध्य यहाँ के 34वें जे खेनपो शद्-डुब होद्-ज़ेर जी के द्वारा यहाँ के विहार का पुनरुद्धार किया गया। यहाँ के कुछ विहार 1861-65, 1982-83 एवं 1992 ई. में बनाये गये थे, लेकिन 19 अप्रैल 1998 ई. को यहाँ इस विहार में आग लग गई और बहुत क्षतिग्रस्त हो गया। फिर पुनः वर्तमान में जो विहारों का स्वरूप है, इसका निर्माण 2005 ई. में कराया गया है, जो कि वज्रयानीय बौद्धों की असीम श्रद्धा को प्रकट करता है।

'पारो तगछ़ङ' गुरु रिन्पोछे अर्थात् आचार्य पद्मसम्भव से सम्बद्ध वज्रयानी बौद्धों के लिये एक बहुत ही पवित्र स्थल है। कहा जाता है कि इस पहाड़ में जो एक गुप्त गुफा है, यहाँ आचार्य पद्मसम्भव के आठ रूपों में एक 'दोर्जे डोलोद' व्याघ्री पर चढ़कर पहुँचे थे और उस गुफा में उन्होंने विशेष त्रिवर्षीय साधना भी की थी। उस गुफा का दर्शन केवल वर्ष में एक ही बार होता है- ऐसा कहा गया। लेकिन सामान्य समय में हम लोग उसे बन्द ही पाते हैं और उसके बाहर 'दोर्जे डोलोद' की प्रतिमा आदि का दर्शन कर पाते हैं।

'तगछ़ङ' में अभी इस स्थल पर आठ विशेष दर्शनीय कक्ष बने हैं, जिनमें वज्रयानी परम्परा की अलग-अलग प्रतिमाओं का दर्शन कर सकते हैं। यहाँ विहार के सबसे नीचे वाली मञ्जिल के पास अल्प मात्रा में जल आते रहता है, जिसे पारम्परिक लोग अत्यन्त पवित्र मानते हैं और इस जल को ग्रहण भी करते हैं और अपने सम्बन्धियों के लिये बोतलों में भरकर ले भी जाते हैं, जिसका दर्शन यहाँ होते रहता है।

इस विहार से वापस लौटते समय पैदल ही आना पडता है, क्योंकि शायद खड़ी चढ़ाई होने के कारण घोड़े पर चढ़कर उतर नहीं सकते। उतरने में लगभग डेढ़-दो घण्टे के करीब

समय लगता है। इस दिन हमने लौटते हुये पहाड़ के नीचे उतर कर मध्याह्न 5. बजे के करीब एक रेस्टोरेन्ट में दिन का भोजन ग्रहण किया और 6.30 बजे होटल 'ल्हा-दिङ्' पहुँचे।

18 नवम्बर, 2025 ई. को हम लोग थिम्फू के 'टशी छोस ज़ोङ' विहार में पवित्र बुद्धधातु के साथ ही रहे। ऐसे ही दूसरे दिन 19 नवम्बर को प्रातः 9.30 बजे से 11.30 बजे पर्यन्त 'टशी छोस ज़ोङ' में ही बुद्धधातु के साथ रहे और इसके बाद पारो में 'भूटान राष्ट्रीय संग्रहालय' के दर्शन के लिये गये। यह संग्रहालय एक छोटे से पहाड़ पर बना है और भूटान की संस्कृति आदि को बखूबी दर्शाता है। इसमें यहाँ के धर्म से लेकर राजनीतिक इतिहास सहित भूटान से जुड़ी सारी मुख्य बातों को दर्शाया गया है। यहाँ तिब्बत के चारों बौद्ध सम्प्रदायों को भी बहुत ही अच्छे तरीके से दर्शाया गया है।

यह संग्रहालय प्रातः 9 बजे से लेकर रात्रि 6. बजे पर्यन्त खुला रहता है और संग्रहालय में प्रवेश सम्भवतः निःशुल्क है। इसके बाद 'पारो' में ही हम लोगों ने भारतीय रेस्टोरेण्ट में जाकर भोजन किया और मध्याह्न 4.30 बजे वापस थिम्फू, भूटान लौटे।

20 नवम्बर, 2025 ई. को पुनः हम लोग प्रातः 9.30 बजे से मध्याह्न 4. बजे पर्यन्त 'टशी छोस ज़ोङ' विहार में बुद्धधातु के साथ ही रहे।

21 नवम्बर, 2025 ई. को हम लोग सुबह 9. बजे 'पुनाखा-ज़ोङ' के दर्शन के लिये रवाना हुये तथा मार्ग में पहाड़ की चोटी 'दोचुला' पर 108 लघु रूप से बौद्ध विजय स्तूपों का निर्माण किया गया है, उनका भी दर्शन किया। साथ ही उसी मार्ग पर आगे जाते हुये पहाड़ की तलहटी पर पहुँचने पर प्रथम, प्रसिद्ध डुग्-पा कुन-लेग्स (1455-1529 ई.) से सम्बद्ध 'छिमेद ल्हाखङ' (अमृत देवालय) पड़ता है, उस पवित्र देवालय का भी हम लोगों ने दर्शन किया।

आप कुनगाह 'लेग्सपई ज़ङ्पो' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, जो 'डुग्पा काग्युद्' से सम्बद्ध तीन महान् सिद्धों में से एक हैं। 'डुग्पा काग्युद' में तीन ञोन्पा (पागल) सिद्ध अत्यधिक प्रसिद्ध हुये, जो उईस् ञोन, ञ्चङ्-ञोन् एव डुग्-ञोन् के नाम से जाने जाते हैं। डुग्ञोन पूर्व में भिक्षु थे और बाद में आपने विवाह कर लिया था। आप वास्तविक रूप से सिद्ध थे और डुग्पा काग्युद परम्परा में आपसे सम्बद्ध नाना प्रकार के प्रसंगों का वर्णन बहुत अधिक प्रसिद्ध है, जो वास्तव में बहुत ही शिक्षादायक हैं। इनके द्वारा कथित बातें शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ बहुत ही मनोरञ्जक हैं।

इस 'छिमेद ल्हाखङ' विहार के बाहर 'बोधिवृक्ष' का भी दर्शन हुआ, जिससे मुझे श्रीलंका के विहारों का स्मरण हो आया। श्रीलंका में, विहार परिसर में बोधिवृक्ष का दर्शन आम बात है, क्योंकि भारत से बोधगया के प्राचीन बोधिवृक्ष को अशोक के पुत्र संघमित्र 'श्रीलंका' लेजाकर अनुराधापुर में सोने के घड़े के अन्दर रोप दिया था। इसका दर्शन हम लोग आज भी कर सकते हैं, जिसका पुण्य बुद्ध-दर्शन के बराबर ही माना जाता है। इसी की शाखायें आज अनेक विहारों में दिखाई देती हैं, और पुनः भारत में भी पहुँची।

यहाँ इस 'छिमेद ल्हाखङ' के दर्शन के बाद हम लोग 'पुनाखा ज़ोङ' के दर्शन के लिये आगे चल पड़े। काफी दूर जाने पर मुझे लगा कि मेरा एक मोबाईल फोन गायब हो गया है। मैंने अपनी झोला में यहाँ-वहाँ छान मारा तो वह फोन नहीं मिला। फिर मैंने स्मरण करना शुरु किया कि आखिरी बार मैंने उसे कहाँ देखा, तो स्मरण हो आया कि मैंने उसे 'छिमेद ल्हाखङ' में ही पंचाग प्रणाम के दौरान सामने पड़े 'शब्सड्डुङ ङगवङ नम-ग्यल' जी के आसन पर रख दिया था।

मैंने हमारे सम्पर्क अधिकारी (लाईसन ओफिसर) श्री तन्ज़िन वङ्छुग जी को यह जानकारी गाड़ी में ही दी। उन्होंने जब वहाँ उस देवालय में फोन किया तो वह फोन वहीं पड़ा मिला, जो वज्रयानी श्रद्धावान् भूटान के गुणों को प्रकट कर रहा था। भारत में तो यह कतई सम्भव नहीं है। फिर शाम को लौटते हुये पुनः उस स्थान पर जाकर हम लोगों ने एक महिला से उस 'सेमसङ फोन' को ग्रहण किया। इस फोन के खोने पर फोन के प्रति आसक्ति कम, लेकिन उसमे खींचे गये फोटो के प्रति आसक्ति ज्यादा दिखी।

'छिमेद ल्हाखङ' से जाते हुये हम लोग 'पुनाखा ज़ोङ्' के समीप पहुँचे तो वहाँ पर दर्शन के लिये बड़ी भीड़ इकट्ठी थी, अतः हम लोगों ने पहले उसी के समीप एक रेस्टोरन्ट में दिन का भोजन कर लेने का निश्चय किया। मध्याह्न भोजन करने के बाद हम लोग 'पुनाखा ज़ोङ' के दर्शन हेतु निकले।

'पुनाखा ज़ोङ' दो नदियों के मध्य बना है, जिसे यहाँ के लोग फो-छु (पुरुष नदी) एवं मो-छु (स्त्री नदी) कहते हैं। एक तरफ से इस 'ज़ोङ' में जाने के लिये लकड़ी का बना सुन्दर प्राचीन सेतु बना है, वहीं से पैदल हम लोग 'ज़ोङ' में पहुँचे। इस विहार की निर्माण शैली भी लगभग पूर्व में 'टशी छोस् ज़ोङ' विहार के जैसी ही लगी। लेकिन यहाँ पर एक बात विशेष थी, जो कि सीढी से चढने के बाद विहार का पहला आंगन पड़ता है, वहाँ एक बड़ा-सा स्तूप बना है और उसी आंगन में एक काफी बडा बोधिवृक्ष का भी दर्शन किया जा सकता है।

उसके बाद ऊपर चढकर 'ज़ोङ' के मुख्य आंगन में पहुँचे और वहाँ पर परमपावन 'शब्सड्रुङ् ङवङ नमग्रल' के पवित्र अधिष्ठानों का दर्शन हुआ जो एक दिन पहले ही 'टशी छोस ज़ोङ' विहार से यहाँ पहुँचा था। इस प्रकार हमें उन पवित्र अधिष्ठानों का दो बार दर्शन करने का मौका मिला- एक बार 'टशी छोस् ज़ोङ में और दूसरी बार 'पुनाखा ज़ोङ' में। ये पवित्र अधिष्ठान 6 महीने 'पुनाखा ज़ोङ' में तथा पुनः 6 महीने 'टशी छोस ज़ोङ', थिम्फू, भूटान में प्रतिष्ठित किया जाता रहा है और एक दिन पहले ही वहाँ से ये पवित्र वस्तुयें यहाँ पहुँची थीं। यहाँ से लौटते हुये हम लोग सम्भवतः रात्रि 7-8 बजे होटल 'ल्हादिङ' पहुँचे।

22-23 नवम्बर, 2025 ई. को पवित्र बुद्धधातु के साथ हम 'टशी छोस ज़ोङ', विहार में ही रहे। लोग आते रहे और बुद्धधातु का विशेष श्रद्धा के साथ दर्शन करते रहे। भूटान की जनता की बुद्ध के प्रति अगाध श्रद्धा को देखकर मन प्रफुल्लित हुआ। क्या बूढ़े, क्या बच्चे- सभी में सच्ची श्रद्धा का दर्शन यहाँ हो रहा था। महिलायें दूध पीते बच्चों के साथ भी बुद्धधातु का दर्शन कर रहीं थीं और बच्चों को भी पवित्र धातु का दर्शन करा रही थीं। यही शुद्ध वज्रयानी परम्परा है। इतने दिनों तक यहाँ रहते हुये मैंने यह देखा कि किसी ने खाली हाथ दर्शन नहीं किया। सभी ने कुछ न कुछ रुपये अवश्य रखे। यही बौद्ध परम्परा है। यदि सद्धर्म को जीवित रखना है तो परम्परा का निर्वहण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है, ताकि बुद्धशासन जगत् कल्याण के लिये सदा रहे।

24 नवम्बर, 2025 ई. को भूटान यात्रा के अन्तिम दिन हम लोग 'तगो वज्रयानी पीठ' के दर्शन हेतु निकले। इसके लिये भी आधे मार्ग तक गाड़ी जाती है और बाकी के मार्ग पर चल कर जाया जाता है। रास्ते भर में शिलापट बिछाया गया है और यह मार्ग चलने के लिये बहुत अच्छा है। सीढियाँ नहीं के बराबर है, इसलिये चढने में काफी आसान है। 'तगो' के लिये जाते हुये प्रथम एक नवीन 'बौद्ध विश्वविद्यालय' का दर्शन होता है। यहाँ पर भिक्षु 9 वर्षीय कोर्स के लिये सम्मिलित होते हैं और इसके बाद 3 वर्ष तीन महीने 3 दिन की साधना में चले जाते हैं।

'तगो वज्रयानी अध्ययन पीठ' के लिये यहाँ से काफी ऊपर चढना पडता है। ऊपर पहुँचने पर प्राचीन विहार का दर्शन किया जा सकता है, जिसमें वज्रयानी देवी-देवताओं के साथ ही बुद्ध की प्रतिमाओं का भी दर्शन किया जा सकता है। अभी यहाँ प्राचीन भवनों के पुनरुद्धार का काम चला हुआ था और एक नवीन देवालय का निर्माण-कार्य भी प्रगति पर था।

'तगो विहार' थिम्फू से 14 कि.मी. उत्तर में स्थित है। यह 'चेरी' पहाड़ के समीप स्थित है। 'चेरी' के पहाड़ों में तीन वर्षीय साधना के लिये विशेष एकान्त स्थल बनाये गये हैं, जिनका दर्शन मार्ग में जाते हुये नीचे से भी किया जा सकता है। तगो विहार की आधारशिला सम्भवतः 13वीं शती में फजो डुब्गोम (1184-1251 ई. ?) ने रखी थी और वर्तमान स्वरूप को यहाँ के चौथे शासक 'तन्ज़िन रब-ग्यस' ने 1688 ई. में रखी। कहा जाता है कि परमपावन 'शब्सडुङ ङगवङ नम-ग्यल' ने 1616 ई. में यहाँ की गुफा में साधना भी की थी। यहाँ के मुख्य विहार में 'डुगपा काग्युद' सम्प्रदाय से सम्बद्ध क्रोधी देवता 'हेवज्र' की प्रतिमा स्थापित की गई है।

भूटान में अधिकतर देवालयों में फोटो लेने की मनाही है और यह सूचना प्रवेश द्वार पर ही प्राप्त हो जाती है। यहाँ पर नियम का उल्लंघन कभी नहीं होता। यदि करते हैं तो कोई न कोई आपको अवश्य टोक देगा। 'टशी छोस् ज़ोङ' में भी भन्ते धम्मजोति और हम दोनों के साथ ऐसा ही हुआ। हम दोनों को यह तो मालूम था कि अन्दर देवालय में टोपी नहीं पहनना है, लेकिन देवालय के बाहर मैदान में भी नहीं पहनना है, ऐसा मालूम नहीं था। उस दिन यहाँ थिम्फू, भूटान में कुछ ज्यादा ही ठण्ड थी, इसलिये बाहर मैदान में हम दोनों ने टोपी पहन लिया।

प्रधान संपादक (कोश-विभाग)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415698420

चरथ भिक्खवे-2
रोहिन नदी के साथ चलते हुए

—डॉ. रामसुधार सिंह—

भगवान् बुद्ध का प्रसिद्ध वचन है- "चरथ भिक्खवे चारिकं, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय"- अर्थात्, हे मेरे भिक्षुओं ! बहुत से लोगों के हित, सुख और कल्याण के लिए, लोगों के प्रति अनुकम्पा (दया) के लिए निरन्तर विचरण करो। यह संदेश समाज के उत्थान, करुणा और उसे निरन्तर क्रियाशील बनाये रखने के लिए है। इस महान संदेश के प्रथम अंश 'चरथ भिक्खवे' को आदर्श वाक्य बनाते हुए विगत वर्ष 12 अक्टूबर से 25 अक्टूबर 2024 तक, काशी से कवियों, लेखकों, इतिहासवेत्ताओं के एक दल ने उन स्थानों की यात्रा की एक योजना बनाई थी, जहाँ-जहाँ से बुद्ध गुजरे थे। इस क्रम में यह यात्रा बुद्ध की प्रथम उपदेश-स्थली सारनाथ से प्रारंभ होकर बोधगया, पटना, नालंदा, केशरिया, कोशांबी होते हुए पुनः सारनाथ में पूर्ण हुई थीं।

'चरथ भिक्खवे-2' यात्रा 5 अक्टूबर 2025 से 12 अक्टूबर 2025 तक आयोजित की गई। इस यात्रा की थीम रही- 'रोहिन नदी के साथ चलते हुए'। रोहिन नदी से बुद्ध के जीवन का गहरा संबंध रहा है। कुछ विद्वानों का मानना है कि बुद्ध के वैराग्य के मूल में रोहिन नदी के जल को लेकर शाक्य और कोलीय राजवंश के बीच होने वाला विवाद था। पालि ग्रंथों में इसके प्रमाण मौजूद हैं, जिनके आधार पर बाबा साहब भीमराव अंबेडकर और धर्मानंद कौशांबी जैसे बौद्ध-साहित्य के अध्येताओं ने बुद्ध के वैराग्य के मूल में रोहिन नदी जल-विवाद को कारण माना है। कोलियों और कपिलवस्तु वालों के बीच इसी रोहिन नदी के जल के बँटवारे को लेकर विवाद हुआ, जिसकी पंचायत राजकुमार सिद्धार्थ ने की थी। सिद्धार्थ ने युद्ध की जगह संवाद को वरीयता देने का पहला प्रयोग यहीं किया था। आज विश्वयुद्ध के मुहाने पर खड़ी दुनिया के लिए एक छोटा संदेश यह है कि समस्या का समाधान संवाद है, युद्ध नहीं। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात है नदियों के साथ बुद्ध के रिश्ते को समझना, साथ ही नदियों के हवाले से देश के सांस्कृतिक भूगोल को जानना। भारत नदियों का देश है। हजारों नदियाँ इस देश को रूप देती हैं, इसे सुजलां-सुफलां बनाती है। इस यात्रा में हम उन्हीं में से

एक और लगभग नामालूम-सी नदी रोहिन, जो न केवल हमें बुद्ध से जोड़ती है, बल्कि हमारे निकटतम 'पड़ोसी' नेपाल से भी जोड़ती है, का हाल जान सकेंगे।

इस यात्रा के संयोजक प्रो. सदानंद शाही हैं। साथ में मनोज कुमार सिंह, पंकज चतुर्वेदी, रामसुधार सिंह आनन्द रूप (कलकत्ता) वंदना शाही, शिवांगी सहित कुल बीस कवि, लेखक और संस्कृतिकर्मी शामिल हैं। यात्रा का आरंभ 4 अक्टूबर 2025 को गोरखपुर से हुआ। गोरखपुर से इस यात्रा का आरंभ मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता है, इसका एक निहितार्थ भी हो सकता है। इसी भूभाग में स्थित कुशीनगर में तथागत बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था और आगे चलकर मानवता को समानता, सहजता तथा कर्मकाण्ड और आडंबर को समाप्त कर सहज मार्ग का संदेश देनेवाले गुरु गोरखनाथ की भूमि यही रही है। और तो और कबीर को भी काशी से चलकर इस भूभाग के मगहर क्षेत्र में आना पड़ा। गोरखपुर से प्रारंभ यह यात्रा शाम तक सोनाली बार्डर पार कर लुम्बिनी स्थित जेतवन पहुँचती है। पिछली यात्रा में भी हम लोग लुम्बिनी स्थित ओशो के आश्रम 'जेतवन' में ही रुके थे। दूसरे दिन 5 अक्टूबर को बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी गए, जहाँ महामाया देवी का मंदिर है। इस पूरे विशाल क्षेत्र को जापान सरकार के सहयोग से अत्यन्त भव्य बना दिया गया है। बालरूप में स्थित स्वर्णिम बुद्ध विशेष आकर्षण के केन्द्र हैं। भगवान् बुद्ध की जन्मस्थली होने के कारण बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिए यह स्थान अत्यन्त श्रद्धा का केन्द्र है। उत्खनन से प्राप्त अवशेषों का संरक्षण करते हुए इस पूरे क्षेत्र को अत्यन्त भव्यरूप प्रदान किया गया है। यहाँ बोधिवृक्ष के नीचे कविगोष्ठी का आयोजन हुआ। लुम्बिनी से लौटकर ओशो जेतवन में दोपहर का भोजन और फिर नेपाल स्थित कपिलवस्तु के लिए प्रस्थान। नेपाल स्थित इसलिए कि भारत में भी एक कपिलवस्तु को मान्यता प्रदान की गई है। दोनों स्थलों पर खुदाई में उसके अवशेष मिले हैं। नेपाल का कपिलवस्तु तिल्लोरकोट गाँव में स्थित है। तिल्लोरकोट नाम के बारे में बताया गया कि इस क्षेत्र में बुद्ध के तीन और अवतार पहले हो चुके थे। तिल्लोरकोट का यह स्थान कुल तीन किलोमीटर के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। चारों ओर मोटी दीवार के भग्न परकोटे हैं। हम लोग पश्चिम द्वार से प्रवेश करते हैं। चारों ओर बड़े वृक्ष हैं और रास्ते लकड़ियों के पटरों से बने हुए हैं। पूर्वी द्वार की तरफ पुरानी ईंटों के अवशेष हैं, बताया गया कि इसी द्वार से सिद्धार्थ का महानिष्क्रमण हुआ था।

तिल्लौर कोट से हम 'निगलिहवा' गए, जहाँ सुरक्षित स्थान पर अशोक द्वारा बनवाया गया एक प्रस्तर-स्तंभ रखा हुआ है। इसके ऊपर ब्राह्मी लिपि में जो लिखा है, उसे हम पढ़ने

में असमर्थ रहे। ज्ञात हुआ कि इसका अनुवाद किया जा चुका है। इस स्थान का महत्त्व इस कारण है कि मान्यता के अनुसार यहाँ शाक्यबुद्ध के पूर्व बुद्ध का अवतार 'कनकमुनि' के रूप में हो चुका है। अंधेरा हो चुका था, फिर भी हम थोड़ी दूर पर स्थित 'कुदान' जाना चाहते थे और गए भी। 'कुदान' में एक स्तूप का अवशेष है। कहा जाता है कि संबोधि प्राप्त करने के बाद जब भगवान् बुद्ध, पिता सुद्धोधन के आमंत्रण पर आये तो कपिलवस्तु न जाकर इसी स्थान पर भिक्षुओं सहित डेरा जमाया। यहीं पर प्रजापति गौतमी ने उन्हें भोजन कराया और पुत्र राहुल को दीक्षा भी यहीं दी गई। इस स्थान के साथ बहुत-सी अन्तर्कथाएं जुड़ी हुई हैं और बौद्ध-ग्रंथों में इसके संदर्भ भी मिलते हैं। संदर्भ आता है कि यहाँ पर राजधानी के सभी लोग बुद्ध के स्वागत में आये, पर यशोधरा नहीं आई। यह एक स्त्री का मान था और अंत में बुद्ध को यशोधरा के पास जाना पड़ा। एक अन्य कथा यह है कि जब यहाँ निवास करते हुए भिक्षुगण आस-पास के गाँवों से भिक्षाटन करने लगे, तो चारों ओर राजा की निंदा होने लगी। प्रवाद फैल गया कि राजा का पुत्र भिक्षा माँगकर भोजन कर रहा है। इस पर राजा ने बुद्ध से अनुरोध कर सभी भिक्षुओं को भोजन के लिए आमंत्रित किया। इस अनुरोध पर बुद्ध पहली बार राजधानी आये। यह भी उल्लेख मिलता है कि बुद्ध के चचेरे भाई नंद ने यहीं प्रव्रज्या धारण किया था। इस पूरे क्षेत्र में बौद्ध से संबंधित अन्य स्थल भी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि में इस क्षेत्र का एक खास महत्त्व है। कहा जाता है कि सम्राट अशोक ने इन सभी स्थलों पर स्वयं जाकर स्तंभ बनवाया था। लुम्बिनी में महामाया मंदिर के पास भी एक भव्य स्तंभ स्थित है। नेपाल सरकार इन सभी स्थलों की सुरक्षा एवं संरक्षा में लगी हुई है। इस समय नेपाल के दूसरे भागों में भीषण वर्षा के कारण सरकारी स्तर पर छुट्टियाँ कर दी गई हैं किंतु यह क्षेत्र अभी सुरक्षित है। दिन में बादल घिरे रहते हैं, लेकिन बारिस नहीं है। हम वापस जेतवन आते हैं, कल की यात्रा का लक्ष्य देवदह नगर है।

देवदह नगर रोहिनी नदी का उद्गम स्थल है और सिद्धार्थ की माता महामाया देवी का गृह जनपद (मायका) रहा है। पालि के निदान कथा जातक में वर्णित 'गोतमस्स उप्पादो' में मैंने पढ़ रखा है कि परिपूर्ण गर्भ वाली होकर महामाया देवी ने राजा सुद्धोधन से अपने गृहनगर देवदह नगर जाने की इच्छा व्यक्त की। राजा ने कपिलवस्तु से लेकर देवदह नगर तक के मार्ग को समतल कराकर पवित्र घट-पताका से मार्ग को सुसज्जित कराकर बड़ी सेना के साथ रानी को भेज दिया। मार्ग में लुम्बिनी वन में शालवृक्षों के देख महामाया देवी को वनक्रीड़ा करने की इच्छा हुई। यहीं बुद्ध का जन्म हुआ। वर्तमान में देवदह में ऐसा कुछ नहीं है, जिसे देखकर

इसकी प्राचीनता का बोध हो। वहाँ एक 'मायादेवी माइती' मंदिर है। बताया गया कि यह मायादेवी के मातृग्रह का मंदिर है। मंदिर के द्वार पर कुछ प्राचीन मूर्तियाँ रखी हुई हैं, जिनके संबंध में ज्ञात हुआ कि ये सभी मूर्तियाँ यहाँ के उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। वहाँ के एक व्यक्ति ने बताया कि जब यहाँ सड़क बन रही थी, उस समय नीचे मोटी ईंट की दीवाल मिली थी। बगल में अशोक स्तंभ का एक छोटा खण्डित टुकड़ा था, जिसे घेर दिया गया है। देवदह 'रूपन्देही' जनपद में स्थित है। बाहर गेट पर एक बोर्ड लगा है, जिस पर लिखा है- 'बौद्ध मावली क्षेत्र, भवानीपुर'। यह भी ज्ञात हुआ कि यहाँ से थोड़ी दूर पर स्थित 'पंडितपुर' गाँव है, जहाँ खुदाई से प्राप्त अवशेष यह कि प्रमाणित करते हैं कि यह स्थल कोलीय राज्य की राजधानी रहा होगा।

देवदह के बाद हम पहुँचते हैं रोहिनी नदी के तट पर। हम जाना तो चाहते थे इसके उद्गम स्थल तक, किन्तु ज्ञात हुआ कि इस समय अतिवृष्टि के कारण पहाड़ों पर जाना पूरी तरह मना कर दिया गया है। नदी के तट पर खड़े हम सामने दिख रही हिमालय रेंज की शिवालिक पहाड़ी को देख रहे हैं। यही स्थान रोहिन का उद्गम है। इस समय जहाँ हम पहुँचे हैं, वहाँ नदी छिछली है, धारा तेज है और जल बिल्कुल स्वच्छ है। सामने रोहिनी धीरे-धीरे बह रही है, जैसे वह अतीत की स्मृतियों में खोई हुई है। हम भी नदी में प्रवेश करते हुए धारा के बीच पहुँच जाते हैं और उसकी शीतलतापूर्ण छुवन को भीतर तक महसूस करते हैं। रोहिनी के बहाने हमारी इस यात्रा का एक उद्देश्य यह भी है कि हमें छोटी-छोटी नदियों को बचाना होगा। नदियाँ ही किसी देश की जीवनधारा होती है। हर नदी अपने भीतर एक बड़ा इतिहास समेटे रहती है। नदी के किनारे-किनारे हम कुछ दूर चलते भी हैं। किनारे कुछ स्थानीय लोग पूजा-पाठ के नाम पर फूल-पत्ते और साथ ही प्लास्टिक के पैकेट छोड़ रखे हैं। हम सभी मिलकर बिखरे पैकेट्स को इकट्ठा करते हैं। संयोग से वहीं एक बोरी मिल जाती है। धीरे-धीरे बोरी कचरे से भर जाती है। नदियों के किनारे पूजा सम्बन्धी कार्य करना परम्परा भी है और इसका एक बड़ा प्रतीकार्थ भी है किन्तु आस्था के नाम पर नवीं की धारा को प्रदूषित करना कहाँ तक उचित है ?

यात्रा आगे बढ़ती है। आगे 'पाकड़ी' गाँव में एक विशाल पाकड़ का वृक्ष है। यह स्थान भी पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित है। कहा जाता है कि इतना विशाल पाकड़ का वृक्ष देश में दूसरा नहीं है। ऐसा माना जाता है कि सिद्धार्थ ने यहाँ ध्यान लगाया था। मान्यता है कि इस वृक्ष की रक्षा नाग करते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि यहाँ आस-पास नाग जाति

के लोग रहते थे, जिनके ऊपर इस वृक्ष की रक्षा का दायित्व रहा होगा। एक आश्चर्य की बात यह भी ज्ञात हुई कि इस विशाल वृक्ष पर एक भी पक्षी नहीं बैठते हैं। सचमुच यह आश्चर्यजनक है कि जहाँ बड़ी-बड़ी डालियाँ जमीन से लगकर दूर तक फैल गई हैं और खूब घनी छाया है, वहाँ पक्षी का नाम तक नदारत है। विश्वास है कि नागों के डर से पक्षी नहीं आते हैं। यह देखकर सुखद लगा कि यह पूरा क्षेत्र घने वृक्षों और वनस्पतियों से भरा हुआ है। चारों ओर धान की फसल लगभग तैयार है। यहाँ खड़े रहकर चारों ओर देखते हुए मुझे बनारस के चारों ओर फैला कंक्रीट का जंगल क्यों याद आने लगा ?

आज की यात्रा का अंतिम पड़ाव रहा रामग्राम। कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी अस्थियों को आठ गणराज्यों में वितरित किया गया। इनमें कोलीय गणराज्य को प्राप्त अवशेष को यहीं रामग्राम में स्तूप निर्मित कर संरक्षित किया गया। माना जाता है कि सम्राट अशोक के समय इस तरह के स्तूपों का खनन कर वहाँ रखे गये अवशेषों के कुछ अंश निकाल कर अन्यत्र भी स्तूप रूप में संरक्षित किये गये, किन्तु राम वालों ने इस स्तूप के खनन की अनुमति नहीं दी। परिणामस्वरूप यह स्तूप अपने मूल रूप में अवस्थित है। रामग्राम नामकरण के विषय में यहाँ बड़ी रोचक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में यह स्थान काशिराज के अधीन था। वहाँ के राजा राम को कुष्ठरोग हो गया था, इस कारण उन्हें राज्य से निकाल दिया गया। राजा यहाँ आये और यहाँ के 'कोलवृक्ष' के पत्तों के सेवन से उनका कुष्ठ रोग ठीक हो गया। इसी राजा राम ने यहाँ अपने नाम से 'रामग्राम' की स्थापना की। चूँकि यहाँ कोलवृक्षों की अधिकता थी, इसी कारण इस गणराज्य का नाम 'कोलीय गणराज्य' पड़ा। इस रोहिणी नदी के एक तरफ कोलीय गणराज्य था और दूसरी ओर शाक्य गणराज्य। दोनों गणराज्यों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध होते थे। महामाया देवी और यशोधरा दोनों कोलवंश की थीं। आज नेपाल में रुकने का अंतिम दिन है। यह पूरा क्षेत्र बौद्ध-स्थलों की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। जगह-जगह बुद्ध की प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं। अब से ढाई हजार पहले से लेकर आज तक इतिहास और भूगोल ने न जाने कितनी करवटें बदली हैं, कहा नहीं जा सकता है। उस समय भारत-नेपाल एक ही थे। यहाँ के लोगों को फर्राटे से भोजपुरी बोलते देख मुझे आश्चर्य हुआ। धान के भरे खेत वही, पेड़-पौधे वही, पशु-परानी वही, बोली-बानी वही तब भारत और नेपाल अलग कैसे?

रोहिनी नदी भारत में भवानीपुर गाँव में प्रवेश करती है। यह नदी नेपाल में अपने उद्गम से लेकर गोरखपुर में राप्ती नदी में मिलने तक कुल 122 कि.मी. की यात्रा तय करती है। 60-61 कि.मी. नेपाल में और इतनी ही भारत में। भारत में प्रवेश करने पर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा बेराज (लोहे का बांध) बनाकर पानी रोक दिया गया है और नहर निकाली गई है। यहाँ 'रोहिनी बेराज' के पास हम बैठे हुए हैं। रोहिनी नदी बहुत बड़ी नदी नहीं है। वर्षा के बाद भी इसमें बहुत पानी नहीं है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि पहाड़ के नीचे आने पर इसकी चार-पाँच धाराएं हो जाती है; जैसे नेपाल में रामग्राम के पास निकली धारा झरई नदी कहलाती है। इसकी एक शाखा का नाम चंदन नदी है। यहाँ के पहले इसका नाम घोला है। भारत में आने पर इसकी महाँव, बोनी जैसी कई धाराएं हो गई हैं। यहाँ से आगे टेढ़ी घाट है, जहाँ सभी धाराएं फिर रोहिनी में मिल जाती है। यहाँ से आगे टेढ़ी घाट, चानकी घाट, त्रिमुहानी घाट से होते हुए यह नदी डेमिनगढ़ रेलवे स्टेशन के पास राप्ती नदी में मिल जाती है।

रोहिनी नदी और नदियों की तुलना में बहुत कम प्रदूषित है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इसके मार्ग में कोई औद्योगिक इकाई नहीं है। इधर जब से गाँवों में विकास का कार्य तेजी से होने लगा और हर गाँव में नाले और नालियाँ बनने लगीं, तब से छोटी नदियों में प्रदूषण तेजी से बढ़ा है। हमें नदियों की स्वच्छता को लेकर अब सावधान होने की जरूरत है। छोटी नदियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। नदियाँ भारतीय संस्कृति की मूलतत्व हैं। हमारी यह यात्रा इसके महत्त्व को समझने की एक कोशिश भी है।

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी
मो.नं.- 9451890720

कार्यालयी प्रलेखों का मशीनी अनुवाद

—राजेश कुमार मिश्र—

अनुवाद – परिचय

अनुवाद शब्द "अनु" उपसर्ग तथा "वाद" शब्द के संयोग से बना है – अनु+ वाद= अनुवाद। "अनु" उपसर्ग का अर्थ होता है पीछे या अनुगमन करना तथा वाद शब्द का संबंध है वाद् धातु से, जिसका अर्थ होता है कहना या बोलना। इस प्रकार अनुवाद शब्द का शाब्दिक अर्थ होगा (किसी के) कहने या बोलने के बाद बोलना।

सामान्यतया अनुवाद शब्द को जिस अर्थ में समझा जाता है वह संस्कृत में प्रयुक्त अनुवाद शब्द से भिन्न है। वस्तुतः अनुवाद शब्द को अंग्रेजी के Translation शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता है। अंग्रेजी का ट्रांसलेशन शब्द भी दो लैटिन शब्दों Trans और Lation के योग से बना है जिसका अर्थ होता है पार ले जाना। अनुवाद की प्रक्रिया में एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में ले जाया जाता है। अतः एक भाषा के पार (दूसरी भाषा में) ले जाने की प्रक्रिया के लिए ही ट्रांसलेशन शब्द अंग्रेजी में प्रचलित है।
इस प्रकार संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों की व्युत्पत्ति के आधार पर हम कह सकते हैं कि-

- अनुवाद शब्द का अर्थ है- एक बार कही गई बात को दोहराना या पुनर्कथन
- यहाँ शब्द तथा शब्द रूपों के बजाए अर्थ को दोहराए जाने की बात की ओर संकेत किया जा सकता है।
- ट्रांसलेशन शब्द से भी लगभग यही अर्थ निकलता है कि अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत एक भाषा में व्यक्त अर्थ को दूसरी भाषा में ले जाया जाता है।

अतः हम कह सकते हैं कि अनुवाद एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं। जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है उसे स्रोत भाषा तथा जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है उसे लक्ष्य भाषा कहा जाता है।

रचनात्मक साहित्य, विज्ञान, धर्म, दर्शन, विधि आदि के ग्रंथों में वर्णित विषय के आधार पर अनुवाद के लिए विभिन्न प्रयुक्तियों का प्रयोग किया जाता है किन्तु इस लेख में हम कार्यालयी प्रलेखों के अनुवाद और विशेषतः मशीनी (कम्प्यूटर एवं सूचना तकनीकि आधारित) अनुवाद पर विचार करने जा रहे हैं अतः हम अनुवाद की प्रशासनिक प्रयुक्ति पर चर्चा करेंगे।

कार्यालयी अथवा प्रशासनिक भाषा का प्रयोग प्रशासनिक कार्यों के लिए होता है। प्रशासनिक कार्यों का सम्बंध विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी कार्यालयों की आंतरिक प्रशासनिक व्यवस्था तथा लोक प्रशासन दोनों से होता है। इसलिए कार्यालयी भाषा सरकारी कर्मचारियों, अधिकारियों के साथ-साथ जन-सामान्य से भी सम्बन्धित होती है। यानी जो लोग प्रशासन व्यवस्था कर रहे हैं और जिनके लिए कर रहे हैं उन दोनों वर्गों का भाषा-व्यवहार इससे जुड़ा होता है। इसलिए विषय को सीधे स्पष्ट शब्दों में कहा जाना अनिवार्य होता है। सुबोधगम्यता इसकी पहली शर्त होती है।

कार्यालयी कामकाज में टिप्पण, प्रारूपण, सार लेखन, प्रतिवेदन आदि शामिल हैं तथा पत्राचार के अंतर्गत सरकारी पत्र, अर्द्ध सरकारी पत्र, अधिसूचना, ज्ञापन, परिपत्र, पृष्ठांकन आदि आते हैं। इनकी भाषा सीधी, सरल एवं सुसंगत होना अपेक्षित है। इसलिए न तो ठेठ स्थानीय भाषा का प्रयोग किया जा सकता है और न ही साहित्यिक भाषा का।

कार्यालयी प्रलेखों/ दस्तावेजों की विशेषताएँ तथा अनुवाद की चुनौतियाँ

- **कानूनी / तकनीकी / प्रशासनिक शब्दावली**- शब्दावली तथा वाक्य रचना दोनों की दृष्टि से कार्यालयी हिन्दी, आम बोल चाल की भाषा तथा साहित्यिक हिन्दी से भिन्न होती है। कार्यालयी हिन्दी पर ध्यान देने पर हम पाते हैं कि इसमें अंग्रेजी और उर्दू से आए शब्दों का खूब प्रयोग होता है। इसका कारण लम्बे समय से यह भाषाएं प्रशासन के क्षेत्र में प्रयोग की जाती रही हैं। प्रशानिक हिन्दी को इन भाषाओं से मुक्त करने का प्रयास हिन्दी को कृत्रिम बनाना होगा जबकि इनके शब्द ग्रहण करने का अर्थ भाषा को स्वाभाविक बनाना होगा। इसलिए कार्यालयी हिन्दी की शब्दावली मिली-जुली शब्दावली है। साथ ही जैसे—*notification, memorandum, compliance, procurement, due diligence, undertaking*—इनका सही हिन्दी रूप देना अनिवार्य है। कई बार मशीन ऐसे शब्दों का सामान्य अनुवाद कर देती है, जिससे अर्थ बदल जाता है।
- **विधिक और नीतिगत स्पष्टता-** कार्यालयी प्रलेखों में विधिक तथा नीतिगत या लिए गए निर्णय की स्पष्टता एक अनिवार्य आवश्यकता है एक छोटे से अनुवाद–भ्रम से दस्तावेज़ का अर्थ बदल सकता है और लिए गए निर्णय का गलत अर्थ सम्प्रेषित हो सकता है और / या विवाद उत्पन्न हो सकते हैं।

- **स्वरूप (Formatting) और संरचना-** कार्यालयी पत्र, ज्ञापन, नोटशीट, रिपोर्ट आदि में निश्चित प्रारूप होता है। मशीन अनुवाद हमेशा इसे संरक्षित नहीं रख पाता।
- संकर शब्दों का प्रयोग- जैसे शेयरधारक, टेंडरदाता आदि
- **कर्मवाच्य वाक्यों का प्रयोग जबकि मूलतः हिन्दी कर्तृवाच्य भाषा है।**
- **पारिभाषिक शब्दावली**- कार्यालयी भाषा में बहुत से ऐसे शब्द प्रयोग में होते हैं जिनका कार्यालय के कामकाज के संदर्भ में विशेष अर्थ होता है जबकि सामान्य बोलचाल में अन्य अर्थ अतः कार्यालयी प्रपत्रों मे ऐसे शब्दों सन्दर्भानुकूल एवं प्रचलित प्रयोग आवश्यक होता है - जैसे आज्ञा और आदेश तथा लिखना और दर्ज या प्रविष्ट करना आदि।
- **औपचारिक शैली व औपचारिक शब्दावली** (Formal Vocabulary) कार्यालयी कार्यविधि में अनौपचारिकता न तो अपेक्षित होती है और न ही वांछित अतः सभी कार्यालय के सभी पदाधिकारी के लिए कार्यालयी दस्तावेजों में भाषिक औपचारिकता का निर्वाह करना अनिवार्य माना जाता है। कार्यालयी भाषा में "आपसे निवेदन है कि..." या "निर्देशानुसार..." जैसी शैली महत्वपूर्ण है। मशीन हमेशा इस शैली को सही रूप से नहीं पकड़ पाती।
- **संक्षेपाक्षर और संक्षिप्त रूप (Acronyms) का प्रयोग-** जैसे MoU, HR, MoC, GoI आदि हर एक प्रपत्र में इनका अनुवादन वांछित नहीं होता है इनका या तो लिप्यांतरण करना चाहिए या संदर्भ अनुसार लक्ष्य भाषा में प्रयुक्त विस्तृत रूप देना चाहिए।

कार्यालयी हिन्दी भाषा की इन्हीं विशेषताओं की अनिवार्यता के कारण मशीनी अनुवाद के लिए कार्यालयी दस्तावेज़ विशेष प्रकार की चुनौती प्रस्तुत करते हैं।

डिजिटल युग के प्रारम्भ से पिछले कुछ वषों तक कम्प्यूटर पर किए जाने वाले अधिकांश कार्यालयी कार्यों का अंग्रेज़ी में किया जाना ही सम्भव होता था—चाहे वह सरकारी संचार हो, निजी संस्थानों की रिपोर्टें, अनुबंध, अधिसूचनाएँ, बैठक विवरण, या नीतिगत दस्तावेज़। किन्तु तकनीकि विकास के कारण अब कम्प्यूटर पर हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में सहजता से कार्य करना और अंग्रेजी प्रलेखों का हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करना सम्भव हो चुका है। ऐसे में अंग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता निरंतर बढ़ती जा रही है। मशीनी अनुवाद (Machine Translation–MT) इस आवश्यकता को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। कार्यालयी दस्तावेज़ों का

मशीनी अनुवाद न केवल समय बचाता है, बल्कि बहु-भाषीय प्रशासनिक प्रणाली को सुचारू रूप से चलाने में भी मदद करता है।

मशीनी अनुवाद के प्रमुख प्रकार

कार्यालयी दस्तावेज़ों के मशीनी अनुवाद में सामान्यतया निम्न तकनीकों का उपयोग होता है:

1. नियम-आधारित अनुवाद (Rule-Based MT) भाषाई नियमों और शब्द-संग्रह पर आधारित अनुवाद।

- लाभ: औपचारिक दस्तावेज़ों में नियंत्रित अनुवाद
- कमी: जटिल वाक्यों में त्रुटियों की संभावना

2. सांख्यिकीय अनुवाद (Statistical MT) किसी बड़े आकार के डेटा से निकले पैटर्न के आधार पर अनुवाद।

- लाभ: वास्तविक दस्तावेज़ों के उदाहरणों से सीख
- कमी: शब्दार्थ और संदर्भ की सीमित समझ

3. न्यूरल मशीन अनुवाद (Neural MT – NMT) कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित मशीनी अनुवाद

आज की अधिकांश उन्नत अनुवाद प्रणालियाँ इसी तकनीक पर आधारित हैं।

- लाभ: अधिक स्वाभाविक, संदर्भ-संगत, अर्थपूर्ण अनुवाद
- कमी: अत्यधिक औपचारिक या तकनीकी भाषा कभी-कभी गलत अनुवादित

मशीनी अनुवाद के लाभ

1. **समय की बचत**
2. **बहु-भाषीय संचार में आसानी**
3. **प्रारंभिक मसौदा तैयार करने में प्रभावी**
4. **संदर्भ की तत्काल उपलब्धता**
5. **बड़ी मात्रा में दस्तावेज़ों को शीघ्र संसाधित करने की क्षमता**

मशीनी अनुवाद की गुणवत्ता सुधार के उपाय

1. **पोस्ट-एडिटिंग (Manually Reviewing MT Output)** मशीनी अनुवाद के बाद संबंधित अधिकारी कर्मचारी या विशेषज्ञ द्वारा संपादन आवश्यक है, जिससे भाषा और अर्थ सटीक बनते हैं।

2. **कार्यालयी शब्दकोश (Glossary) तैयार करना -** यदि संस्था अपनी मानक द्विभाषी शब्दावली तय कर ले, तो मशीन अनुवाद की गुणवत्ता बेहतर हो जाती है।
3. **प्रशिक्षण डेटा में औपचारिक दस्तावेज़ शामिल करना -** न्यूरल मॉडल (कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित मशीन अनुवाद प्रणाली) को संभावित प्रपत्रों के साथान पर वास्तविक कार्यालयी पत्राचार व रिपोर्टों के आधार पर बनाने और प्रशिक्षित करने पर परिणाम अधिक निकटवर्ती अनुवाद प्राप्त हो सकते हैं।
4. **टेम्पलेट-आधारित अनुवाद-** नियत प्रारूप वाले पत्र, अधिसूचना या आदेशों के लिए टेम्पलेट आधारित अनुवाद अधिक उपयोगी तथा सरल होता है।

भारत में मशीनी अनुवाद की स्थिति और उपयोग

भारत सरकार के विभिन्न विभाग, विश्वविद्यालय, न्यायालय, शैक्षणिक संस्थान तथा निजी कंपनियाँ अब मशीनी अनुवाद का उपयोग बढ़ा रही हैं। "भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी" के अंतर्गत कई परियोजनाएँ अंग्रेज़ी–हिन्दी अनुवाद को अधिक विश्वसनीय बनाने पर कार्य कर रही हैं। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन राजभाषा विभाग के लिए सी-डैक द्वारा विकसित कंठस्थ-2 व 3, बहुभाषी अनुवाद सारथी, eOffice, BharatVani, तथा इनके अतिरिक्त और कई कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित मशीन अनुवाद प्रणालियाँ (NMT or AI based MT systems) प्रशासनिक उपयोग के लिए विकसित किए जा रहे हैं। प्रस्तुत लेख के अगले भाग में हम भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन राजभाषा विभाग के लिए सी-डैक द्वारा विकसित कंठस्थ-2 व 3, बहुभाषी अनुवाद सारथी प्रणाली पर चर्चा करेंगे।

कंठस्थ - बहुभाषी अनुवाद सारथी प्रणाली

भारतीय बहुभाषी अनुवाद सारथी" एक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित बहुभाषी अनुवाद सॉफ्टवेयर/प्रणाली है जिसे भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग ने सरकारी कार्यालयों में प्रयोग हेतु प्रस्तुत किया है, इसका उद्देश्य विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद को आसान बनाना तथा सरकारी कामकाज और जनता के बीच संवाद को सुगम बनाना है, जिससे एक भाषा में लिखे गए पत्र को अन्य भारतीय भाषाओं में स्वचालित रूप से अनुवादित कर आदेश के निहितार्थ को व्यापक बहुभाषी जनता तक प्रसारित किया जाना सम्भव हो सके। कण्ठस्थ-2 अनुवाद सारथी प्रणाली का लोकार्पण 14 सितम्बर 2002 को सूरत में आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में माननीय केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी द्वारा किया गया।

दिनांक 14-15 सितम्बर 2025 को महात्मा मन्दिर, गाँधी नगर गुजरात में आयोजित 5वें अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में कण्ठस्थ-3 अनुवाद सारथी के उन्नत संस्करण का लोकार्पण माननीय केंद्रीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी ने किया। इस अवसर पर 'सारथी' नामक अनुवाद प्रणाली का परिचय देते हुए माननीय मंत्री जी ने कहा कि इस प्रणाली के माध्यम से हिंदी में लिखे गए पत्र देश की सभी माननीय भाषाओं में सरलता से अनुवादित होंगे। गृह मंत्रालय अब जनता को उनकी भाषा में जवाब देगा, जिससे सरकारी कामकाज और जनता के बीच संवाद और अधिक सहज होगा, इस व्यवस्था को आने वाले समय में और मजबूत किया जाएगा।

इस अवसर पर राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित पुस्तक "बहुभाषी भारत में भाषा प्रौद्योगिकी और ए आई की भूमिका" का विमोचन भी माननीय मंत्री जी के कर कमलों से सम्पन्न हुआ। अद्यतन तकनीकि का समावेश कर भारतीय भाषाओं के विकास और प्रयोग को बढ़ावा देने के यह प्रयास सरकारी कामकाज में भारतीय भाषाओं के प्रयोग के प्रति भारत सरकार के दृढ़ संकल्प और सतत् प्रतिबद्धता के द्योतक हैं।

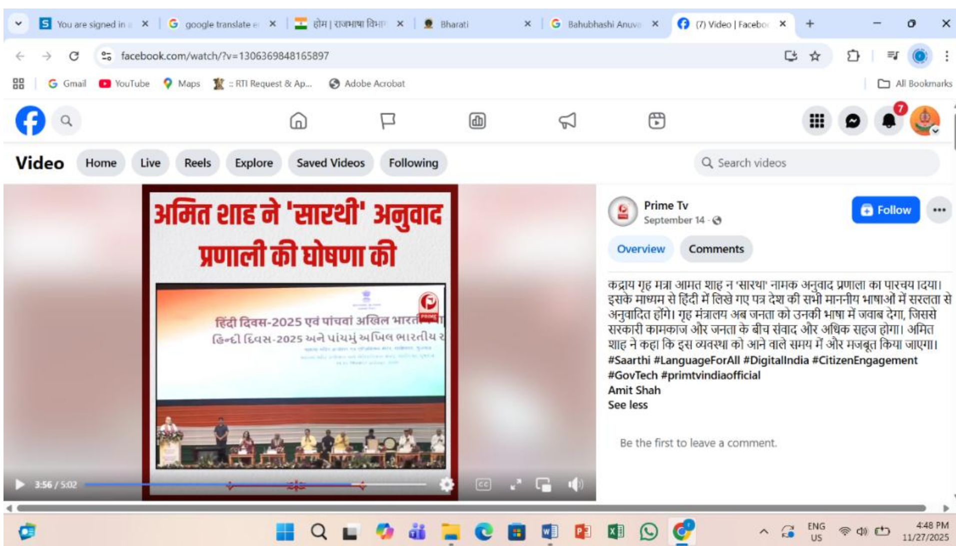

उद्देश्य और दृष्टि

भाषाई सामंजस्य को बढ़ावा देना: हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच बेहतर समन्वय स्थापित कर क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा देना।

विरासत का संरक्षण: अधिसूचित भारतीय भाषाओं के प्रयोग को भारत सरकार के विभिन्न विभागों में आसान बनाकर अंतरभाषा संवाद बढ़ाने से हमारी बहुभाषी समृद्ध भाषाई विरासत को संरक्षित व प्रसारित करना।

राष्ट्रीय सशक्तिकरण: नागरिकों, व्यवसायों और सरकारी संस्थानों को विभिन्न भाषाओं में निर्बाध रूप से संवाद और कार्य करने हेतु सशक्त बनाना।

अनुवाद सारथी की प्रमुख विशेषताएँ:

- **AI-संचालित अनुवाद स्मृति पर आधारित न्यूरल अनुवाद प्रणाली:** अनुवाद सारथी एक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) संचालित प्रणाली है जिसका उन्नत न्यूरल इंजन तेज, सटीक और संदर्भानुकूल अनुवाद सुनिश्चित करता है साथ ही यह स्थानीय बारीकियों, मुहावरों और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को सटीकता से अनुवादित करता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित होने के कारण इसे पहले से ही विभिन्न कार्यालयी प्रपत्रों के आधार पर ही विकसित का गया है तथा यह पिछले अनुवादों को स्वचालित रूप से संग्रहीत और पुन: उपयोग करने में सक्षम है।
- **ऑडियो / स्पीच पहचान**

  अनुवाद सारथी प्रणाली में उन्नत ASR (Audio Speech Recognition) साफ्टवेयर का प्रयोग किया गया है जिससे यह क्षेत्रीय भाषाओं के ऑडियो पैटर्न का पता लगा कर ऑडियो से सार्थक सामग्री निकालने तथा अधिकारियों कर्मचारियों द्वारा हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में दिए गए डिक्टेशन को लिखित पत्र या प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम है।
- **वेटर सिस्टम**

  बहुभाषा अनुवाद सारथी में वेटर सुविधा समाहित है जो यह सुनिश्चित करती है कि ग्लोबल ट्रांसलेशन मेमोरी में केवल मानव-सत्यापित वाक्य ही जोड़े जाएँ। यह प्रक्रिया उच्च-गुणवत्ता व विश्वसनीय अनुवाद डेटा बनाए रखने में मदद करती है और अनुवाद की प्रमाणिकता को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाती है।
- **विभिन्न दस्तावेज़ प्रारूपों के अनुवाद में सक्षम:** अनुवाद सारथी प्रणाली में सामान्यतया प्रचलित सभी दस्तावेज़ प्रारूपों जैसे PDF, DOCX, PPTX आदि को उनके मूल स्वरूप में अपलोड कर उनका अनुवाद करना संभव है साथ ही यह मूल लेआउट, संरचना और स्वरूपण को भी यथारूप बनाए रखता है।

- **बहुभाषी:** अनुवाद सारथी प्रणाली को 22 अधिसूचित भारतीय भाषाओं को ध्यान में रखकर विकसित किया गया है, यह अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद के साथ ही हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद करने में सक्षम है।

उपयोग और लाभ:

- यह सरकारी कामकाज को हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में किए जाने को अधिक सहज और पारदर्शी बनाता है।
- यह भारत के विभिन्न भाषाई समुदायों के बीच संवाद को बढ़ावा देता है।
- यह विभिन्न क्षेत्रों के उपयोगकर्ताओं को उनकी अपनी भाषा में सरकारी संचार तक पहुँचने में मदद करता है।

हम सभी के उपयोग हेतु कंठस्थ -2 बहुभाषी अनुवाद सारथी प्रणाली, भारत सरकार के राजभाषा विभाग के वेबसाइट पर उपलब्ध है। इसे https://rajbhasha.gov.in/ पर जाकर हमारे आई टी टूल्स शीर्षक के अन्तर्गत **कंठस्थ संस्करण 2 - स्मृति आधारित अनुवाद साफ्टवेयर** नामक पहले ही उपशीर्षक को क्लिक करके खोला जा सकता है यह हमें https://bharati.rajbhasha.gov.in/ नामक नए वेब पेज पर ले जाने की अनुमति के लिए एक पॉप अप मेसेज बॉक्स खुलेगा जिसमें "rajnhasa.gov.in says You are about to proceed to an external website". सन्देश आएगा, सन्देश के नीचे ok बटन पर क्लिक करते ही एक नई विण्डो में https://bharati.rajbhasha.gov.in पोर्टल खुल जाएगा। आप अपने वेब ब्राउजर में सीधे यह एड्रेस टाइप करके भी इस अनुवाद पोर्टल को खोल सकते हैं।

पोर्टल के बाँए भाग में सबसे ऊपर उपलब्ध ड्रॉपडाउन मेनू से स्रोत भाषा (Source Language) का चयन करें और जिस सामग्री का अनुवाद करना चाहते हैं उसे सम्बन्धित कम्प्यूटर फाइल (.docx, pdf etc) से कॉपी कर पोर्टल के बाँए भाग में स्रोत भाषा के नीचे उपलब्ध Input text के नीचे की विन्डो में पेस्ट कर दें।

पोर्टल के दाहिने भाग में सबसे ऊपर उपलब्ध ड्रॉपडाउन मेनू से लक्ष्य भाषा (Taget Language)का चयन करें और अनुवादित सामग्री (Translated text) शीर्षक की खाली विन्डो के नीचे दिए गए Translate बटन को क्लिक कर दें। ध्यान रहे कि एक बार में आप अधिकतम 5000 शब्दों का ही अनुवाद कर सकते हैं नीचे दिए गए कैरेक्टर काउन्ट को देख कर यह सुनिश्चित कर लें कि आप के द्वारा दी गई सामग्री 5000 शब्दों से अधिक तो नहीं है,

5000 शब्दों से अधिक की फाइल को दो या उससे अधिक बार में अनुवाद कर सकते हैं। Translated text बॉक्स के दाहिने कोने में ऊपर दिख रहे कॉपी बटन पर क्लिक करें और अनुवादित सामग्री को अपने कम्प्यूटर की संबंधित फाइल में पेस्ट कर लें।

लक्ष्य भाषा में अनुवादित सामग्री को अपने कम्प्यूटर की संबंधित फाइल में पेस्ट करने के उपरान्त मशीन द्वारा किए गए इस अनुवाद की गुणवत्ता के सुधार हेतु सूक्ष्मता से इसका पाठ करें और यह सुनिश्चित करें कि स्रोत भाषा के प्रपत्र से सभी कथ्य सन्दर्भों सहित यथारुप अनुवादित हो गए हैं और वह स्रोत भाषा के प्रपत्र का पूरा अर्थ लक्ष्य भाषा में प्रकट कर रहे हैं।

https://bharati.rajbhasha.gov.in/

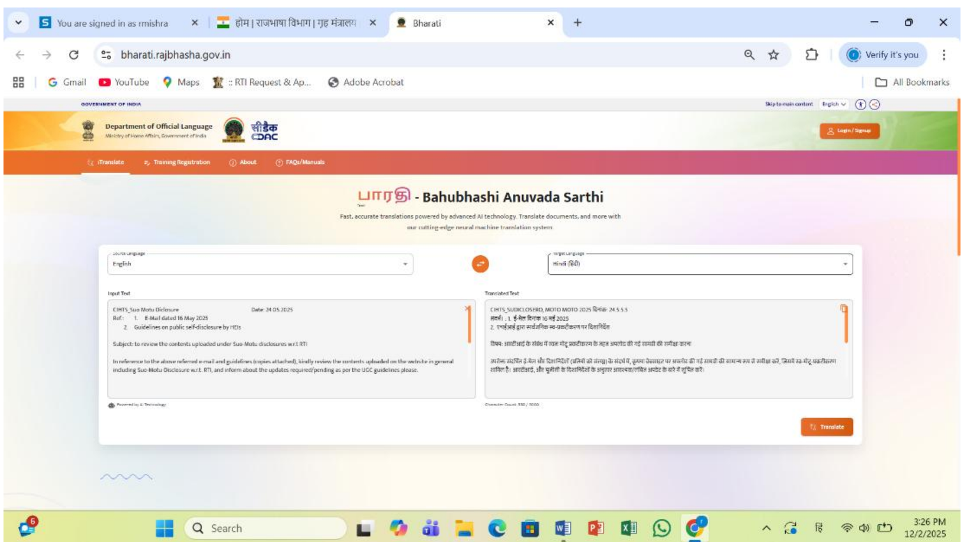

निष्कर्ष

कार्यालयी दस्तावेज़ों के अंग्रेज़ी से हिन्दी मशीनी अनुवाद ने प्रशासनिक कार्यों को अधिक सरल, त्वरित और किफ़ायती बनाया है। हालाँकि मशीनें अब काफी सक्षम हो चुकी हैं, परन्तु पूर्ण प्रभावशीलता के लिए मानव-विशेषज्ञ की समीक्षा अभी भी आवश्यक है। भविष्य में अधिक उन्नत न्यूरल मॉडल, मानकीकृत शब्दावली, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित बहुभाषी अनुवाद प्रणाली के वास्तविक डेटा-संपन्न प्रशिक्षण के माध्यम से इस क्षेत्र में और सुधार संभव है। अन्त में जैसा कि हम सभी को विदित है कि राजभाषा हिन्दी में कार्यालयी कार्य करना केन्द्र सरकार के प्रत्येक अधिकारी कर्मचारी का संवैधानिक दायित्व

है जो लोक सेवक के सभी दायित्वों में सर्वोपरि है। और अब इस तरह की उन्नत प्रणालियों की सहज उपलब्धता के कारण राजभाषा हिन्दी सहित भारत सरकार द्वारा अधिसूचित सभी भारतीय भाषाओं में कार्य करना अत्यन्त ही सहज हो गया है अतः हम सभी को इस प्रणाली का प्रयोग कर अपने अपने कार्यालयों के धारा 3(3) में वर्णित सभी प्रपत्र अनिवार्यतः द्विभाषी रूप में सृजित करने चाहिए और साथ ही अन्य प्रपत्र भी मौलिक रूप से राजभाषा में ही बनाने चाहिए।

प्रलेखन अधिकारी
शांतरक्षित ग्रंथालय
के.उ.ति.शि.सं. सारनाथ, वाराणसी

आज के वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का महत्व

—श्री भगवान पाण्डेय—

आज का वैश्विक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है, जहां वैश्वीकरण, डिजिटलीकरण और सांस्कृतिक आदान-प्रदान ने भाषाओं की भूमिका को नई ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया है। ऐसे में हिंदी भाषा, जो भारत की राष्ट्रीय पहचान का प्रतीक है, वैश्विक स्तर पर अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करा रही है। यह भाषा सांस्कृतिक विरासत, आर्थिक विकास, डिजिटल क्रांति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत की बढ़ती भागीदारी के साथ हिंदी का महत्व और भी बढ़ गया है, क्योंकि यह न केवल भारतीय उपमहाद्वीप को जोड़ती है, बल्कि वैश्विक बाजारों, मीडिया और शिक्षा में पुल का काम करती है। हिंदी केवल भारत की राजभाषा नहीं है, बल्कि यह विश्व के करोड़ों लोगों की भावनाओं, संस्कृति और विचारों की संवाहिका है । 2011 की जनगणना से लेकर 2026 तक के आंकड़ों को देखें, तो हिंदी बोलने वालों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। आज हिंदी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है, जो अंग्रेजी और मैंडरिन (चीनी) के साथ वैश्विक संचार की मुख्यधारा में खड़ी है। भारत के अतिरिक्त फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों में हिंदी का व्यापक प्रभाव है।

> "हिंदी किसी साधारण भाषा का नाम नहीं है, यह तो हमारे संस्कारों,
> परंपराओं और आधुनिक आकांक्षाओं का संगम है।"

हिंदी की जड़ें प्राचीन संस्कृत से जुड़ी हैं, और यह इंडो-आर्यन भाषा परिवार का हिस्सा है। आज के समय में, जब दुनिया बहुभाषी समाज की ओर बढ़ रही है, हिंदी जैसी भाषाएं सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखने में मदद करती हैं। संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी की मांग बढ़ रही है, और बॉलीवुड, योग, आयुर्वेद जैसी भारतीय सांस्कृतिक निर्यातों ने हिंदी को वैश्विक पटल पर स्थापित किया है। एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में से 57% भारतीय भाषाओं का उपयोग करते हैं, जिसमें हिंदी प्रमुख है। यह दर्शाता है कि हिंदी डिजिटल दुनिया में भी अपनी जगह बना रही है। अनुमानित रूप से 615 मिलियन लोग हिंदी बोलते हैं, जिसमें 342 मिलियन मूल वक्ता हैं। भारत में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में हिंदी प्रमुख है, लेकिन नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश में भी

लाखों वक्ता हैं। प्रवासी समुदायों ने हिंदी को वैश्विक बनाया; अमेरिका में 1.3 मिलियन, ब्रिटेन में 0.5 मिलियन हिंदी बोलने वाले हैं।

फिजी में हिंदी आधिकारिक भाषा है, जहां 37% आबादी इसे बोलती है। मॉरीशस में हिंदी सांस्कृतिक पहचान है। वैश्विक शहरों जैसे दुबई, सिंगापुर में हिंदी बोलने वाले व्यापारी समुदाय मजबूत हैं। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट्स बताती हैं कि हिंदी वक्ताओं की संख्या बढ़ रही है, क्योंकि भारत की जनसंख्या वृद्धि और प्रवास। 2050 तक हिंदी वक्ता 700 मिलियन से अधिक हो सकते हैं।

डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने वक्ताओं को जोड़ा। फेसबुक, ट्विटर पर हिंदी कंटेंट बढ़ा है। वैश्विक परिदृश्य में, हिंदी बहुभाषी नीतियों में महत्वपूर्ण है, जैसे यूरोपीय संघ में प्रवासी भाषाओं का सम्मान।

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का महत्व इसलिए भी बढ़ा है क्योंकि भारत एक उभरती हुई आर्थिक महाशक्ति है। विश्व बैंक और आईएमएफ की रिपोर्ट्स बताती हैं कि 2030 तक भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन सकता है। ऐसे में हिंदी बोलने वाले बाजारों तक पहुंच बनाना वैश्विक कंपनियों के लिए आवश्यक हो गया है। अमेरिका, ब्रिटेन, मॉरीशस, फिजी जैसे देशों में हिंदी बोलने वाली प्रवासी समुदायों ने इसे अंतरराष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिलाया है। भारत की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था ने हिंदी को वैश्विक व्यापार की एक महत्वपूर्ण भाषा बना दिया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय बाजार में प्रवेश करने के लिए हिंदी को अपना रही हैं। गूगल, फेसबुक, ट्विटर, अमेज़न और अन्य तकनीकी दिग्गज कंपनियों ने अपने उत्पादों और सेवाओं को हिंदी में उपलब्ध कराया है। यह इस बात का प्रमाण है कि हिंदी अब केवल एक क्षेत्रीय भाषा नहीं रह गई है, बल्कि एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक भाषा बन चुकी है।

भारत का डिजिटल बाजार तेजी से बढ़ रहा है और इसमें हिंदी उपयोगकर्ताओं की संख्या सबसे अधिक है। ई-कॉमर्स, डिजिटल पेमेंट, ऑनलाइन शिक्षा और मनोरंजन के क्षेत्र में हिंदी सामग्री की माँग बढ़ रही है। यूट्यूब पर हिंदी की सामग्री अत्यधिक लोकप्रिय है और हिंदी यूट्यूबर्स लाखों-करोड़ों दर्शकों तक पहुँच रहे हैं। इससे न केवल रोजगार के नए अवसर पैदा हो रहे हैं, बल्कि हिंदी भाषा का डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र भी मजबूत हो रहा है।

विपणन और विज्ञापन के क्षेत्र में हिंदी की शक्ति को पहचाना जा रहा है। कंपनियाँ समझ चुकी हैं कि भारत के विशाल बाजार तक पहुँचने के लिए हिंदी अनिवार्य है। छोटे

शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ अंग्रेजी की पहुँच सीमित है, वहाँ हिंदी ही प्रमुख संवाद की भाषा है।

हिंदी न केवल संचार का माध्यम है, बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान का वाहक भी है। उदाहरण के लिए, हिंदी सिनेमा वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय है, और फिल्में जैसे 'दंगल' या 'आरआरआर' ने अंतरराष्ट्रीय दर्शकों को आकर्षित किया है।

इस लेख में हम हिंदी के ऐतिहासिक विकास, वैश्विक वक्ताओं की संख्या, सांस्कृतिक, आर्थिक, डिजिटल और शैक्षिक महत्व पर चर्चा करेंगे, साथ ही चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं पर भी। यह समझना जरूरी है कि हिंदी केवल एक भाषा नहीं, बल्कि वैश्विक एकता और विविधता का प्रतीक है। वैश्विक के इस युग में, जहां अंग्रेजी का वर्चस्व है, हिंदी जैसी भाषाएं बहुभाषावाद को बढ़ावा देती हैं, जो संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों से जुड़ा है। हिंदी का महत्व इसलिए भी है क्योंकि यह करोड़ों लोगों की भावनाओं, विचारों और सपनों को अभिव्यक्त करती है, जो वैश्विक मंच पर अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं।

हिंदी भाषा की जड़ें हजारों वर्ष पुरानी हैं, जो वैदिक संस्कृत से निकली हैं। प्राचीन काल में, संस्कृत ज्ञान और दर्शन की भाषा थी, लेकिन मध्यकाल में अपभ्रंश और प्राकृत से हिंदी का विकास हुआ। मुगल काल में फारसी और अरबी शब्दों का मिश्रण हुआ, जिससे उर्दू और हिंदी अलग-अलग रूपों में उभरीं। ब्रिटिश शासन के दौरान, हिंदी राष्ट्रवाद का प्रतीक बनी। महात्मा गांधी और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने हिंदी को जन-जन की भाषा बनाने का प्रयास किया। 1947 में स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया, जो आज भी जारी है।

वैश्विक स्तर पर हिंदी का प्रसार प्रवास के माध्यम से हुआ। 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य ने भारतीय मजदूरों को फिजी, मॉरीशस, ट्रिनिडाड जैसे देशों में भेजा, जहां हिंदी आज भी बोली जाती है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, अमेरिका और यूरोप में भारतीय प्रवासियों ने हिंदी को जीवित रखा। आज, हिंदी संयुक्त राष्ट्र की छह आधिकारिक भाषाओं में शामिल होने की दौड़ में है। इतिहासकारों के अनुसार, हिंदी ने वैश्विक संस्कृतियों को प्रभावित किया है, जैसे इंडोनेशिया में रामायण की कहानियां हिंदी-प्रभावित भाषाओं में मौजूद हैं।

हिंदी का इतिहास उसकी लोचशीलता और समायोजन क्षमता का गवाह है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की लम्बी यात्रा से गुजरकर, अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी और पुर्तगाली जैसी भाषाओं के प्रभाव को आत्मसात करते हुए, हिंदी ने एक समृद्ध और समन्वयवादी भाषा का रूप लिया। यही कारण है कि यह केवल साहित्य की भाषा ही नहीं, बल्कि जन-जन की

संवाद की भाषा बन सकी। औपनिवेशिक काल में भी हिंदी ने राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता संग्राम के केन्द्र में रहकर अपनी प्रासंगिकता सिद्ध की। आजादी के बाद इसे राजभाषा का दर्जा मिला, लेकिन उसका दायरा सरकारी कार्यालयों से कहीं अधिक विस्तृत हो चुका है।

हिंदी का विकास तकनीकी क्रांति से जुड़ा है। 1990 के दशक में कंप्यूटराइजेशन ने हिंदी फॉन्ट्स विकसित किए, जिससे डिजिटल दुनिया में प्रवेश हुआ। आज, गूगल और माइक्रोसॉफ्ट हिंदी को सपोर्ट करते हैं। वैश्विक परिदृश्य में, हिंदी इतिहास से सीखते हुए भविष्य की ओर बढ़ रही है, जहां यह सांस्कृतिक पुल का काम करेगी। डिजिटल युग में हिंदी ने उल्लेखनीय प्रगति की है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण के क्षेत्र में हिंदी पर काफी काम हो रहा है। वॉयस असिस्टेंट जैसे एलेक्सा, सीरी और गूगल असिस्टेंट अब हिंदी को समझते और बोलते हैं। यह तकनीकी समावेशन का एक महत्वपूर्ण कदम है। डिजिटल युग में हिंदी का विस्तार तेज है। इंटरनेट पर हिंदी कंटेंट बढ़ा, जहां यूट्यूब, इंस्टाग्राम पर हिंदी वीडियो लोकप्रिय हैं। गूगल ट्रांसलेट हिंदी को सपोर्ट करता है। एआई में हिंदी भाषा मॉडल विकसित हो रहे हैं। एआई मॉडल अब हिंदी के विभिन्न लहजों और बोलियों को समझने में सक्षम हो रहे हैं। हिंदी में कोडिंग ट्यूटोरियल, चैटबॉट्स और वॉयस रिकग्निशन सिस्टम की बढ़ती मांग ने इसे तकनीकी विशेषज्ञों के बीच लोकप्रिय बना दिया है।

हिंदी सांस्कृतिक विरासत का वाहक है। बॉलीवुड ने हिंदी को वैश्विक संस्कृति का हिस्सा बनाया, जहां फिल्में सांस्कृतिक निर्यात हैं। 'स्लमडॉग मिलियनेयर' जैसी फिल्मों ने हिंदी को ऑस्कर तक पहुंचाया। योग और आयुर्वेद वैश्विक हो गए, जहां हिंदी शब्द जैसे 'नमस्ते', 'गुरु' आम हैं।

साहित्य में हिंदी का योगदान अपार है। महाभारत, रामायण की कहानियां वैश्विक साहित्य को प्रभावित करती हैं। अंतरराष्ट्रीय हिंदी दिवस (10 जनवरी) हिंदी की सांस्कृतिक भूमिका को मनाता है। संगीत में, एआर रहमान जैसे कलाकारों ने हिंदी गीतों को वैश्विक बनाया।

वैश्विक परिदृश्य में, हिंदी सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देती है। जापान, जर्मनी में हिंदी सिखाई जाती है। यह विविधता को बनाए रखती है, जहां अंग्रेजी के वर्चस्व में हिंदी सांस्कृतिक संतुलन लाती है।

भारत की अर्थव्यवस्था में हिंदी का महत्व बढ़ा है। 572 मिलियन हिंदी वक्ताओं तक पहुंच व्यापार के लिए आवश्यक है। अमेरिका-भारत व्यापार में हिंदी अनुवाद महत्वपूर्ण

है। ई-कॉमर्स में, अमेजन, फ्लिपकार्ट हिंदी इंटरफेस प्रदान करते हैं। वैश्विक कंपनियां हिंदी में विज्ञापन करती हैं। आईटी सेक्टर में हिंदी बोलने वाले कर्मचारी लाभदायक हैं। स्टार्टअप्स जैसे पेटीएम हिंदी का उपयोग करते हैं। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में हिंदी व्यापार को सुगम बनाती है। शिक्षा में हिंदी माध्यम बढ़ रहा है। आईआईटी, आईआईएम में हिंदी सामग्री उपलब्ध है। वैश्विक विश्वविद्यालयों में हिंदी कोर्स हैं। विज्ञान में, हिंदी अनुवाद वैज्ञानिक ज्ञान को सुलभ बनाते हैं। एनईपी 2020 ने हिंदी को प्रोत्साहित किया। वैश्विक शिक्षा में हिंदी बहुभाषावाद को बढ़ावा देती है।

चुनौतियां: अंग्रेजी का वर्चस्व, क्षेत्रीय भाषाओं का विरोध। समाधान: डिजिटल टूल्स, शिक्षा सुधार। भविष्य में हिंदी वैश्विक भाषा बन सकती है। आज का वैश्विक परिदृश्य हिंदी के लिए संभावनाओं के द्वार खोल रहा है। यह अब केवल एक संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि एक अरब से अधिक लोगों की आकांक्षाओं और भारत के गौरवशाली भविष्य का प्रतिबिंब है। 2026 का यह समय हिंदी के 'स्वर्ण युग' की ओर बढ़ने का संकेत है, जहाँ वह परंपरा के गौरव और तकनीक की गति के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।हिंदी की यह यात्रा "स्व" से "सर्व" की ओर है, जो विश्व को प्रेम, भाईचारे और वसुधैव कुटुंबकम का संदेश दे रही है। इन सभी सकारात्मक पहलुओं के बावजूद हिंदी के समक्ष कुछ चुनौतियाँ हैं। अंग्रेजी का वर्चस्व शैक्षणिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में बना हुआ है। कई लोग यह मानते हैं कि अंग्रेजी ज्ञान ही सफलता की कुंजी है, जिससे हिंदी की उपेक्षा होती है। हालाँकि यह धारणा धीरे-धीरे बदल रही है। हिंदी में गुणवत्तापूर्ण तकनीकी, वैज्ञानिक और शैक्षणिक सामग्री की कमी एक बड़ी चुनौती है। इस दिशा में काम करने की आवश्यकता है। अनुवाद और मूल लेखन दोनों को बढ़ावा देना होगा। सरकार, शैक्षणिक संस्थान और निजी क्षेत्र को मिलकर इस दिशा में प्रयास करने होंगे।

भाषाई क्षेत्रवाद और हिंदी थोपने की धारणा भी एक चुनौती है। हिंदी को अन्य भारतीय भाषाओं के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने की आवश्यकता है। हिंदी का प्रसार दूसरी भाषाओं के दमन के माध्यम से नहीं, बल्कि उनके साथ सहयोग से होना चाहिए। त्रिभाषा फॉर्मूला और बहुभाषिकता को बढ़ावा देकर इस समस्या को हल किया जा सकता है।डिजिटल विभाजन भी एक समस्या है। जबकि शहरी क्षेत्रों में हिंदी डिजिटल सामग्री की पहुँच बढ़ी है, ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी इंटरनेट और स्मार्टफोन की पहुँच सीमित है। डिजिटल साक्षरता और बुनियादी ढाँचे में सुधार से इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

हिंदी का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है। भारत की बढ़ती जनसंख्या, आर्थिक विकास और वैश्विक प्रभाव के साथ हिंदी की प्रासंगिकता बढ़ेगी। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और मशीन ट्रांसलेशन में प्रगति से भाषा की बाधाएँ कम होंगी और हिंदी सामग्री की वैश्विक पहुँच बढ़ेगी। युवा पीढ़ी हिंदी को नए तरीकों से अपना रही है। हिंग्लिश (हिंदी और अंग्रेजी का मिश्रण) का प्रयोग बढ़ रहा है, जो भाषा की गतिशीलता को दर्शाता है। यद्यपि कुछ लोग इसे हिंदी की शुद्धता के लिए खतरा मानते हैं, लेकिन यह भाषा के विकास की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। भाषाएँ हमेशा से एक-दूसरे से प्रभावित होती रही हैं। स्टार्टअप और उद्यमिता के क्षेत्र में हिंदी सामग्री और सेवाओं की माँग बढ़ रही है। हिंदी में एडटेक, हेल्थटेक और फिनटेक स्टार्टअप आ रहे हैं जो भारत के विशाल बाजार को सेवा दे रहे हैं। यह रोजगार के नए अवसर पैदा कर रहा है और हिंदी को आर्थिक रूप से व्यवहार्य बना रहा है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ रही है। विदेशी छात्र, शोधकर्ता और व्यापारी हिंदी सीख रहे हैं। यह रुझान भविष्य में और मजबूत होगा। चीन और जापान में हिंदी सीखने वालों की संख्या बढ़ रही है, जो भारत के साथ आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को गहरा करना चाहते हैं। वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का महत्त्व निर्विवाद है। यह केवल संख्यात्मक ताकत का सवाल नहीं है, बल्कि आर्थिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और राजनीतिक प्रभाव का भी है। भारत की बढ़ती शक्ति के साथ हिंदी भी वैश्विक मंच पर अपनी जगह बना रही है। डिजिटल युग ने हिंदी को नए अवसर प्रदान किए हैं और भाषा के प्रसार और विकास के नए रास्ते खोले हैं।

हालाँकि चुनौतियाँ हैं, लेकिन सही नीतियों, तकनीकी निवेश और सामूहिक प्रयासों से इन्हें दूर किया जा सकता है। हिंदी को केवल एक भाषा के रूप में नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान, आर्थिक विकास और वैश्विक उपस्थिति के प्रतीक के रूप में देखा जाना चाहिए। आज की दुनिया में जहाँ भाषाई विविधता को सम्मान मिल रहा है और बहुभाषिकता को महत्व दिया जा रहा है, वहाँ हिंदी के पास एक उज्ज्वल भविष्य है। हमें अपनी भाषा पर गर्व करते हुए इसे आधुनिक बनाना होगा, इसमें नवाचार लाना होगा और इसे वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक बनाए रखना होगा। हिंदी की वैश्विक यात्रा जारी है और यह यात्रा भारत की वैश्विक यात्रा का एक अभिन्न हिस्सा है। हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, और यह न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व के लिए एक महत्वपूर्ण भाषा बनने की ओर अग्रसर है।

राजभाषा परामर्शी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 6387521396

हिन्दी साहित्य का आदिकाल

—डॉ. रवि गुप्त मौर्य—

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आविर्भाव प्राकृत के अन्तिम स्वरूप अपभ्रंश से है । अपभ्रंश (प्राकृताभास हिन्दी) का प्राचीन प्रमाण बौद्ध-तन्त्रों के विभिन्न सम्प्रदायों की रचनाओं से मिलता है । ये रचनायें विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की प्रतीत होती हैं । उस समय **'गाथा'** का अभिप्राय प्राकृत था और **'दोहा'** का अभिप्राय अपभ्रंश था । डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार,"किसी निर्जन प्रदेश की शैवालिनी की भाँति हिन्दी साहित्य की धारा अबाध रूप से प्रवाहित होती रही ।" इसी धारा प्रवाह के परिणाम हैं- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल । अपभ्रंश भाषा और साहित्य का ही विकसित, परिवर्तित और स्वस्थ रूप हिन्दी है । अतः अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहना उचित प्रतीत होता है ।

हेमचन्द ने अपने प्राकृत व्याकरण के प्रारम्भ में यह संकेत किया है कि संस्कृत प्रकृति है और उसी से इस भाषा का विकास हुआ है, इसलिए इसे **प्राकृत** कहा गया । वेद अर्थात छंदस की भाषा का जितना साम्य पुरानी प्राकृत से है उतना संस्कृत से नहीं । ऐसा इसलिए है कि संस्कृत मूल भाषा नहीं है बल्कि यह परिष्कृत भाषा है जिसका सुधार हुआ है ।

आदिकाल का समय भारत के राजनीतिक एवं सामाजिक संक्रमण का काल था । इस समय उत्तर भारत में राजपूतों का प्रभुत्व था तथा बाद में मुस्लिम आक्रमणों का आरम्भ हुआ। समाज सामन्तवादी व्यवस्था से प्रभावित था। युद्ध, वीरता, धर्म एवं प्रेम इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं। यही कारण है कि इस काल का साहित्य मुख्यतः **वीरगाथात्मक** और **श्रृंगारपरक** रहा । **आदिकाल** हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक चरण है, जिसे **वीरगाथा काल** भी कहा जाता है ।

आदिकाल की समय-सीमा

विद्वानों ने इसकी समय-सीमा अलग-अलग बताई है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1050 ई. से 1375 ई., डॉ. रामकुमार वर्मा ने 1000 ई. से 1375 ई. और डॉ. दीनदयाल गुप्त तथा अन्य विद्वान 8वीं शताब्दी से इसका आकलन करते हैं । सामान्य रूप से आदिकाल की अवधि **10वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी** तक मानी जाती है ।

भाषा की स्थिति

हिन्दी साहित्य का आदिकाल भाषा-विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण काल है। इस काल में हिन्दी अपने पूर्ण विकसित रूप में नहीं थी, बल्कि यह **संक्रमणशील अवस्था** में थी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रभावों से निर्मित प्रारंभिक हिन्दी रूपों का प्रयोग इस समय के साहित्य में देखने को मिलता है। आदिकाल में प्रयुक्त भाषा को विद्वानों ने विभिन्न नामों से पुकारा है— 1.अपभ्रंश, 2. अवहट्ट, 3. प्रारंभिक हिन्दी और 4. संतों की लोकभाषा। यह भाषा न तो पूर्णतः अपभ्रंश थी और न ही आधुनिक हिन्दी, बल्कि दोनों के बीच की कड़ी थी।

अपभ्रंश के अंतिम चरण को **अवहट्ट** कहा जाता है। इसमें आधुनिक हिन्दी की झलक स्पष्ट होने लगती है। शब्द-रूप, क्रिया-प्रयोग और वाक्य-रचना में परिवर्तन दिखाई देते हैं। यह भाषा हिन्दी के विकास की दिशा को स्पष्ट करती है। आदिकाल के कवियों ने लोकजीवन से जुड़ी भाषा का प्रयोग किया। जैन मुनियों ने उपदेशात्मक और कथात्मक साहित्य में, बौद्ध सिद्धों ने दोहाकोष और चर्यापदों में, तथा नाथपंथियों ने योग-साधना संबंधी रचनाओं में जनभाषा का सहारा लिया। इससे साहित्य अधिक प्रभावशाली और व्यापक हुआ। आदिकालीन साहित्य पर अपभ्रंश का गहरा प्रभाव था। जैन मुनियों, बौद्ध सिद्धों और नाथ योगियों ने अपनी रचनाएँ अपभ्रंश में कीं। इस भाषा की विशेषताएँ थीं– सरल शब्दावली, ध्वनि-परिवर्तन और संस्कृत के कठोर व्याकरण से मुक्ति। अपभ्रंश ने हिन्दी को जनभाषा के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आदिकाल की भाषा ने आगे चलकर अवधी, ब्रज और खड़ी बोली जैसी हिन्दी की प्रमुख बोलियों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इस काल की भाषा ने हिन्दी को संस्कृत के प्रभाव से मुक्त कर स्वतंत्र पहचान प्रदान की।

आदिकाल की भाषा मुख्यतः **अवहट्ट, अपभ्रंश और अर्धमैथिली** के रूप में प्रयुक्त थी। रचनाएँ सामान्य जनता की बोली में लिखी जाती थीं। *ब्रजभाषा* और *खड़ी बोली* का प्रारम्भिक रूप भी इसी काल में देखा जाता है। भाषा अपेक्षाकृत सरल, लोकाभिमुख और वीर रस से ओत-प्रोत थी। आदिकाल में संस्कृत जनभाषा से दूर हो चुकी थी और प्राकृत एवं अपभ्रंश के माध्यम से जनभाषा का विकास हो रहा था। इसी अपभ्रंश से प्रारम्भिक हिन्दी का जन्म हुआ। इस काल की भाषा को विद्वानों ने अपभ्रंश, मिश्रित हिन्दी, पुरानी हिन्दी अथवा संधिकालीन भाषा कहा है। निष्कर्ष यह है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल की भाषा हिन्दी के विकास का मूल आधार है। इस काल में भाषा ने जनभाषा का रूप ग्रहण किया

और साहित्य को समाज से जोड़ा। यही भाषा आगे चलकर समृद्ध और सशक्त हिन्दी साहित्य की जननी बनी।

सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि

इस समय भारत में राजपूत शासकों का साम्राज्य था। तुर्क और अफगान जैसे विदेशी आक्रमण लगातार हो रहे थे। समाज में अस्थिरता थी, इसलिए साहित्य में धर्म-रक्षा, युद्ध वीरता और शौर्य का स्वर प्रमुख रहा। कवियों ने राजाओं और वीरों के साहस, युद्धकला और त्याग की गाथाएँ प्रस्तुत कीं जिससे धर्म-रक्षा और राष्ट्र की सुरक्षा उस समय की साहित्यिक चेतना का मुख्य आधार बनी।

साहित्य की विशेषताएँ एवं प्रवृत्तियाँ

युद्ध, शौर्य और पराक्रम के अत्यधिक चित्रण के कारण वीर रस की प्रधानता थी। साहित्य का उद्देश्य इतिहास को गाथा रूप में प्रस्तुत करना था। इस समय हिन्दू धर्म की रक्षा और इस्लामी आक्रमणों का विरोध था। साहित्य की भाषा प्रारंभिक, सहज और जनता की बोली के निकट थी। काव्य मुख्य रूप से **रासो** परम्परा में लिखी गई। इनकी रचनाएँ जनमानस में गाई और सुनाई जाती थीं।

आदिकालीन साहित्य में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती हैं–

1 **वीरगाथा काव्य** : राजाओं और योद्धाओं की शौर्यगाथाओं का वर्णन।

2 **श्रृंगार भावना** : प्रेम, सौन्दर्य और नायिका वर्णन।

3 **धार्मिक तत्व** : जैन, बौद्ध एवं सिद्ध-साहित्य का प्रभाव।

4 **लोक जीवन का चित्रण** : लोकभाषा एवं लोकभावनाओं की अभिव्यक्ति।

आदिकाल की साहित्यिक धाराएँ

आदिकालीन साहित्य को सामान्यतः चार धाराओं में विभाजित किया जाता है–

(क) सिद्ध साहित्य

यह साहित्य बौद्ध सिद्धों द्वारा रचित है। इसमें रहस्यवाद, योग, साधना और प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग मिलता है। सरहपा, कान्हपा आदि प्रमुख सिद्ध कवि माने जाते हैं।

1. **दोहाकोषगीति**– दोहाकोषगीति मध्यकालीन भारतीय साहित्य की एक विशिष्ट काव्यधारा है, जिसका संबंध बौद्ध सहजयान परंपरा से माना जाता है। 'दोहाकोष' मूलतः दोहा छंद में रचित उन काव्यरचनाओं का संकलन है, जिनमें आध्यात्मिक अनुभवों, साधना-पद्धतियों और जीवन के गूढ़ सत्यों को सरल, प्रतीकात्मक और

गीतात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इन्हीं रचनाओं की गीतात्मक अभिव्यक्ति को दोहाकोषगीति कहा जाता है। 'दोहा' एक प्रचलित छंद है, जबकि 'कोष' का अर्थ संग्रह या भंडार होता है। इस प्रकार दोहाकोष का शाब्दिक अर्थ है- दोहों का संग्रह। परंपरा के अनुसार, दोहाकोष के रचना का श्रेय सिद्ध सरहपा को दिया जाता है, जो 8वीं से 9वीं शताब्दी के प्रसिद्ध बौद्ध सिद्ध थे। उनकी रचनाएँ अपभ्रंश और प्राकृत मिश्रित भाषा में मिलती हैं।

'दोहाकोषगीति' का हिंदी साहित्य के विकास में विशेष योगदान है। इसे निर्गुण भक्ति काव्य की पूर्वपीठिका भी माना जाता है। कबीर, दादू और नाथपंथी संतों की वाणी में दोहाकोष की विचारधारा और शैली की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इस प्रकार, दोहाकोषगीति भारतीय साहित्य में बौद्ध सिद्ध परंपरा और भक्ति आंदोलन के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु का कार्य करती है। दोहाकोषगीति केवल काव्य रूप नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि है। इसकी सरलता, गीतात्मकता और दार्शनिक गहराई इसे भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर बनाती है। आज भी दोहाकोषगीति मानव को आत्मचिंतन, सहजता और सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है।

सरहपा द्वारा रचित 'दोहागीतिकोष' हिन्दी सन्त साहित्य परम्परा का 'आदि ग्रन्थ' प्रतीत होता है। उसके कुछ दोहे इस प्रकार से हैं-

(जिवँ) लोणु विलिज्जइ पाणियहिं तिवँ जइ चित्तु विलाइ।
अप्पा दीसइ परहिं सवुँ तत्थ समाहिए काइँ॥

(अर्थ- जैसे नमक पानी में विलीन होता है, वैसे चित्त विलीन हो जाता है। तब आत्मा, परमात्मा समान दिखती है, फिर समाधि क्यों करें ?)

जोवइ चित्तु ण-याणइ बम्हहँ अवरु कों विज्जइ पुच्छइ अम्हहँ।
णावँहिं सण्ण-असण्ण-पआरा पुणु परमत्थें एक्काआरा॥

(अर्थ- चित्त ब्रह्म देखता है पर उसे जानता नहीं, हम से पूछता है कि और (दूसरा) कौन है ? नाम देने से संज्ञा व जड़ पृथक हो जाते हैं, पर परमार्थ से वे एकाकार हैं।)

खाअंत-पीअंतें सुरउ रमंतें अरिउल-बहलहो चक्कु फिरंतें।
एवंहिं सिद्धु जाइ परलोअहो मत्थएं पाउ देवि भू-लोअहो॥

(अर्थ- खाता-पीता, रति करता, अरिकुल के बहुसंख्यों के बीच चक्र फिराता। ऐसे ही सिद्ध परलोक जाता है, भूलोक के मस्तक पर पाँव रखकर।)

1. **चर्यापद**– **कान्हपा** भारतीय बौद्ध परंपरा के प्रसिद्ध महासिद्ध, सहजयान वज्रयान के आचार्य तथा **चर्यापद** के प्रमुख कवियों में से एक थे। उनका समय लगभग आठवीं-नवीं शताब्दी माना जाता है। वे उस युग के प्रतिनिधि हैं जब बौद्ध साधना में अनुभव, प्रतीक और सहजता को विशेष महत्व दिया गया। कान्हपा सहजयान परंपरा से जुड़े थे, जिसमें साधना को जीवन के सहज प्रवाह के साथ जोड़कर देखा जाता है। इस परंपरा में बाहरी आडंबरों, कठोर नियमों और शास्त्रीय जटिलताओं की बजाय आंतरिक अनुभूति, गुरुकृपा और प्रत्यक्ष बोध को प्रधान माना गया। कान्हपा की साधना का केंद्र शून्यता, करुणा और प्रज्ञा है। कान्हपा के अनेक पद चर्यापद संग्रह में मिलते हैं। ये पद अपभ्रंश और प्राकृत मिश्रित भाषा में रचे गए हैं और प्रतीकात्मक शैली में लिखे गए हैं। बाह्य रूप से ये पद सांसारिक जीवन के चित्र प्रस्तुत करते हैं, परंतु आंतरिक स्तर पर ये तांत्रिक साधना, देह-योग और चित्त-शुद्धि के संकेत देते हैं। इसी कारण चर्यापद को समझने के लिए गुरु परंपरा और प्रतीक-ज्ञान आवश्यक माना जाता है। चर्यापद के कुछ उदाहरण-

काय नउए गङ्गाजलु, मणि नउए सुवण्ण।
सहज भावे जो जाणइ, सो पावे निर्वाण॥

(अर्थ- यह शरीर ही गंगा का पवित्र जल है, यही मणि और यही सोना है। जो व्यक्ति सहज भाव से इस सत्य को जान लेता है, वही निर्वाण को प्राप्त करता है।)

बाहिरु खोजे पागल जनु, भीतरु बंधन छाड़।
गुरु कृपाय जे जाणइ, सो होइ भव पार॥

(अर्थ- जो मूर्ख बाहर-बाहर खोजता है, वह भीतर के बंधन नहीं छोड़ता। गुरु की कृपा से जो भीतर के सत्य को जान लेता है, वही संसार-सागर पार करता है।)

कान्हपा की काव्य-शैली सरल, गीतात्मक और रहस्यपूर्ण है। वे प्रतीकों के माध्यम से गूढ़ तत्त्वों को अभिव्यक्त करते हैं जैसे- नाव, नदी, मछली, घर आदि। उनकी रचनाओं में सहज जीवन, वैराग्य, और आत्मिक स्वतंत्रता का स्वर स्पष्ट दिखाई देता है। वे सामाजिक पाखंड और निरर्थक कर्मकांडों की आलोचना भी करते हैं। कान्हपा का महत्व केवल बौद्ध दर्शन तक सीमित नहीं है। चर्यापद की भाषा को आधुनिक भारतीय भाषाओं (विशेषतः बंगला, ओड़िया, मैथिली) के प्रारंभिक रूपों से जोड़ा जाता है। इस दृष्टि से कान्हपा भारतीय साहित्य के विकास में भी एक

महत्वपूर्ण कड़ी हैं। कान्हपा एक ऐसे सिद्ध कवि हैं जिन्होंने साधना और काव्य को एक सूत्र में बाँधा। उनकी रचनाएँ आज भी आध्यात्मिक साधकों और साहित्यकारों को प्रेरित करती हैं। सहजता, अनुभव और करुणा का जो संदेश कान्हपा ने दिया, वह भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में अमूल्य है।

(ख) नाथ साहित्य

नाथपंथी साधकों द्वारा रचित यह साहित्य योग, वैराग्य और आत्मसाधना पर आधारित है। मछेन्द्रनाथ (मत्स्येंद्रनाथ), गोरखनाथ इसके प्रमुख कवि हैं।

1. **मछेन्द्रनाथ**– मत्स्येंद्रनाथ को नाथ योग परंपरा का प्रमुख योगाचार्य माना जाता है। उनके समय में योग का ज्ञान गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से संचरित होता था। उनके ग्रंथों में हठयोग, साधना, तंत्र, आत्म-ज्ञान, साधक की नैतिकता आदि विषयों का विस्तृत वर्णन मिलता है। उनकी रचनाएँ संक्षिप्त, सूत्रात्मक और उपदेशात्मक शैली में हैं, ताकि साधक आसानी से इन्हें याद कर सके। इनकी रचनाएँ हैं-

   I. **अष्टांग योग**– इस ग्रन्थ में योग के आठ अंगों वाले मार्ग— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का वर्णन है। यह ग्रन्थ साधक को संतुलित जीवन और आत्म-उत्थान की दिशा देना।

   उदाहरण– "अहिंसा सत्यम् ब्रह्मचर्यं, यम-नियमु समाहरे।"

   (अर्थ- अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन ही योग का पहला चरण है।)

   II. **हठयोग**– इस शरीर और मन को नियंत्रित करने के लिए हठ (कठोर अभ्यास) का महत्व का वर्णन है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य है शरीर को साधना का उपकरण बनाना ताकि ध्यान-साधना में स्थिरता आए।

   उदाहरण– "आसनु स्थिरु धीरु, प्राणायामु ध्यानु आगम।"

   (अर्थ- आसन स्थिर और धीर होना चाहिए; प्राणायाम से ध्यान की स्थिति आती है।)

   III. **मुक्ति-मार्ग-** इस ग्रन्थ में बंधन अर्थात् मोह, काम, क्रोध, अहंकार आदि से मुक्ति के मार्गें का वर्णन है। जिससे आत्म-ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

   उदाहरण– "मोहं त्यजि, कामं त्यजि, अहंकारु नष्ट करि।"

   (अर्थ- मोह, काम और अहंकार को त्यागकर ही आत्मा मुक्त होती है।)

2. **गोरखनाथ– गोरखबानी एवं सिद्ध-सिद्धांत पद्धति** अपभ्रंश और लोकभाषा के तत्वों के साथ इनकी रचनायें हैं। गोरखनाथ मध्यकालीन भारतीय साहित्य और साधना परंपरा के अत्यंत प्रभावशाली संत एवं योगी माने जाते हैं। वे **नाथ संप्रदाय** के प्रमुख आचार्य थे और गुरु **मत्स्येंद्रनाथ** के शिष्य माने जाते हैं। गोरखनाथ ने जनसाधारण तक अपनी योग-साधना और जीवन-दर्शन पहुँचाने के लिए **अपभ्रंश** तथा **लोकभाषाओं** का सहारा लिया। इसी कारण उनका अपभ्रंश साहित्य विशेष महत्व रखता है। अपभ्रंश वह भाषा रूप है जो प्राकृत से विकसित होकर आधुनिक भारतीय भाषाओं की ओर अग्रसर होता है। गोरखनाथ के समय में यह भाषा लोकजीवन में प्रचलित थी। गोरखनाथ ने संस्कृत जैसी क्लिष्ट भाषा के स्थान पर अपभ्रंश में रचनाएँ करके अपने विचारों को व्यापक समाज तक पहुँचाया। इससे अपभ्रंश साहित्य को नई दिशा और प्रतिष्ठा मिली।

गोरखनाथ का साहित्य केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना से भी जुड़ा हुआ है। उन्होंने समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध किया तथा व्यक्ति को आत्मानुभूति और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इस प्रकार उनका अपभ्रंश साहित्य भारतीय संस्कृति और समाज में सुधारक की भूमिका निभाता है। गोरखनाथ का अपभ्रंश साहित्य भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है। यह साहित्य योग, साधना और लोकजीवन का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। अपभ्रंश भाषा के माध्यम से गोरखनाथ ने आध्यात्मिक विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाया और हिंदी साहित्य की भावी परंपरा को सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

उदाहरण– "जोगी बनि जिउ नांहि, जोगी तेंहि जिउ बचाइ।"

(अर्थ- जो व्यक्ति सच में योगी नहीं है, वह खुद को "योगी" कहकर बच नहीं सकता; असली योगी वही है जो आत्म-नियंत्रण और साधना करता है।)

(ग) जैन साहित्य

जैन मुनियों ने अपभ्रंश एवं प्रारम्भिक हिन्दी में धार्मिक एवं नैतिक ग्रंथों की रचना की। इसमें नीति, अहिंसा और सदाचार का वर्णन है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल (लगभग 7वीं से 12वीं शताब्दी) भाषा-विकास और काव्य-परंपरा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण काल है। इस काल में अपभ्रंश भाषा साहित्यिक अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम थी। अपभ्रंश साहित्य के विकास में जैन मुनियों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक है। उन्होंने धर्म,

नीति, आचार और कथा-साहित्य को जनभाषा में प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य की नींव रखी। जैन मुनि जनसामान्य तक अपने धर्म और नैतिक आदर्श पहुँचाने के उद्देश्य से संस्कृत के स्थान पर अपभ्रंश का प्रयोग करने लगे। जैन धर्म का मूल आधार अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और तप है, जिसे सरल भाषा में व्यक्त करने के लिए अपभ्रंश अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुई। इसी कारण जैन साहित्य का एक बड़ा भाग अपभ्रंश में रचा गया।

प्रमुख जैन अपभ्रंश साहित्यकार और कृतियाँ

1. **स्वयम्भू (8वीं–9वीं शताब्दी)**– स्वयम्भू को अपभ्रंश का प्रथम महाकवि माना जाता है।

   I. **पउमचरिउ**– *पउमचरिउ* अपभ्रंश भाषा का एक प्रसिद्ध जैन महाकाव्य है, जिसके रचयिता कवि **स्वयम्भू** हैं। इसमें रामकथा का **जैन दृष्टिकोण** प्रस्तुत किया गया है– अहिंसा, करुणा, त्याग और आत्मसंयम पर विशेष बल दिया गया है। यहाँ राम आदर्श नायक हैं, रावण का वध लक्ष्मण करते हैं, और कथा धर्म-नीति के अनुरूप आगे बढ़ती है।

   उदाहरण- "पउम निहालउ रामु, धम्मे ठिअउ सव्वकाले।"

   (अर्थ- राम कमल (पद्म) के समान निर्मल और पवित्र हैं। वे हर समय धर्म के मार्ग पर स्थिर रहते हैं।)

   II. **रिट्ठणेमिचरिउ**– रिट्ठणेमिचरिउ अपभ्रंश भाषा का जैन महाकाव्य है। इसमें कृष्णकथा (हरिवंश परंपरा) को जैन दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) को मुख्य आदर्श पात्र के रूप में दिखाया गया है, जो भोग-विलास छोड़कर वैराग्य धारण करते हैं।

   उदाहरण– "कण्हु भोगे रत्तउ, णेमि संजमे ठिउ।"

   (अर्थ- जहाँ कृष्ण भोग-विलास में आसक्त हैं, वहीं नेमिनाथ संयम और तप के मार्ग पर स्थिर हैं।)

   इन ग्रंथों में अपभ्रंश भाषा की काव्यात्मक शक्ति का उत्कृष्ट रूप मिलता है।

2. **पुष्पदन्त (10वीं शताब्दी)**– पुष्पदन्त जैन अपभ्रंश साहित्य के महान कवि हैं।

   I. **महापुराण**– **पुष्पदन्त** कृत *महापुराण* अपभ्रंश भाषा का विशाल जैन महाकाव्य है। इसमें **63** शलाका पुरुषों (24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव,

9 प्रतिवासुदेव, 9 बलदेव) का चरित्र वर्णित है। ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य धर्म, अहिंसा, कर्म-सिद्धांत और वैराग्य का प्रतिपादन है।

उदाहरण- "धम्मु सव्वु जगु धारइ, धम्मे ठिउ सुह पावइ।"

(अर्थ- धर्म ही समस्त संसार को धारण करता है; जो मनुष्य धर्म में स्थित रहता है, वही सच्चा सुख प्राप्त करता है।)

II. **णायकुमारचरिउ**– कवि पुष्पदन्त द्वारा रचित णायकुमारचरिउ अपभ्रंश भाषा का जैन चरित्रकाव्य है। इसमें णायकुमार (नायकुमार) के जीवन के माध्यम से कर्म-सिद्धांत, वैराग्य, संयम और आत्मोद्धार का प्रतिपादन किया गया है। यह ग्रंथ महापुराण की परंपरा से जुड़ा हुआ माना जाता है। उनकी रचनाओं में वीर-काव्य और धार्मिक तत्वों का सुंदर समन्वय है।

उदाहरण– "णायकुमारु बुझिउ तत्तु, संसारु सव्वु असार।"

(अर्थ- णायकुमार राजपाट का त्याग करके धर्म और संयम के मार्ग को अपना लेते हैं।)

3. अधनपाल

I. **भविसयत्तकहा**– धनपाल द्वारा रचित भविसयत्तकहा अपभ्रंश भाषा का प्रसिद्ध जैन कथाग्रंथ है। इसमें भविष्यदत्त (भविसयत्त) नामक व्यापारी के जीवन के माध्यम से कर्मफल, धर्म, संयम और सदाचार का प्रतिपादन किया गया है। यह ग्रंथ कथा शैली में जैन नैतिक मूल्यों को सरल ढंग से प्रस्तुत करता है। इस ग्रंथ में कथा शैली और लोकजीवन का सजीव चित्रण मिलता है।

उदाहरण– "धम्मु गहिउ भविसयत्तु, पावु पुण्णु विवेयइ।"

(अर्थ- भविष्यदत्त ने धर्म का आश्रय लिया और पाप-पुण्य का भेद समझ लिया।)

4. जोइन्दु (योगीन्द्र)

I. **परमात्मप्रकाश**– **योगीन्द्र (जोइन्दु)** द्वारा रचित *परमात्मप्रकाश* अपभ्रंश भाषा का दार्शनिक जैन ग्रंथ है। इसमें आत्मा-परमात्मा की एकता, मिथ्यात्व का नाश, ज्ञान, ध्यान और वैराग्य के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति का प्रतिपादन किया गया है। यह ग्रंथ जैन अध्यात्मवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है।

उदाहरण– “जो अप्पा सो परमप्पा, णाणु सुद्धु जइ होइ।”
(अर्थ- जो आत्मा शुद्ध ज्ञान से युक्त हो जाती है, वही आत्मा परमात्मा बन जाती है।)

II. **योगसार– योगीन्द्र (जोइन्दु)** द्वारा रचित *योगसार* अपभ्रंश भाषा का एक अध्यात्मपरक जैन ग्रंथ है। इसमें आत्मशुद्धि, ध्यान, संयम और योग के माध्यम से मोक्षप्राप्ति- का मार्ग बताया गया है। यह ग्रंथ *परमात्मप्रकाश* का भावात्मक पूरक माना जाता है।

उदाहरण– “जोगु ण बाहिरु कीजइ, जोगु ण मणि वि भणिय।”
(अर्थ- योग बाहरी आडंबर से नहीं होता और न ही केवल मन की कल्पना से योग सिद्ध होता है।)

जैन मुनियों का अपभ्रंश साहित्य हिन्दी साहित्य की **आधारशिला** है। इसी परंपरा से आगे चलकर अवधी, ब्रज और खड़ी बोली का विकास हुआ। कथात्मक शैली, नीति-उपदेश और लोकभाषा का प्रयोग बाद के भक्तिकालीन और रीतिकालीन साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डालता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी के आदिकाल में जैन मुनियों द्वारा रचित अपभ्रंश साहित्य ने भाषा, भाव और शिल्प तीनों स्तरों पर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। यह साहित्य न केवल धार्मिक चेतना का वाहक है, बल्कि हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास का अमूल्य दस्तावेज भी है।

(घ) वीरगाथा साहित्य

यह आदिकाल की सबसे प्रसिद्ध धारा है। इसमें राजपूत वीरों के शौर्य, बलिदान और युद्धकथाओं का वर्णन है। प्रमुख ग्रंथ हैं–

1. **पृथ्वीराज रासो**– पृथ्वीराज रासो हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल की सर्वाधिक प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। इसके रचयिता **चंदबरदाई** थे, जो चौहान शासक **पृथ्वीराज चौहान** के दरबारी कवि माने जाते हैं। इस ग्रंथ में अजमेर और दिल्ली के प्रतापी राजा पृथ्वीराज चौहान के जीवन, शौर्य, प्रेम और युद्धों का विस्तृत काव्यात्मक वर्णन मिलता है। पृथ्वीराज रासो की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित प्रारम्भिक हिंदी है जो ब्रज और राजस्थानी मिश्रित है। इसमें छंदों का प्रयोग हुआ है तथा वीर रस की प्रधानता है, साथ ही श्रृंगार और करुण रस के भी प्रसंग मिलते हैं। पृथ्वीराज

और संयोगिता प्रेम प्रसंग तथा मोहम्मद गोरी के साथ हुए युद्धों का वर्णन इस कृति के प्रमुख आकर्षण हैं।

यह ग्रंथ ऐतिहासिक तथ्यों और लोककथाओं का मिश्रण है। इतिहासकारों में इसकी प्रामाणिकता को लेकर मतभेद है, फिर भी इसमें तत्कालीन राजपूत समाज, युद्ध नीति, नारी सम्मान और वीरता की भावना का सजीव चित्रण मिलता है। पृथ्वीराज को एक आदर्श, पराक्रमी और स्वाभिमानी राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का विशेष महत्व है। यह हिंदी की वीरगाथा परम्परा की आधारशिला मानी जाती है और आगे चलकर रासो काव्य परम्परा को प्रेरणा देती है। इस प्रकार, पृथ्वीराज रासो हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है, जो भारतीय वीरता और उसके गौरवशाली अतीत को उजागर करती है।

उदाहरण- "चारि बाण चहुँ दिसि चले, एक लगा सुलतान।"

(अर्थ- पृथ्वीराज ने चारों दिशाओं में बाण छोड़े, जिनमें से एक बाण सीधे शत्रु (शहाबुद्दीन गौरी) को जा लगा।)

2. **परमाल रासो**– परमाल रासो हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल की एक महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। इसके रचयिता **जगनिक** थे। यह रचना बुंदेलखंड के वीर नायकों **आल्हा** और **ऊदल** के शौर्य, पराक्रम और युद्धों का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत करती है। परमाल रासो को **आल्हा खंड** के नाम से भी जाना जाता है। इस ग्रंथ की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित प्रारम्भिक हिंदी है, जिसमें बुंदेली का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसमें वीर रस की प्रधानता है तथा युद्ध वर्णन अत्यंत सजीव और ओजपूर्ण है। लोकजीवन, वीरता, स्वाभिमान और मातृभूमि के प्रति निष्ठा जैसे तत्व इस कृति की विशेषता हैं।

परमाल रासो में तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण भी मिलता है। इसमें चंदेल और चौहान शासकों के संघर्ष, राजपूत वीरों की आन-बान-शान तथा वीरगति को सर्वोच्च मानने की भावना स्पष्ट रूप से उभरकर आती है। यह रचना लंबे समय तक लोकगीतों और गायन परम्परा के माध्यम से जनमानस में लोकप्रिय रही है। साहित्यिक दृष्टि से परमाल रासो का विशेष महत्व है। यह वीरगाथा काव्य परम्परा को समृद्ध करता है और लोककाव्य तथा साहित्यिक काव्य

के बीच सेतु का कार्य करता है। इस प्रकार, अलंकार रासो हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण वीरगाथात्मक कृति है।

उदाहरण– "मुख चंदा सम उज्जल, नयन कमल दल होइ।"

(अर्थ- नायिका का मुख चंद्रमा के समान उज्ज्वल है और आँखें कमल की पंखुड़ियों जैसी हैं।)

3. **बीसलदेव रासो**– बीसलदेव रासो हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल की एक प्रसिद्ध रचना है। इसके रचयिता **नरपति नाल्ह** माने जाते हैं। यह काव्य अजमेर के चौहान शासक **बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ)** के जीवन और व्यक्तित्व पर आधारित है। यह ग्रंथ वीरता के साथ-साथ प्रेम और मानवीय संवेदनाओं का भी सुंदर चित्रण प्रस्तुत करता है। बीसलदेव रासो की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित प्रारम्भिक हिंदी (राजस्थानी/ब्रज मिश्रित) है। इस रचना में वीर रस के साथ-साथ **श्रृंगार रस** की भी प्रधानता दिखाई देती है, जो इसे अन्य रासो काव्यों से अलग बनाती है। बीसलदेव और उनकी पत्नी राजमती के प्रेम, विरह और मिलन का मार्मिक वर्णन इसमें मिलता है।

इस काव्य में केवल युद्ध और राजनीति ही नहीं, बल्कि नारी-हृदय, दाम्पत्य जीवन और सामाजिक संबंधों का भी संवेदनशील चित्रण हुआ है। इसी कारण इसे वीरगाथा काल की एक कोमल एवं भावप्रधान रचना माना जाता है। साहित्यिक दृष्टि से बीसलदेव रासो का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें भाषा की सरलता, भावों की गहराई और कथानक की रोचकता देखने को मिलती है। यह कृति वीरगाथा काव्य परम्परा में श्रृंगार और मानवीय भावनाओं का सफल समावेश करती है। इस प्रकार, बीसलदेव रासो हिंदी साहित्य की एक उल्लेखनीय रचना है।

उदाहरण– "बीसलदेवु रण में उतरि, धरा ध्वज उचटाइ।"

(अर्थ- बीसलदेव युद्धभूमि में उतरे और धरती पर विजय का ध्वज फहरा दिया।)

4. **हम्मीर रासो**– हम्मीर रासो मध्यकालीन हिंदी साहित्य की एक प्रसिद्ध वीरगाथात्मक कृति है। इसके रचयिता **नयचन्द्र सूरी** माने जाते हैं। यह ग्रंथ चौहान वंश के प्रतापी शासक रणथम्भौर के राजा हम्मीरदेव चौहान के जीवन, पराक्रम, शौर्य और बलिदान का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत करता है। यह रचना वीरगाथा काल की प्रमुख कृतियों में गिनी जाती है। हम्मीर रासो की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित प्रारम्भिक राजस्थानी है। इसमें ओजपूर्ण शैली, सजीव युद्ध-वर्णन और वीर रस की प्रधानता दिखाई देती

है। काव्य में हम्मीरदेव के मुहम्मद बिन तुगलक के साथ हुए संघर्षों, रणथम्भौर दुर्ग की रक्षा तथा अंततः आत्मबलिदान का मार्मिक चित्रण किया गया है।

इस ग्रंथ में केवल युद्ध का ही वर्णन नहीं है, बल्कि राजपूती मर्यादा, स्वाभिमान, देशभक्ति, नारी सम्मान और आन-बान-शान जैसे मूल्यों को भी उजागर किया गया है। हम्मीरदेव को एक आदर्श वीर, न्यायप्रिय और स्वाभिमानी राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा वीरगति को श्रेष्ठ मानता है। साहित्यिक दृष्टि से हम्मीर रासो का महत्व अत्यधिक है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पना का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। यह ग्रंथ न केवल वीरगाथा परम्परा को समृद्ध करता है, बल्कि तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी ज्ञान कराता है।

उदाहरण– "हम्मीर वीर रण में उतर्यो, ध्वज ऊँचा धर्यो।"

(अर्थ- हम्मीर (हिम्मीर) वीर युद्धभूमि में उतरे और विजय का ध्वज ऊँचा किया।)

5. **सरलादास रासो**– **सरलादास रासो** हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल की एक महत्वपूर्ण रचना है। यह रासो काव्य परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है, जिसमें वीरता, प्रेम, मर्यादा और राष्ट्रभक्ति की भावना प्रमुख रूप से देखने को मिलती है। सरलादास रासो के रचयिता सरलादास हैं, जो अपने समय के प्रतिष्ठित कवि और रासोकार माने जाते हैं। सरलादास रासो में मुख्यतः वीरता और युद्ध का वर्णन है। इसमें राजा-वीरों के संघर्ष, उनकी पराक्रम गाथाएँ, युद्ध-रूपक और आत्मबलिदान की कहानियाँ प्रस्तुत की गई हैं। रासो में वीरता के साथ-साथ प्रेम, नारी-आदर, धर्म और मर्यादा जैसे सामाजिक मूल्य भी प्रमुख रूप से दिखते हैं। कहानी में नायक की जीवन-यात्रा, युद्ध के रण-क्षेत्र, वीरगति और आदर्श राजशाही का चित्रण मिलता है।

सरलादास रासो न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह उस समय के सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश का भी चित्रण करता है। इसमें राजपूत संस्कृति, युद्ध नीति, समाजिक मान्यताएँ और वीरता की संस्कृति का वर्णन मिलता है। यह ग्रंथ जन-मानस में वीरता और सम्मान की भावना को प्रेरित करता है।

उदाहरण– "सरलादासु रण में उतर्यो, शत्रु भयभीत होइ।"

(अर्थ- सरलादास युद्धभूमि में उतरे, और शत्रु उनकी वीरता देखकर भयभीत हो गये।)

आदिकाल का महत्व

यह काल हिन्दी साहित्य का आदि स्रोत है। इसने हिन्दी को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसमें निहित वीरता और देशभक्ति की भावना ने राष्ट्रप्रेम को पोषित किया। आदिकाल ने भक्तिकाल के आध्यात्मिक साहित्य की नींव रखी। आदिकाल हिन्दी भाषा के निर्माण की प्रयोगशाला है। इस समय संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से प्रारंभिक हिन्दी का क्रमिक विकास हुआ। दोहा, चौपाई, पद, सबद आदि छंदों का प्रारंभिक रूप आदिकाल में दिखाई देता है। यही छंद आगे चलकर हिन्दी काव्य की स्थायी पहचान बने। काव्य-शिल्प की दृष्टि से यह काल प्रयोग और विकास का समय रहा है। जैन मुनियों, बौद्ध सिद्धों और नाथ योगियों ने लोकभाषा को साहित्य का माध्यम बनाकर हिन्दी के भावी स्वरूप की नींव रखी। आदिकालीन साहित्य तत्कालीन समाज, धर्म, संस्कृति और जीवन-मूल्यों का विश्वसनीय प्रमाण है। इससे उस समय की सामाजिक संरचना, धार्मिक संघर्ष और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को समझने में सहायता मिलती है।

निष्कर्ष

आदिकाल हिन्दी साहित्य का आधारभूत और प्रारम्भिक काल है। यद्यपि इसमें साहित्यिक परिष्कार और कोमल भावनाएँ कम थीं, किन्तु इसमें निहित वीरता, शौर्य, देशभक्ति और धर्मनिष्ठा इसे महत्त्वपूर्ण बनाती है। यही कारण है कि इसे हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्णिम प्रारम्भिक अध्याय कहा जाता है। इसी काल में हिन्दी ने साहित्यिक रूप ग्रहण किया। भले ही भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव रहा हो, किन्तु भावाभिव्यक्ति और लोकधारा के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व अत्यधिक है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य का आदिकाल भाषा, साहित्य और संस्कृति तीनों दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस काल ने हिन्दी साहित्य को दिशा, आधार और पहचान प्रदान की है। इसलिए आदिकाल को हिन्दी साहित्य की विकास-यात्रा का अनिवार्य और निर्णायक चरण माना जाता है।

संदर्भ सूची–

1. शुक्ल, रामचन्द्र – *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद – *हिन्दी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वर्मा, रामकुमार – *हिन्दी साहित्य का संवत्सर*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. सिंह, नागेन्द्र – *हिन्दी साहित्य का विकास*, विद्यार्थी पुस्तक भण्डार, आगरा।

5. मिश्र, नामवर सिंह – *हिन्दी साहित्य की परम्परा और प्रवृत्तियाँ*, राजकमल प्रकाशन।
6. सिद्ध सहरपा- *दोहाकोश*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, बिहार।
7. बागची, प्रबोध चन्द्र- *चर्यागीतिकोष*, विश्वभारती शान्तिनिकेतन, कलकत्ता।

शोध-सहायक
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग
शोध संकाय
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं हिन्दी दलित उपन्यास

—डॉ. अनुराग त्रिपाठी—

प्राचीन काल से ही भारत को विश्वगुरु का दर्जा दिया गया है। हमें यदि यह अप्रतिम अलंकरण प्राप्त है तो निःसंदेह हमारी आधुनिक उपलब्धियों के कारण नहीं, अपितु हमारी गौरवशाली संस्कृति तथा साहित्य के कारण जिसने साम्राज्य से लेकर वैराग्य तक की स्वस्ति कामना की है। इसमें प्रमाण देने की कोई बात करे तो- 'सा संस्कृतिः प्रथमा विश्ववारा' अर्थात् इसी भारतीय संस्कृति ने विश्व को वरण किया है यह अर्थववेदीय सन्दर्भ ही पर्याप्त प्रतीत होता है। इस भारतभूमि में देवता, सुर-असुर सभी तरसते हैं जन्म लेने के लिए, क्योंकि यहाँ से स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।

भारतीय ज्ञान-परम्परा ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है। इसमें कर्म और फल तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को समाहित करते हुए व्यक्ति के सम्पूर्ण ऐहिक व पारलौकिक भारत व्यक्तित्व को विकसित करना था। जब सम्पूर्ण विश्व अज्ञान रूपी अंधकार में भटकता था, तब हमारे मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानवता को पशुता से मुक्त कर श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त कर पूर्ण मानव बनाते थे। भारतीय ज्ञान-परम्परा की अमूल्य निधि को वेदों, आरण्यकों, पुराणों, स्मृतियों, धर्म सूत्रों, रामायण, महाभारत आदि में सुरक्षित आज भी पाया जाता है।

उसी तरह हिन्दी साहित्य में इस भारतीय ज्ञान-परम्परा की धारा प्रवाहित होती आ रही है, यह ज्ञान की परम्परा जैन, सिद्ध एवं नाथ साहित्य, 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'पद्मावत', 'विनयपत्रिका', 'रामचन्द्रिका' जैसे महाकाव्यों एवं भक्तिकाव्यों से होती हुई नाटकों, उपन्यासों, कहानियों के माध्यम से आज तक बह रही है। हिन्दी साहित्य ने पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के भेदभाव को मिटाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् सारी पृथ्वी ही हमारा परिवार जैसी उक्ति के माध्यम से मानव-मात्र के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न कर दिया है।

साहित्य मात्र समाज को दिशा-निर्देश ही नहीं करता है, बल्कि उसके विकास में भी अपनी महती भूमिका अदा करता है। उसकी बड़ी पैनी नजर है आज की समस्याओं पर । इन समस्याओं में से एक है अस्मिता के संकट की समस्या। आज समाज दलित को और आदिवासी अपने-अपने अस्तित्व के प्रश्न को व्यवस्था के सामने खड़ा कर रहे हैं।

दलित शब्द प्राचीन काल के अस्पृश्य, अंत्यज, बहिष्कृत या तिरस्कृत शब्द का पर्याय है। संस्कृत शब्दकोश इसका अर्थ दबाया गया अथवा कुचला गया करता है। दलित के बारे में जो आम धारणा प्रचलित है वह उसे दीन-हीन, मरा-गिरा, दया और सहानुभूति के निरीह पात्र के रूप में स्थापित करती है। यह मान लिया जाता है कि दलित का मतलब उस व्यक्ति से है जो मूलतः अक्षम, अयोग्य और निर्बल होता है, फिर भी आप यह समझ लीजिये कि वह उस पावन श्रमण संस्कृति का व्यक्ति है। जिसके विषय में बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा दी गई दलित व्यक्ति की परिभाषा में दलित की छवि कर्मठ, सत्यनिष्ठ, परिश्रमी और कृतज्ञ व्यक्ति के रूप में सामने आती है। दलित साहित्य के अध्येता एवं मराठी के समीक्षक गंगाधर पानतावणे की मान्यता है- "दुनिया में शोषितों एवं पीड़ितों का दुःख बहुत कुछ समान हुआ करता है। जहाँ सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्वातंत्र्य नकारा जाता है, वहाँ वैचारिक और क्रियाशील आन्दोलन होते हैं, फिर चाहे वह बुरी मंशा से भले ही जुड़े हों, निम्नों से जुड़े हों या दलित से जुड़े हों"। भारत में दलित शब्द का प्रयोग सन् 1933 में प्रारम्भ हुआ था। उस समय की तात्कालिक सरकार (अंग्रेजी सरकार) ने Depressed Classes के समाज को कुछ सुविधाएँ उपलब्ध कराई थीं। इस Depressed Classes के अन्तर्गत अस्पृश्य समाज के साथ-साथ पिछड़े समाज के आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से कमजोर व्यक्तियों को रखा गया था।

सामाजिक-सांस्कृतिक वर्चस्व को चुनौती देने वाले दलित साहित्य का आधार आधुनिक संवैधानिक मूल्य, मानव की सार्वभौमिक समानता और प्रजातन्त्र में विश्वास है और प्रेरणा का स्रोत उस अनन्त पीड़ा में है जो इस देश की दलित जातियों ने सदियों-सदियों अकारण और बिना कोई प्रतिरोध किए सहा है।

मराठी प्रभाव से मुक्त दलित चिन्तक डॉ. धर्मवीर कहते हैं "वास्तव में दलित साहित्य की सच्ची और पूरी परिभाषा यह है कि यह वह साहित्य है जो दलित जाति में जन्मा हुआ एक साहित्यकार अच्छा या बुरा साहित्य लिखता है। दलित साहित्य का नायक और खलनायक भी दलित होता है, क्योंकि वे अपनी पूरी जिन्दगी जीते हैं।"

ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' में उद्धृत किया है कि- "डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं- दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।" क्योंकि इनके विचार दलित साहित्य के मूल्यों और प्रतिमानों के नजदीक हैं। यह सच है कि हमें अलगाव उत्पन्न नहीं करना है, सामंजस्य बनाये रखना आवश्यक है।

भारतीय हिन्दी साहित्य में नवजागरण की सबसे महत्वपूर्ण देन उपन्यास साहित्य का विस्तार है । हिन्दी उपन्यास के लेखकों ने पहली बार सामाजिक जीवन के अनुभवों, समस्याओं और उनके समाधानों को खोजने का प्रयास किया ।

हिन्दी दलित कविता की तरह स्वतन्त्रता के पूर्व हिन्दी दलित उपन्यास की कोई लंबी परंपरा नहीं मिलती है । श्रद्धाराम फुल्लौरी का 'भाग्यवती', इलाचन्द्र जोशी का 'प्रेत और छाया' एवं 'संन्यासी', जैनेन्द्र कुमार का 'सुनीता एवं त्यागपत्र', जयशंकर प्रसाद का 'कंकाल', निराला 'विल्लेसुर बकरिहा', प्रेमचन्द का 'कर्मभूमि' एवं 'गोदान' अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र का 'बुधुआ की बेटी' आदि उल्लेखनीय उपन्यासों में सिर्फ समाज की मुख्य धारा से बेदखल दलितों के जीवन पर हो रहे हमले के सवाल मौजूद है, लेकिन उनके अतीत इतिहास और प्रतिरोध के पक्ष को जमीन नहीं दी गई है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दलित वर्गों ने मुख्य धारा के साहित्य दर्पण में अपनी तस्वीर देखना आरंभ किया और अपने भोगे हुए यथार्थ की रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की और बहुत कम समय में दलित उपन्यासों से हिन्दी उपन्यास में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराई है ।

आजादी के बाद हिंदी दलित उपन्यासों में डॉ. रामजी लाल सहाय के सन् 1954 में प्रकाशित उपन्यास 'बंधन मुक्ति' की गणना होती है । जयप्रकाश कर्दम का 'करुणा', 'छप्पर', डी.पी. वरुण का 'अमर ज्योति', डॉ. धर्मवीर का 'पहला खत', परदेशी रामवर्मा का 'डूब जाती है नदी', राणा प्रताप का 'भूमिपुत्र', नवल वियोगी के 'सुहाग सिंदूर', 'दूसरी जिंदगी', 'गिरे हुए लोग', मोहनदास नैमिशराय के 'क्या मुझे खरीदोगे, 'मुक्तिपर्व', 'झलकारी बाई', 'आज बाजार बंद है', 'महानायक डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर', प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगंध', विपिन बिहारी का 'एक स्वप्नदर्शी की मौत', एस.के. पंचम का 'दलित दहन', कमल तेजस का 'गवाह तथागत', देवीदयाल जैन का 'मानव की परख', उमराव सिंह जाटव का 'थमेगा नहीं विद्रोह', रूपनारायण सोनकर का 'डंक', कावेरी का तस 'मिस रमिया', अजय नावरिया का 'उधर के लोग' और सुशीला टाकभौरे का 'नीला आकाश' आदि उल्लेखनीय दलित उपन्यास हैं ।

आरंभ में हिंदी दलित साहित्य में उपन्यास विधा लगभग उपेक्षित रही लेकिन वर्तमान में उपन्यास लेखन ने गति पकड़ी है । नवल वियोगी रचित 'दूसरी जिंदगी' सन् 1989 में प्रकाशित हुआ । यह उपन्यास किसी दलित द्वारा हिंदी में लिखा गया संभवतः

पहला दलित उपन्यास है। पहले हिंदी दलित उपन्यास के संबंध में रजत रानी मीनू लिखती हैं, “देवी दयाल सेन द्वारा सृजित 'मानव की परख' सन् 1954 में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष डॉ. रामजी लाल सहायक द्वारा रचित उपन्यास 'बंधन मुक्ति' प्रकाशित हुआ। इन दोनों में प्रथम किसे मानें, यह मुश्किल कार्य है, क्योंकि उक्त दोनों उपन्यासों में प्रकाशन का वर्ष ही प्रकाशित है, माह नहीं। इसलिए हम इन दोनों उपन्यासों को आधुनिक काल के प्रथम उपन्यास मानते हैं।”

आत्मकथात्मक शैली में रचे गए 'उधर के लोग' का कथ्य शिक्षित दलित वर्ग से संबंधित है। महानगरीय दलित समाज की तस्वीर प्रस्तुत करता यह एक अच्छा उपन्यास है। दलित आंदोलन के उत्थान और वर्तमान स्थिति पर भी नजर डाली गई है और साहित्यिक राजनीति पर भी बात की गई है। दलित जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया 'थमेगा नहीं विद्रोह' एक गाँव के कई दशकों के जीवन का वर्णन है। मुख्य कथा के साथ और भी कथाएँ गुंफित हैं। 'छप्पर' की कथावस्तु रमिया और सुक्खा द्वारा अपने बेटे चंदन को शिक्षित करने के संघर्ष की है। गाँव के ब्राह्मण, बनिये एवं ठाकुर द्वारा प्रताड़ित सुक्खा मजदूरी के लिए विवश होता है। दलित उपन्यास की परंपरा में पहला ऐतिहासिक उपन्यास होने का दावा करनेवाले नैमिशराय जी ने 'महानायक बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर' में अंबेडकर के जीवन तथा उनकी राजनीतिक विचार यात्रा की प्रामाणिक तस्वीर पेश की है। 'डंक' उपन्यास में भी कई कहानियाँ हैं। उपन्यासकार ने वर्ण-व्यवस्था से उत्पीड़ित दलित, आदिवासी, पिछड़े एवं निर्धन सभी का चित्रण किया है। 'जस तस भई सबेर' समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास और अंधश्रद्धा का चित्रण करते हुए यह स्पष्ट करता है कि दलितों के पतन के कारणों में शिक्षा, अंध- श्रद्धा और अज्ञान प्रमुख हैं। इसमें दलित जीवन की विवशता एवं विद्रोह का स्वर भी है। 'नीला आकाश' में दलित जीवन के कठोर यथार्थ का ताना-बाना बुना गया है, साथ ही मुक्ति की आकांक्षा का भी अंकन है।

इन उपन्यासों ने हिंदी उपन्यास की मुख्यधारा के बरक्स अपनी एक पहचान बनाई है। और हिंदी दलित उपन्यासों की परंपरा को प्रौढ़ावस्था की उत्ताल तरंगों की तरफ मोड़ दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. उपन्यास साहित्य में दलित समस्या एवं समाधान- श्यौराज सिंह बेचैन, प्रथम संस्करण, 2014, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

2. हिन्दी दलित साहित्य संचयिता - सम्पादक डॉ. प्रीति सागर, पहला संस्करण, 2015, राजकमल प्रकाशन (प्रा.) लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
3. अस्मिता मूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य - सम्पादन डॉ. रजत रानी मीनू, 2016, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली ।
4. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन - डॉ. रविशंकर शुक्ल, 2022, प्रलेक प्रकाशन (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली ।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, मयूर बुक्स, नई दिल्ली ।

सहायक आचार्य, हिन्दी भाषा
अध्यक्ष, प्राच्य एवं आधुनिक भाषा विभाग
केन्द्रीय उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8840078812

तुलसी के रामः
लोक मंगल के हित प्रगटे मर्यादा पुरुषोत्तम

—ओम धीरज—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः" महर्षि वाल्मीकि के मुख से क्रौंच-युगल में एक को बहेलिये द्वारा मारे जाने से अचानक उपजे शोक से उत्पन्न श्लोक महर्षि को आदि कवि बना देता है और जो कथा फूटती है, वह आदि रामकथा बनती है। इसी आदि रामकथा से अनेक राम कथाएँ संस्कृत, प्राकृत तथा देश की अन्य भाषाएँ तमिल, तेलुगू मलयालम ही नहीं विदेशी भाषाओं तक जा पहुँचती है। वह राम, शाश्वत सनातन राम ही हैं जो श्लोक और लोक दोनों ही परंपरा में समान रूप से समादृत हैं। श्रीराम उसी भारतीय संस्कृति के विराट पुरुष हैं जो व्यक्ति की पवित्र संकल्प शक्ति, सत्यनिष्ठा, निर्भ्रान्तता एवं सार्वभौमिकता से व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाने का प्रकल्प बनती है। जहाँ आदिकवि प्रभु श्रीराम को "रामो विग्रहवान धर्म" अर्थात् साक्षात धर्म का विग्रहवान" रूप मानते हैं वहीं गोस्वामी तुलसीदास उन्हें आचरण की सभ्यता के संस्थापक मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में लोक में प्रतिष्ठापित करते हैं और "राम जनम जगमंगल हेतू" कहकर अपना अभीष्ट भी उच्चरित करते हैं। वे भारतीय संस्कृति की सर्वमयता के प्रतिनिधि चरित नायक हैं। इसीलिए गोस्वामी जी अपने महाकाव्य का नाम "श्रीराम चरित मानस" रखते हैं न कि रामायण। सगुन-निर्गुण, साकार-निराकार, शैव-वैष्णव जैसे विविध जीवन-दर्शन के द्वन्द्व को द्वन्द्वरहित बनाते हैं। तुलसी एक ओर "नाथ राम नहिं नर भूपाला/भुवनेश्वर कालहुँ कर काला" कहकर उनके इस स्वरूप को प्रकट करते हैं, वहीं आगे चलकर जनसामान्य से तादात्म्य स्थापित करने हेतु "प्रातकाल उठि कै रघुनाथा/मातु-पिता गुरु नावहिं माथा। आयसु मागि करहिं पुर काजा/देखि चरित हरषइ मन राजा" कह कर भ्रम का निवारण भी कर देते हैं। सच तो यह है कि तुलसी के राम अपना सब काम मानवोचित करते हैं अन्यथा गुरु विश्वामित्र के यहाँ यज्ञ को बाधारहित बनाने हेतु एक से बढ़कर एक दुर्दान्त राक्षसों जैसे सुबाहु आदि का वध क्षण मात्र में करते हैं, वहीं राम वानर रीछ आदि की सेना लेकर लंका पर विजय प्राप्त पाने हेतु प्रयास करते हैं। सीता की खोज में "हे खग मृग हे मधुकर सैनी तुम देखी सीता मृगनैनी" जैसी मनुष्योचित विरह-व्यग्रता भी प्रकट करते हैं। ऐसे तमाम उदाहरण जगह-जगह देखे जा सकते हैं। इसी तरह उनकी सहज मानवीयता लक्ष्मण मूर्च्छा के समय देखने योग्य है- सुत बित नारि भवन

परिवारा होहिं जाहिं जग बारहिं बारा। अस विचारि जियँ जागहु ताता/मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता। भाई के विरह-वियोग में कुछ त्रुटि हो सकती है, तभी तो सहोदर कह बैठते हैं। आगे फिर कहते हैं–जैहइँ अवध कवन मुँह लाई /नारि हेतु प्रिय भाय गँवाई।

निषादराज केवट और शबरी आदि का प्रकरण कौन नहीं जानता। केवट को जहाँ वे गले मिलते हैं, प्रेममगन शबरी के जूठे बेर खाते हैं, सुग्रीव से मित्रता कर उनका कष्ट हरते हैं। कोल-किरातों के संग हृदय खोल कर मिलते हैं, जटायु का अंतिम संस्कार पितृवत करते हैं। मतलब साफ है कि राम जाति-धर्म-कुल को नहीं देखते बल्कि सामान्य से सामान्यतर में भक्ति, स्नेह और लगाव का सहज व्यवहार देखते हैं। शबरी के स्वयं को अधम-मतिमंद कहने पर वह उसे भामिनी कह कर गौरव प्रदान करते हैं–कह रघुपति सुनु भामिनि बाता/मानउँ एक भगति कर नाता।

"विरुद्धों का सामंजस्य" जैसी अति आधुनिक अवधारणा भी वहाँ देखी जा सकती है। कहना न होगा कि वह ईश्वर हैं पर गृहस्थ भी हैं। वे दैवीय शक्तियों के स्वामी हैं पर विवश और दीन मनुष्य भी हैं जो भवितव्य के आगे अवश होकर चीत्कार कर सकते हैं। वे विनयी हैं पर क्रोध करें तो समुद्र को सुखा भी डालें। मायापति हैं, पर माया बस होकर सामान्य मनुष्य जैसा व्यवहार करते हैं। लोक-मर्यादा, संबंधों की गरिमा, कौटुम्बिक समरसता के उदाहरण जगह-जगह उनके चरित्र में मिलता है। भाई-भाई में प्रेम माताओं से समान व्यवहार ही नहीं अपितु कैकई से दुगुना प्रेम करते हैं। जीवन-आदर्श का कोई पक्ष नहीं मिलता जो राम से छूटा हो। गुरु-ब्राह्मण-शूद्र, प्रजा, पशु-पक्षी सभी के साथ यथोचित सम्मान पूर्ण व्यवहार उनके जीवन में मिलता है।

केवट शबरी जटायु कोल-किरात से सहृदय -व्यवहार को देखते हुए भी कुछ 'अतिशय तर्क चतुर 'जिन्हें कुतर्क शास्त्री भी कह सकते हैं, मर्यादा हनन करने में नहीं हिचकते। "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी" जैसी पंक्ति का सहारा लेकर जो अपना मन्तव्य रखते हैं, उन्हें जानना चाहिए कि मानस में एक कथानक- एक आख्यान भी है जिसमें समय-विशेष, पात्र-विशेष द्वारा अपना कथन भी किया जाता है। उपर्युक्त पंक्ति भयभीत समुद्र का अपना कथन है। सभी जानते हैं कि अति भय की स्थिति में कुछ इस तरह की उक्ति निकलती है जिससे उसे क्षमा मिल जाए। इसके अलावा "अवगुन आठ सदा उर रहहिं" जैसी पात्रानुकूल कही गई बात को यदि तुलसी का कथन मान लिया भी लिया जाए तो "शम्बूक - वध" और "सीता देशनिकाला" जैसे प्रकरणों को मानस में स्थान न देकर जिस महनीय चरित्र का परिचय दिया है, उससे भी वे गौण हो जाती हैं। यही नहीं, "कत विधि सृजी नारि जग माही / पराधीन सुख

सपनेहु नाहीं" तथा "एक नारि व्रत रत सब झारी/ते मन बच क्रम पति हितकारी" तो लिखा ही है। तुलसी के राम ने अपने पिता के विपरीत एक पत्नीव्रत धारण की मर्यादा का पालन किया। वही जब राम बालि का वध करते हैं तो कारण बताते हैं– अनुज वधू भगिनी सुत नारी।

वर्ण व्यवस्था के संबंध में यह भी विचारणीय है कि तत्कालीन समाज जो पाँच-छः सौ साल पहले और रूढ़िगत रहा होगा। ऐसे समाज में कवि का साहस ही है कि वह क्षत्रियों की सेना लेकर रावण वध को नहीं जाते बल्कि रीछ बानर, भालू आदिवासियों की सहायता से विजय प्राप्त करते हैं। कतिपय छिद्रान्वेषी इस बिंदु पर राम को सवर्ण विरोधी कहने लगें तो कौन रोक सकता है ! वास्तव में तुलसी के श्री राम वर्ण व्यवस्था के पक्षधर हैं किंतु यह पक्षधरता मनु के संविधान से अलग है। उनका अन्तर्सूत्र है कि सभी वर्गों के लोग लोकहितकारी नेतृत्व के प्रति आस्थावान हों, उनका आचरण शुद्ध हो, वे मर्यादित और कर्मनिष्ठ हों। जो इन चारों पायों का उल्लंघन करता है, उसे वे बख्शते भी नहीं।

बालि इसी का दण्ड पाता है। मारीच, अहिरावण इंद्रजीत, मेघनाथ, कुंभकरण और रावण क्या ब्राह्मण नहीं थे जो इनका वध किया ! क्योंकि वे मर्यादा-आचरण भ्रष्ट ब्राह्मण थे। इस तरह लोकमंगल राम की पहली और आखिरी प्राथमिकता है।

लोकमंगल की इसी श्रृंखला में भगवान राम का राज्य जिसे राम राज्य कहकर महात्मा गाँधी ने जो सपना देखा था वह एक आदर्श की सर्वोच्च कसौटी है। राम पर लिखना कोटि-कोटि शब्दों में भी संभव नहीं हो सकता। विनय पत्रिका में गोस्वामी जी ने स्वयं कहा है– जाके प्रिय न राम वैदेही/तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। वैसे गोस्वामी जी ने बालकांड में एक रूपक बनाते समय ही लिख दिया है– एहि सर आवत अति कठिनाई/राम कृपा बिनु आइ न जाई।

अस्तु सर्व समाज पर श्रीराम की कृपा बनी रहे। सबका कल्याण हो।

कवि, लेखक
(पूर्व अपर आयुक्त प्रशासन)
सारंगनाथ कालोनी, सारनाथ-221007 वाराणसी

भटकी ममता

—डॉ. अरुण कुमार राय—

सनसनाती हवाओं का रुख पुरवा, बादलों की ओट से झांक रहा चाँद, मौसम में हल्की से ठंढ का एहसास जो कभी-कभी शरीर में सिहरन पैदा करती थी। इस बसंती मौसम में भी परिणिता के माथे पर पसीने की झलकती बूँदें उसके अन्दर दहकती ज्वाला की तरफ इशारा करती थी। परिणीता पसीनो की बूंदों से बेपरवाह मंथर गति से अपनी गाड़ी को अपने गंतव्य को निश्चित गंतव्य की तरफ पूरी दृढ़ता के साथ ले जा रही थी, गंतव्य तक की उत्कंठा उसके गौर वर्ण चेहरे एवं झील सी आँखों में स्पष्ट परिलक्षित थी। अचानक उसके सामने प्रवेश चेहरा आ गया, वही प्रवेश जो उसका आदर्श है, प्रेम का उत्कर्ष है, शालीनता नैतिकता का साक्षात उदहारण, जिसके जीवन का उद्देश्य ही मेरी खुशी है, उसका अक्स में ही सुबह की आवाज अचानक कानो में गूज गई परिणीता ने गाड़ी को अचानक ब्रेक लगा दिया, आज कुछ उदास हो क्या ? नहीं तो देखो कुछ तो है अरे नहीं बाबा प्रवेश उसको न दुःख न क्लेश अगर ऐसी बात है तो शाम कही घूमने चलते है, नहीं आज नहीं, क्यों? शाम को हमें कुछ काम है, क्या ? जरा मंदिर जायेगे गाँव से आने के बाद दर्शन भी नहीं कर पाई हूँ, तब तो भक्त शिरोमणी का दर्शन तो अब रात्रि में ही होगा, परिणीता मन ही मन बुदबुदाई शायद ही ! तुमने कुछ कहाँ अरे नहीं तो दाल जल रही है कहते हुए रसोई घर में चली गई। प्रवेश खाना लग गया, हाँ आया और जल्दी से भोजन कर ज्योही आफिस जाने लगा परिणीता ने फ़्लैट की डुप्लीकेट चाभी देते हुए कहाँ चाभी रख लीजिये हो सकता है आप के आने पर हम घर पर न रहे, मतलब! आप से कहाँ न मंदिर जाना है ओ अच्छा कहते हुए प्रवेश तेजी से ऑफिस को चल दिया। वह दरवाजा बंद कर जैसे ही मुड़ी थी कि सुखिया आंटी (काम वाली आंटी) ने घंटी बजाई, उसने दरवाजा खोला आंटी आज जल्दी आ गयी, हाँ बिटिया कई दिना बाद गाँव से आइल हउ हम सोचली काम ढेर होई एहीसे आ गईली ! आंटी पहले चाय पी लीजिये, काम ज्यदा नहीं है, मैंने रात में सफाई कर दी थी, बर्तन भी थोड़ा ही है, अच्छा बिटिया, कह कर सुखिया आंटी काम पर लग गई। परणीता बर्तन खाली कर बोली आंटी थोडा बर्तन और है ले लीजिये। ठीक बा। हाँ आंटी शाम को मत आइयेगा, काहे ? हमको कही जाना है सब ठीक ह न, हाँ सब ठीक है, साथ ही मन बुदबुदाई अब सब ठीक हो जायेगा। अच्छा बिटिया हम जा थई दरवाजा बंद कर ला। परिणिता अच्छा कहते हुए मुख्य द्वार का दरवाजा बंद कर

धड़ाम से सोफे पर निढाल सी पड़ गई और अब तक जो बुद्धि के संरक्षण में संरक्षित संवेगों का आवेग अचानक फूट पड़ा और वह रो पड़ी माता जी का दीदी जी से कहाँ वह वाक्य "ई बाझिन पर पता नहीं कौन जादू क देहले बिया उ कुछ सुने के तैयार नइखे, न ई मारतो बिया, दीदी ने कहाँ अम्मा जी धीरे बोली न परिणिता सुन लेई, सुन ले हम त इहे चाहत हुई कि उ सुन ले और सुन के भी बुद्धि आवे और कही डूब मरे ताकी परवेशवा भी दुसर बियाह कर वंश वाला हो जाई। माता जी की यह बात उसे बार-बार याद आ जाती और वह विकल होकर विवश हो अजीब उलझन के द्वन्द में उलझ जा रही थी। उसकी बुद्धि ने उसे पुनः संयत करने का प्रयास किया, माता जी की बात का बुरा मानना। पुनः वह सोचने लगी जब वह गाँव पहुँची तो सभी लोग कितने खुश थे सोनाक्षी तो दौड़ कर गले लग गई, चाची अब हम भी टाप करेगे सब लोग कहते है कि आप पढ़ने में बहुत तेज थी इसीलिये चाचा ने आपको मेरी चाची बनाया। अरे सोनाक्षी चाची को घर में तो आने दो तभी तो पढ़ोगी, अरे हाँ दीजिये अपना बैंग तुमसे नहीं उठेगा मेरी बिट्टू तब दोनों लोग पकड़ लेते है पहले चाचा से मिल लो फिर बैंग पकड़ना, सोनाक्षी दौड़ कर अपने चाचा के से लटक गई। घर में सभी लोग बहुत खुश थे। प्रवेश तो थोड़ी देर में अपने पुराने वेश कुर्ता लूंगी पहन कर गावं में सबसे मिलने चल दिए। दीदी ने पूछा इस बार कुछ दिन रहोगी या हर बार की तरह इस बार भी सुबह ही चल दोगी, अरे नहीं दीदी इस बार आपके देवर जी एक हफ्ते की छुट्टी लेकर आये है। दीदी भैया कहाँ है, अरे उनके भाई भयो आने वाले है तो सुबह से तैयारी कर रहे थे लगता है लगता है सब्जी लेने गए है, तभी भैया ने आवाज दी सोनाक्षी चाचा चाची आ गए क्या ? आवाज सुनते ही परिणता एक संस्कारी बहु की तरह सर पर पल्लू रख कर भैया का पैर थोड़े दूर से भूमी स्पर्श कर किया खूब खुश रहों, प्रवेश कहाँ है, आते ही गाँव में लोगो से मिलने निकल गए, वो कभी नहीं सुधरेगा इतना बड़ा अधिकारी फिर गवई अंदाज में चल दिया, खैर बेटा तुम बुरा न मानना वैसे भी बेटा जो अपनी माटी को नहीं भूलता वही बड़ा होता है हमारा प्रवेश सचमुच ही बड़ा है। अभी वह स्मृति पटल के सुखद यात्रा में विचरण कर ही रही थी कि अचानक काल बेल बजी उसने दरवाजा खोला तो सामने दीना खड़े थे प्रवेश का चपरासी खाना लेने आये थे उसने कहाँ अरे एक बज गया क्या, उसने कहाँ दीना भैया आप बैठिये अभी उसने जल्दी से रोटियाँ सेक कर पहले तैयार सब्जी को गर्म कर सलाद और दही पैक कर दीना को पकड़ाया। पुनः उसके स्मृति पटल पर माता जी के वाक्य तीव्रता से कौधे उसने अपनी मुठिया भीची और जैसे पुरी दृढ़ता के साथ कुछ निर्णय ले लिया हो जिसे अब बदलना मुश्किल होगा और जल्दी जल्दी तैयार हो कर मोबाइल का सिम निकाल कर घर का ऑटो

लॉक बंद कर गेराज से कार निकाल अपने निश्चित मंजिल की तरफ तेजी से बढ़ने लगी धीरे धीरे अँधेरा बढ़ने लगा तभी उसके कार की विंड स्क्रीन पर तेज रौशनी ने उसकी सोच में व्योवधान उपस्थित, परन्तु उतनी ही तीव्रता से पुनः माता जी वाक्य का उसके मनमस्तिष्क छा गया वह हल्के से बुदबुदाई नहीं अब नहीं प्रवेश को वह सारी खुशिया मिलनी ही चाहिए जिसका वह नैसर्गिक अधिकारी है जो सिर्फ मेरे कारण बाधित है और वह तेजी से बाम्बे हाइवे पर बढ़ गई, अँधेरा गहराने लगा था और तबतक खंडाला की घटियाँ शुरू हो चुकी थी, वह एक घाटी के किनारे गाड़ी को रोककर पुरी दृढ़ता के आगे बढ़ी पहाड़ी चारो तरफ सुनसान थी परिणीता आवेग में थी अपने अंतिम पड़ाव की तरफ कदम रखा और लम्बी गहरी श्वास लेकर मन ही मन बुदबुदाई, प्रवेश माफ़ करना, माता जी की इच्छा अवश्य पुरी करना और आँखे बंद कर कूदने को उद्यत हुई तभी अचानक एक स्नेहिल हाथों ने उसे अपनी तरफ खीचा ये क्या करने जा रही हो बेटी, परणीता चीखी मुझे छोडिये बाबा मुझे मरना है, बाबा ने बहुत गंभीर शब्दों में कहाँ बाबा भी कहती और तथा छोड़ने को भी कहती हो नहीं बाबा मै जीना नहीं चाहती हूँ क्योंकि मै एक बाझ हूँ। बाझ शब्द सुनते ही शांत और सैयत बाबा ने एक जोरदार तमाचा परिणीता के गाल पर मारा और डाट कर कहाँ यहाँ बैठो और वह संज्ञा शून्य सी बैठ गई, बाबा ने गंभीर शब्दों में कहाँ – नारी सिर्फ माँ होती है उसमे ईश्वरीय नैसर्गिक ममतत्व निरंतर प्रवाहमान होता है वह कभी बाझिन नहीं होती है, स्वार्थी अज्ञानी समाज ईश्वरीय विधान पर ही प्रश्न खड़े करते है। बिटिया जिस नारी के स्व तन से तनय या तनया नहीं होते वह भ्रमित है तथा ईश्वर के सन्देश से अपरचित है, हम इस माया संसार में बन्धनों से जकड़ें, इसमें सबसे बड़ा बंधन संतान का बंधन है। समाज या देश में जितनी भी दुश्वारिया भ्रष्टाचार या अन्य समस्या है वह सभी संतान मोह से पुष्पित पल्लवित है। इसलिए प्रकृति उन दम्पतियों को स्पष्ट सन्देश देता है कि हमने तुम्हे संसार के सबसे कठिन बंधन से मुक्त कर रक्खा है तो फिर तुम क्यों समाज की व्यर्थ व्यंजना एवं विडम्बना में गोते लगाते हो, अपने कर्तव्य को पहचानो, उन अज्ञानियों को ज्ञानी मत समझों जो अपनी तरह संतान मोह में फसने को उकसाते है। बिटिया मै पुनः कह रहां हूँ संसार की प्रत्येक स्त्री जन्म से ही माँ है। तुम्हे मालूम है वर्ष के दोनों नवरात्र में कुमारी पूजा क्यों होती है ? आदि शक्ति जगत जननी माँ दुर्गा के शैलपुत्री स्वरुप को हम बाल्यावस्था में माँ के रूप में पूजते है, जगत जननी ब्रह्माण्ड पालनहार जगत नियंता भगवान विष्णु भार्या माँ लक्ष्मी स्वयं किसी एक तनय या तनया की मातृत्व बंधन से मुक्त है परन्तु वह जगत जननी है तथा समस्त सुख संपदा धन की प्रदाता है एवं सभी को वह निश्छल भाव से अपने ममतत्व आप्लावित कर रही है।

बिटिया एक सन्तान की माँ बनना एक अच्छी बात हो सकती है और होती भी है क्योकि हमारे समाज की अवधारणा से ही हमारे विचार का निर्माण होता है और उसी से हम अपने जीवन के समस्त सुख दुःख, जय-पराजय एवं सम्मान का निर्माण करते है तथा जीवन का निर्वहन करते है। बिटिया हम तुम्हारे मनःस्थिति को अच्छी तरह से महसूस कर रहे है इस समय तुम्हे कुछ भी समझ में नहीं आ रहां है। बच्चे पहले तूझे मै अपने बारे में बता दूँ मै कोई संत महात्मा नहीं हूँ बस उम्र के इस पड़ाव पर स्वयं को जानने को की कोशिश कर रहां हूँ, प्रकृति या ईश्वर के बनाये इस संसार में हमारा कर्तव्य क्या है ? सुख या दुःख क्या है ? पहले से संयत हो चुकी परिणीता अचानक पूछा बाबा इस दुनिया में सुख क्या है ? बाबा ने शांत स्वर में कहाँ बिटिया वर्तमान की स्थिति यदि हमारे अनुकूल है तो सुख नहीं तो दुःख वासत्व में न सुख है न दुःख है सब हमारे अन्तर्निहित स्वीकार्यता की परिणिति है कि हम उस घटना विशेष को कैसे देखते है जैसे तुम स्वयं को विश्लेषित करो कि क्या जीवन तुम्हे इसी लिए मिला था? बाबा अभी अपनी बात समाप्त भी नहीं कर पाए थे कि उस सन्नाटे में अचानक प्रवेश की बदहवास चीखती सी आवाज गूज पड़ी परिणिता तुम यही कही हों न, जल्दी से उत्तर दो नहीं तो हम ! बाबा ने तुरंत प्रतिउत्तर दिया कौन हो बेटा इधर आ जाओ, कौन बोल रहां है, बेटा तुम्हारी समस्या का समाधान शायद इधर है आवाज की दिशा की तरफ आ जाओ, प्रवेश दौड़ कर बाबा के सामने पहुच गया और घबड़ाकर पूछा आपने कही मेरी परिणीता को देखा मेरा मतलब एक महिला मेरी पत्नी को देखा बाबा ने कहाँ बैठ जाओं नहीं बाबा जल्दी बताइए हमने उसकी कार यही देखी है प्रवेश ने झुझुला कर तेज आवाज में बोला कही तुमने तो कुछ नहीं कर दिया, बैठो बिटिया यही है बाबा की गंभीर संयत आवाज ने उसके संशय को मिटा दिया।

प्रवेश की आवाज सुन पहाड़ो की ओट के अँधेरे में परिणीता सुबकते हुयें लज्जा, ग्लानी तथा आत्मक्षोभ से भर गयी। अरे यह हम क्या करने जा रही थी, उस आदमी को छोड़ रही थी जिसका सुख भी मै और दुःख भी मै। शादी के दस वर्षो कभी तो यह नहीं लगा की मै और प्रवेश अलग है, फिर यह निर्णय मैंने कैसे ले लिया। माता जी के शब्द उनकी परिस्थितियों, सामाजिक बन्धनों, परम्पराओ की स्वभाविक प्रतिक्रिया थी, लेकिन मै कैसे उस शाब्दिक उर्जा के प्रति ऐसी प्रतिक्रिया कर बैठी। शायद संवेग जब अपने आवेग में आता है तो बुद्धि के विचारशीलता को पंगु कर मन को अपने वश में कर लेता है। अब मै क्या करू, क्या कहूँ कैसे अपने द्वारा किये गए दुराग्रह का समाधान करू ! अचानक प्रवेश की पुनः भावातिरेक से ओतप्रोत परिणीता चीत्कार सुनायी पड़ी। उसने अपने वैचारिक द्वन्द धक्का

दिया और हृदय में की आवाज सुनी जिसने उसे आदेशित किया पहले उसे तो सम्हाल फिर सोच, परिणीता दौड़ कर प्रवेश के गले लग गयी और आसुवों का सैलाब उमड़ पड़ा। प्रवेश मुझे माफ़ कर दीजिये, माफी तो मुझे मागनी चाहिए की मै तुम्हारी मानसिक अवस्था को नहीं समझ पाया, नहीं प्रवेश अपनी मनोस्थितियो को मैंने स्वयं नहीं समझा। हमने भी नारी को उतना ही तुच्छ प्रस्तुत करना चाहा जो समाज हमें अपनी बोझिल, दकियानूसी विचारो के माध्यम से हम पर थोपना चाहता है। बाबा ने सही कहा हम नारी तो जन्म से ही माँ स्वरूप है। एक लौकिक संतान तो नारी को संकुचित, स्वार्थी एवं ईर्ष्यालु बनाती है, परन्तु निःसंतान नारी यदि अपनी ममता की अजश्र धारा बहा दे तो न जाने कितने वंचित व्याकुल ममता के भूखे अपने जीवन का सही अर्थ पा सके और मेरी भटकी ममता में अपने माँ के स्वरुप का दर्शन पा कर निहाल हो सके।

सोवा-रिग्पा
के. उ..ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 9452922660

नदी का घर

—संजय गौतम—

आत्मन वैसे तो हमेशा दोराहे पर होते थे, लेकिन आज वह तिराहे पर थे। चार लेन की सड़क एक दिशा से आकर लगभग समकोण बनाती हुई दूसरी ओर मुड़ जाती थी और एक पंद्रह बीस फिट की सड़क सीधे निकल जाती थी। जैसे ही आत्मन इस रोड पर आए, उन्हें लगा दूसरी दुनिया में आ गए। चौड़ी सड़क के चकमक शोरूमों, मॉलों, बड़ी-बड़ी दुकानों को पीछे छोड़ जब वह इस दुनिया में आए तो उन्हे सड़क के किनारे प्लास्टिक की छाजन वाली झोपड़ियां और छोटी दुकाने दिखाई पड़ीं। उन्हे यह रास्ता जाना-पहचाना सा लगा। इधर वह किसी बेंच पर बैठकर चाय पी सकते थे, कड़ाही में से तुरंत निकलती हुई पकौड़ी खा सकते थे, ठेले पर अंडे का आमलेट खा सकते थे, भूजा हुआ गरम-गरम दाना खा सकते थे, सत्तू का शरबत पी सकते थे, सबसे बड़ी बात कि पटरी पकड़ कर पैदल आराम से चल सकते थे, तेज रफ्तार गाड़ी से झटका खाकर फिंक जाने का डर नहीं था।

जब वह नौकरी में स्थानांतरित होकर इस शहर में आए तब उन्हें सबसे ज्यादा खुशी इस बात की हुई कि यह तीन नदियों वाला शहर है। गंगोत्री से दक्षिण पूरब की ओर बहती हुई गंगा इसी शहर के दक्षिण से उत्तरवाहिनी होकर शिव के भाल को निहारती हुई फिर पूरब की ओर चली जाती हैं, समुद्र संगम करने। फाफामऊ, प्रयागराज के मैलहन झील से उत्फुल्लित वरुणा नगर को उत्तर से बाँधती हुई आदिकेशव घाट पर गंगा के गले मिलती है। किसी जमाने में इसी के शांत कछार के एकांत में बैठकर महात्मा बुद्ध ध्यान लगाया करते थे और शिष्यों को उपदेश देते थे।

आत्मन यह सब जानकर इसलिए खुश होते हैं कि जिस गांव में उनका जन्म हुआ था उसके किनारे कोई नदी नहीं बहती थी, जिसके किनारे बैठकर वह पानी को बहता हुआ देख सकें। गाँव में चार-पाँच पोखरियां थीं, जिसमें बरसात का पानी भर जाता था। उन्हीं पोखरियों में से एक में आत्मन अपने बचपन के साथियों के साथ नहाया करते थे। आत्मन को पानी इतना अच्छा लगता कि जहाँ दिख जाता वहीं छप-छप किया करते। लोग बताते हैं कि एक बार बकैयां खींचते हुए आत्मन मिट्टी के चबूतरे पर रखी हुई गगरी के पास गए और भरी हुई गगरी पकड़ कर लटक गए। गगरी उनके ऊपर गिरी और फूट गई। आत्मन पानी में और फूटी गगरी के टुकड़ों में छटपट कर रहे थे कि चाची का ध्यान गया और दौड़कर

आत्मन को ऊठाईं। माँ ने आकर लगाया दो थपाका। आत्मन और तेजी से रोने लगे। दादी ने अपनी गोद में लेकर पुचकारा और देखा आत्मन को कहीं चोट तो नहीं लगी।

लोग यह भी बताते हैं कि आत्मन एक बार छुटपन में अपने चाचा के साथ पोखरी पर गए थे। चाचा और उनके दोस्त पोखरी में नहाने लगे तो आत्मन से रहा नहीं गया और वह भी धीरे से पोखरी में उतर कर डूब गए। गनीमत यह हुई कि चाचा के दोस्तों का ध्यान गया और उन लोगों ने पोखरी से उन्हें निकाल लिया। तब तक वह भरपूर पानी पी चुके थे। पेट दबा-दबाकर पानी निकाला गया, आत्मन को होश आया तब सबकी जान में जान आई। लोगों ने कहा, बच्चे के बाल में भौंरी है, आग-पानी से बचाकर रखो, जान का खतरा बना रहेगा। तब से घर वाले भरसक कोशिश करते कि आत्मन पानी के पास न जाने पाएं।

लेकिन आत्मन थे कि जब भी मौका मिलता पानी के पास। थोड़ा बड़े और समझदार हुए तो भैंस चराने जाने लगे। क्या दिन थे वे भी, चरती हुई भैंस की पीठ पर बैठकर आत्मन अपने को हाथी की पीठ पर बैठा हुआ समझते। चरने के बाद भैंस जब पोखरी के पानी में उतरकर किसी पक्षी की तरह हल्की हो तैरती तो वह किनारे बैठकर देखते। देखना उन्हे अच्छा लगता। कभी एक कंकड़ उठाकर पोखरी में उछाल देते और लहरों का किनारे जाता हुआ वृत्त देखते। उनका सबसे प्रिय खेल था खपड़े का टुकड़ा लेकर पानी की सतह पर इस तरह फेंकना कि सरसराता हुआ पानी के पार चला जाए। टुकड़ा पानी के पार तक पानी को काटता हुआ जाता और लहरें इधर-उधर भागतीं। आत्मन को मजा आ जाता। तब और मजा आता जब साथ में एक-दो साथी भी अपनी भैंस के साथ होते। सभी इस खेल में मशगूल हो जाते और साँझ घिर आती।

किसी समय यह गाँव था, जिसे शहर अपनी गोद में बिठाकर तेजी से खा रहा था। खेती की जमीन प्रायः खत्म हो गई थी। हर तरफ मकान ही मकान दिख रहे थे। गाँव की बस्तियों के मकान अलग तरह के थे और नई कॉलोनीनुमा बस्तियों के अलग तरह के। बीच-बीच में कई अपार्टमेंट उग आए थे। हरियाली कहीं-कहीं ही दिखती थी। मुख्य सड़क पर एक पोखरा था, जिस पर गाँव वालों को गर्व था। गर्व करने लायक था भी। पोखरे का क्षेत्र काफी बड़ा था। दरअसल यह कई तालाबों का समूह था, लेकिन अब एक मुख्य पोखरा बचा था। बाकी पोखरों को पाटकर पत्थर बिछा दिए गए थे। सारे पेड़ काट दिए गए थे। लगता था पूरी जमीन पर दुकाने बनाई जाएंगी। लोगों को आय बढ़ाने का दूसरा जरिया नहीं समझ आ रहा था।

सौंदर्यीकरण योजना के तहत मुख्य पोखरे के चारो तरफ रेलिंग लगा दी गई थी। सीढ़ियां बन गई थीं। पोखरे के किनारे गाँव का पुराना मंदिर था और एक पीपल का पेड़, जिसके नीचे चबूतरा था। यही वह जगह थी, जहाँ गांव वाले अपने रीति-रिवाज और परंपराओं के अनुसार पूजा-पाठ करने आते थे। शादी का हर नया जोड़ा यहाँ पूजा करने आता। साथ में महिलाएं, लड़कियां और बाजा वाले होते। जब नगाड़े की धिनक धिनक होती सभी नृत्य में मगन हो जाते। आत्मन के भी पैर थिरकने लगते, लेकिन वह अपने आप को रोकते। सोचते क्या ही दुर्भाग्य है उनका मंगल और मुक्ति के इस उल्लास-उद्दाम उत्सव नृत्य में शामिल भी नहीं हो सकते।

आत्मन को यहाँ आकर बैठना अच्छा लगता। थोड़ी देर के लिए लगता वह अपने ही गाँव के पोखरे पर आ गए हैं, लेकिन कहाँ अपना गाँव, कहाँ उजड़े हुए गाँव का यह आखिरी पोखरा। पता नहीं अपने गाँव भी बचा होगा या नहीं। वे अकसर शाम को यहाँ बैठे रहते और सड़क के किनारे बने प्लास्टिक के घरों को देखते रहते। थोड़ी रात होती तो घरों में खाना बनना शुरू होता। आत्मन देख रहे थे एक घर में एक साँवली हृष्ट-पुष्ट महिला स्टोप के सामने बैठी है। उसके पास रखी थाली में अंडे रखे हुए हैं। आज अंडाकरी बनेगी। लगता है कोई मेहमान आया है। अच्छे खाने की तैयारी है। बाहर एक फोल्डिंग चारपाई पर दो लोग बैठकर बात कर रहे हैं। आत्मन सोच रहे हैं अपना गाँव होता तो वह भी जाकर चारपाई पर बैठकर बात कर लेते। पूछते कि आज क्या-क्या बन रहा है।

एक दइत आ गया है। उसने घर को अपने जबड़े में दबोचना शुरू कर दिया है। सभी लोग बिलबिलाकर बाहर आ गए हैं। माँ, बच्चे-बूढ़े सभी। औरत गोद में बच्चा लिए चीख रही है-'जो करना हो दिन में करना भइया। अभी हम रात को कहाँ जाएंगे'। 'अरे हट, इतने दिन से तो कहा जा रहा है, जहाँ जाना हो वहाँ जाओ'। औरत जल्दी-जल्दी अपना सामान बाहर कर रही है। आदमी और बच्चे भी सामान बाहर कर रहे हैं। स्टोप और अंडा भी बाहर आ गया है। लोग कह रहे हैं जैसी चौड़ी सड़क मोड़ के आगे है वैसी चौड़ी सड़क इधर भी बनेगी। औरत अब मशीन के आगे खड़ी हो गई है, 'रुको-रुको भइया, हमें मार के जाओगे क्या'। दो आदमी पकड़ कर औरत को पीछे खींच रहे हैं, औरत चीख रही है, उसका अंड़ा छितरा गया है, फूट कर पिल-पिल बह रहा है....

आत्मन का मन न जाने कहाँ-कहाँ बवंडर देखता रहता है, जो चीज नहीं भी हो रही होती है, उन्हें दिखने लगता है। उन्हें जब नहीं तब इधर जेसीबी चलती हुई मालूम होती है। वे सोचते रहते हैं वह भूजा वाला कहाँ जाएगा, जिससे वह दाना और सत्तू खरीदते हैं। वह

चाय वाला कहाँ जाएगा। वह प्रेस करने वाला धोबी फिर कहाँ जाएगा। क्या ये सभी और आगे बढ़ जाएंगे, बाहरी तरफ, आउटस्कर्ट में। इन लोगों की नियति ही है, मरते घिसटते हुए जीते रहना। शहर न इन्हें मरने देता है, न जीने। ये न रहें तो उनकी जरूरत न पूरी हो, इसलिए बसाते हैं। फिर जगह की जरूरत होती है तो उजाड़ कर पीछे ठेल देते हैं। उजड़ कर बसना और बस कर फिर उजड़ना, कितना क्रूर मजाक है। आत्मन पोखरे से उठते हैं, यही सब सोचते हुए घर वापस आते हैं, उनका दिमाग भरमता रहता है।

उनके दिमाग में दइत डोलता रहा। भोर में ही नींद खुल गई। वह नीचे उतर आए। चैत के भोर की हल्की सिहरावन हवा चल रही थी। घर के पीछे बाँसों का एक छोटा सा झुरमुट था। वहीं एक जामुन और दो तीन आम के पेड़ थे। सब्जी-भाजी उगाने भर थोड़ी सी जगह थी। बुढ़ऊ खुर्पी हाथ में लिए कुछ करते दिखाई पड़ते थे। पौधों में पानी डालते रहते थे। लोग कहते बस बुढ़ऊ के टपकने की देर है। गए नहीं कि यह जमीन भी बिल्डर के हाथ चली जाएगी। आत्मन सोचते यह हरियाली का द्वीप खत्म हो जाएगा तो चिड़िया कहाँ चहचहायेगी। कोयल की कूक कहाँ से सुनाई देगी, यह झुरझुरी हवा उन्हें कैसे मिलेगी। सोचते-सोचते इतनी अच्छी मुलायम सुरभित हवा के होते हुए भी उनका मन उकठने लगा। वहाँ बैठे-बैठे मन नहीं लगा तो सोचे चलो सूर्योदय देखा जाए।

वह नदी के घर की तरफ बढ़ चले सूर्योदय देखने के लिए। उन्हें पता लगा था कि इस शहर की तीसरी नदी का घर यहीं पास में है। वह सड़क पर सीधे गए तो एक पुलिया के नीचे नदी की पतली सी धारा बहती हुई दिखी। उन्होंने सोचा इसी धारा को पकड़कर नदी के घर चला जाए, लेकिन नदी के पेटे में घुसे हुए इतने मकान बन गए थे कि वह धारा के किनारे-किनारे नहीं चल सकते थे। वे अंदाज से कॉलोनी के रास्ते को पकड़ते हुए उसी दिशा में चलने लगे। बीच में एक दो जगह और सड़क के नीचे पुलिया मिली, जिसके नीचे से नदी की धारा प्रवाहित हो रही थी। खोजते-खोजते अंत में वे एक सड़क से होते हुए नदी के घर पहुँचे।

नदी का घर आज जितना बड़ा था, उसी को देखकर लगता था कि किसी जमाने में कितना बड़ा रहा होगा। नदी के घर को किनारे से घेरते हुए ऊंची-ऊंची चारदीवारी बन गई थी। चारो तरफ मकान खड़े हो गए थे। नदी के घर में पानी एकदम नहीं दिख रहा था, केवल जलकुंभी की पत्तियां दिख रही थीं। चारो तरफ कूड़े के अंबार से अजीब किस्म की बजबजाहट और बदबू आ रही थी। पूरबी आकाश में लाल टीके की तरह सूरज दमक रहा था, लेकिन उसका बिंब देखने के लिए नदी के घर में पानी नहीं था, गंदला भी नहीं।

आत्मन सड़क की उसी पुलिया पर बैठ गए, जिसके नीचे से नदी की पतली सी धारा आगे की ओर बढ़ी थी। वह एकटक नदी के घर को देख रहे थे। नदी को मरते हुए देख रहे थे। उसका दम घुटते हुए देख रहे थे। सोच रहे थे, नदी मर जाएगी तो कैसे गंगा जी के गले भेंटेगी। वह कुछ भी ठीक से सोच नहीं पा रहे थे। बैठ-बैठे सिर्फ अपने बालों को पकड़ कर खींच रहे थे। नदी कह रही थी, आए हो सूरज का बिंब देखने। देख नहीं रहे हो कैसे मेरी छाती को जलकुंभियों ने जकड़ रखा है। कभी मेरे भीतर से लहर उठती थी और मैं उमड़-घुमड़ कर चल पड़ती थी गंगा से मिलने। मेरी धार असि की धार की तरह थी, तीखी तेज। मेरा पानी कल-कल, छल-छल करता हुआ बहता था। मेरे पार्श्व में कर्दमेश्वर महादेव हैं, मेरे रास्ते में मनोकामना मंदिर है। एक समय था जब लोग मेरे पानी से खाना बनाकर खाते थे। और आज ऐसा दिन आ गया कि कोई सूंघता भी नहीं है। कहीं धारा दिखती ही नहीं है। नाला बनाकर छोड़ दिया लोगों ने। समय- समय पर और लोग आते हैं, देखने-ताकने, नाप-जोख करने। पता नहीं कब से चल रहा है तमाशा, मेरे उद्धार का। लेकिन दिनों-दिन मैं सूखती ही जा रही हूँ, सूखती ही जा रही हूँ.... आत्मन सिर पकड़े-पकड़े उठे और वापस लौटने लगे, थथम-थथम कर, धीर-धीरे चलते हुए-

लौट जाओ वत्स
नदी का सूखना है
सभ्यता का सूखना ही
कि जिसके कंगूरे पर खड़े
तुम इठला रहे हो
नींव का पत्थर हुआ रसहीन
निरा पत्थर दरकता चुरमुरा सा
कि सदियों पुरानी सभ्यता

पलुही हमारे ही किनारे
कि हमी ने जीवन दिया
रस से सींचा
अन्न प्राण दिए
मारे गए हम ही तुम्हारी आँधियों में
सूखा रस हमारा
और हम हो रहे निष्प्राण
नहीं कोई धारा

उप महाप्रबन्धक
राजभाषा, गोहाटी
मो.न. - 9957550030

जायस नगर मोर स्थानू

—रामजी प्रसाद "भैरव"—

प्रेमाश्रयी शाखा के सूफ़ी कवि मलिक मुहम्मद जायसी को हिंदी पढ़ा व्यक्ति उसी प्रकार जानता है जैसे सूर, कबीर और तुलसी को। प्रेम की पराकाष्ठा रचने वाले जायसी तन के कुरूप भले थे, मग़र मन के कुरूप कत्तई नहीं। प्रेम पवित्र मन में ही जन्म लेता है। सूफियों के प्रेम तो सीधे ईश्वर से जुड़े होते हैं।

जितने सूफ़ी कवि हुए हैं, उन्होंने लौकिक कथाएं भारत भूमि से लीं, मग़र अलौकिक प्रेम को नहीं भूले। जो सूफ़ी परम्परा में आता है।

जायसी पर बात की जाए उससे पहले सूफ़ी शब्द पर बात करना जरूरी हो जाता है। बात यह कि सूफ़ी सन्तों का आगमन अरब देश से भारत में होता है। वहाँ अरब में ईश्वर के समीप इबादत में संलग्न व्यक्ति को सूफ़ी कहा जाता है। सूफ शब्द का अर्थ ऊन होता है। ये लोग ऊन का सरोपा लिबास धारण करते हैं। वह लिबास यदि चिन्दी चिन्दी भी हो जाय तो भी ये परवाह नहीं करते, इनके लिए ईश्वर की साधना ही महत्वपूर्ण होती है, वस्त्र नहीं। अरब में ईश्वर की साधना में ऐसे लिबास धारियों को अग्र पंक्ति में बैठाया जाता है। यह परम्परा सफ़ शब्द से आती है, जिसका मतलब पंक्ति होता है। जो पहले सफ़ में बैठाए जाते हैं वो सूफ़ी कहलाये। ये ईश्वर के करीब रहने वाले और दार्शनिक होते हैं। इस साधना में चार अवस्थाएं होती हैं। शरीअत, तरीकत, मारिफ़त और हक़ीक़त। इन अवस्थाओं से गुजरने वाला व्यक्ति ही सूफ़ी है। सूफियों की साधना का जोर भी इतना होता है कि वे ईश्वर से अपनी बात मनवाने में सफ़ल होते हैं।

भारत में आये सूफियों ने अपने साथ इबादत के गीत भी लाये।

जिसे हम कव्वाली के रूप जानते हैं, इसका प्रारम्भिक रूप ईश्वर का इबादत ही था। जिसमें प्रेम को महत्व दिया जाता था। कालांतर में क़व्वाली भारत में विकसित रूप में विभिन्न विषयों में आ गयी।

अब हम आते हैं जायसी पर, जिनका पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। जायसी से स्पष्ट है कि कि वे उत्तर प्रदेश के जायस (पूर्व नाम) के रहने वाले थे। उनके नाम में मलिक शब्द उनके पूर्वजों की देन है। कहा जाता है कि उनके पूर्वज जिस देश से आते थे, उस देश में सेनापति या जमींदार के लिए मलिक शब्द का प्रयोग होता था। कितनी पीढ़ियों से उनके

नाम में मलिक शब्द का प्रयोग होता रहा है। यह शोध का विषय हो सकता है। उनका मूल नाम मुहम्मद ही था।

जायसी को हम जिस रचना से जानते हैं, वह पद्मावत है। वैसे तो उनकी अखरावट और आखिरी कलाम भी महत्वपूर्ण रचना है, लेकिन चितौड़ के राजा रत्नसेन और सिंघल द्वीप की राजकुमारी के अद्वितीय प्रेम पर आधारित पद्मावत हिंदी प्रेमियों के सिर चढ़कर बोलता है। सौंदर्य की प्रतिमूर्ति पद्मावती की सुंदरता का बखान हिरामन तोते के मुँह से सुनकर रत्नसेन मोहित हो जाते हैं। उसे पाने के लिए जोगी बनकर सिंहलद्वीप को प्रस्थान करते हैं। इसमें एक महत्वपूर्ण कड़ी है, रानी नागमती जो रत्नसेन के विदेश गमन से दुःखी ही नहीं होती बल्कि वियोग भी झेलती हैं। पद्मावत का यह अंश नागमती वियोग वर्णन के नाम से साहित्य में अद्वितीय रूप में जाना जाता है। जायसी जी ने पद्मावत लिखने में कडवक शैली का प्रयोग किया है, जिसे आगे चलकर गोस्वामी तुलसी दास राम चरित मानस लिखने में प्रयोग करते हैं। जायसी ने पद्मावत लिखने में जिस भाषा को अपनाया है, वह वस्तुतः बोली है। जिसे अवधी के नाम से जाना जाता है। अवधी ने दो महान ग्रन्थ दिए हैं, एक भक्ति परक रचना राम चरित मानस तो दूसरी प्रेम की महागाथा पद्मावत। सूफ़ी कवियों ने प्रायः सभी रचनाओं को अवधी में ही लिखा है, लेकिन लोकप्रियता के मामले में दोनों ग्रन्थों ने बाकी को पीछे छोड़ दिया।

एक बात जेहन में आ रही है, विद्वानों का मत है कि जिस भाषा और शैली का प्रयोग जायसी और तुलसी ने अपनी रचनाओं में किया है, उससे लगभग दो सौ साल पहले मुल्ला दाऊद ने चंदायन में कर दिया था। परंतु चंदायन की भाषा और तुलसी की भाषा में काफी फर्क है। तुलसी तक आते आते अवधी बदल जाती है, अर्थात् देशज और कोमल हो जाती है।

जायसी एक सूफ़ी सन्त कवि होने के साथ साहित्य के बड़े मर्मज्ञ थे। नागमती वियोग वर्णन में उन्होंने बारहमासा का वर्णन करके साहित्य की अद्भुत समझ पेश की। वे ज्योतिष और खगोल भूगोल के अच्छे जानकार थे। नागमती वियोग वर्णन में यह सब देखने को मिलता है।

जायसी के पद्मावत को आम पाठकों तक पहुँचाने का श्रेय हिंदी साहित्य के उद्भट विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी को जाता है। एक संस्मरण सुनाते हुए शुक्ल जी की नवासी डॉ. मुक्ता जो मूलतः कथाकार और कवि भी हैं, ने बताया कि जब बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी पीजी के लिए मान्यता मिली, तो सबसे बड़ा संकट विषय का था। शुक्ल जी इस

बात से चिंतित थे कि आखिर स्नातकोत्तर हिंदी पाठ्यक्रम में क्या-क्या पढ़ाया जाय। वे हिंदी पाठ्यक्रम तैयार करने में लगे थे, इसी बीच उन्हें किसी काम से जायस नगर जाना हुआ। जहाँ एक फ़क़ीर नागमती का विरह वर्णन गाते हुए जा रहा था। आचार्य शुक्ल जी को अच्छा लगा, वह उसके पीछे चल दिए। फ़क़ीर जब गाना बंद किया तो उससे पूछे यह तुम्हें कहाँ से मिला ? फ़क़ीर ने बताया कि एक मौलवी साहब हैं। वही गाना लिखकर देते हैं, मैं उसे याद कर गाता हूँ। चार पैसे कमा भी लेता हूँ। शुक्ल जी ने कहा -"मुझे वहाँ ले चलो।"

वह फ़क़ीर शुक्ल जी को मौलवी के पास ले गया। बातचीत में पता चला कि उसके पास पद्मावत का मूल ग्रन्थ है। शुक्ल जी ने मांगा तो वह साफ इनकार कर दिया। शुक्ल जी अंततः उसे समझाने में सफल रहे, और पांडुलिपि साथ ले आये। उसे अनेक स्थलों पर संशोधन और व्याख्यायित कर पठनीय बनाया। इस प्रकार आचार्य शुक्ल जी के प्रयासों से हिंदी साहित्य का अनुपम ग्रन्थ पद्मावत प्राप्त हुआ।

नागमती का विरह वर्णन हिंदी साहित्य में अद्वितीय है। तभी तो नागमती को रोते देखकर "फिरि फिरि रोव कोई नहिं डोला, आधी रात विहंगम बोला।

नागमती कारण का रोइ, का सोवे जो कन्त विछोई॥

नागमती का उत्तर दुनियाँ के हर उस स्त्री का हो सकता है, जिसका पति उससे बिछड़ गया हो। उसे भला नींद कैसे आ सकती है। जायसी एक जगह कहते हैं-

प्रान पयान होत को राखा, को सुनाव प्रीतम को भाखा॥

यह जो भाखा शब्द है, यह महत्वपूर्ण है। बात यह है अवधी में रचे ग्रन्थों की संख्या अधिक हो सकती है, परन्तु भाखा में जायसी और तुलसी ही नज़र आते हैं। यहाँ भाखा से तात्पर्य है बोल चाल की भाषा। ऐसा लगता है तत्कालीन समाज की बोली भाषा होने के कारण उनकी लोक प्रियता का एक कारण हो सकता है। प्रचलन में आज भी उसी भाखा के शब्द गाँव गिरांव में लोगों के मुँह से सुना जा सकता है। भाषा में देशज शब्दों का होना, एक बात हो सकती है, दूसरी यह कि पूरी की पूरी भाषा देशज ही भाखा है। पद्मावत में एक बात और देखने को मिलती है, वह है फ़ारसी के मसनवी शैली का कहीं कहीं प्रयोग। मसनवी में मुर्दे कब्र से बाहर निकल कर अपना हाल बयान करते हैं। यहाँ भी नागमती के विरह वर्णन करते समय कई जगह मसनवी का प्रभाव दिखता है।

रकत के आँस परै अस टूटी, रेंग चलै जस वीर बहूटी।

एक बात और ध्यान में आ रही है, जायसी और उनके पूर्वर्ती समय का तत्कालीन समाज बार-बार बाहरी और मुस्लिम आक्रांताओं के कारण खिन्न था, आपसी सौहार्द पर

विश्वास नहीं था। मुस्लिमों के प्रति नफ़रत बढ़ती जा रही थी। ऐसी स्थिति में सूफियों ने प्रेम के संदेश से बिखरते समाज को जोड़ा। जायसी से पूर्व चार सूफ़ी कवियों ने भारतीय प्रेम कथाओं पर प्रेमाख्यान लिख कर हिन्दू जनमानस का हृदय जीत लिया। उसमें कुतुबन का नाम पहले नम्बर पर आता है। जायसी पर फ़ारसी शैली का बड़ा प्रभाव था, इसलिए जब वह नागमती विरह वर्णन लिखते हैं, बारहमासा में आषाढ़ महीने से नागमती का विरह शुरू करते हैं, यह बात अज्ञानतावश नहीं आयी है। हिंदी महीने की शुरुआत चैत्र मास से शुरू होता है, यह बात जायसी जी भली प्रकार जानते थे। उन्हें केवल हिंदी महीने के नाम ही नहीं बल्कि ऋतुओं, नक्षत्रों आदि का बेहतर ज्ञान था। बात यह है कि फ़ारसी महीने की शुरुआत आषाढ़ से होता है, इसलिए जायसी फ़ारसी के अपने ऊपर प्रभाव से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाए।

जायसी प्रेम व्यंजना के महारथी हैं। सूफ़ी कवि ब्रह्म को प्रियतमा मानकर, उनके प्रेम में दीवाने बने रहते थे। उनका उद्देश्य इश्क ए मजाजी से इश्क ए हकीकी तक पहुँचना होता था। पद्मावत में जायसी ने जिस रहस्यवाद की कल्पना की उसमें पद्मावती यानि ब्रह्म तक रत्नसेन जीव के पहुँचने में हिरामन तोते की भूमिका बड़ी है। यह तोता ही गुरु है, जो रत्नसेन का पथप्रदर्शक है। जायसी लिखते हैं "गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा।"

पद्मावती का व्यापक सौंदर्य ईश्वरीय स्वरूप का प्रतिरूप है। उसके अनन्त सौंदर्य के आगे विश्व का सौंदर्य तुच्छ है।

"सरवर तीर पद्मिनी आई, खोपा छोरि केस मोकराई।

ससि मुख अंग मलै गिरी रानी, नागहि झाँपि लिह अरगानी॥

लोक परलोक की व्याख्या करते हुए जायसी में सांकेतिक शैली का सहारा लिया है।

"ए रानी मनु देख विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥"

जायसी का पद्मावत ऐतिहासिकता और चरित प्रधान काव्य का मिला जुला रूप है। जायसी का ध्यान काव्य रचना पर अधिक था, इसी कारण ऐतिहासिक तथ्यों पर कम ध्यान दिया। विद्वानों का मानना है पद्मावत के उत्तरार्ध में इतिहास सम्मत पक्ष देखने को मिलता है।

ग्राम पोस्ट- खण्डवारी, चहनिया,
जिला- चन्दौली

स्वच्छता और स्वास्थ्य : हमारी जिम्मेदारी

—दीपंकर त्रिपाठी—

भारत में स्वच्छता की बात प्राचीन काल से होती रही है, लेकिन अभी भी देश की एक बड़ी आबादी गंदगी के बीच अपना जीवन बिताने और खुले में शौच करने को मजबूर है। इसी तरह देश के एक बड़े जन-समुदाय को पीने योग्य स्वच्छ पानी भी उपलब्ध नहीं है। देश में साफ-सफाई की कमी एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि इससे गंभीर बीमारियां फैलती हैं और इसका दुष्प्रभाव सबसे ज्यादा बच्चों पर पड़ता है।

भारत के बड़े महानगरों में प्रदूषण का स्तर बहुत अधिक पाया गया है। ऐसे कार्बन यौगिक जिनका पर्यावरण में अपक्षय (क्षरण) नहीं होता है, मानव स्वास्थ्य पर बहुत खराब असर डालते हैं। इनकी वजह से हृदय रोग, कैंसर, मोटापा और मधुमेह जैसी बीमारियां होती हैं।

अगर हम ध्यानपूर्वक ईमानदारी से सोचें तो पाएँगे कि हमारे देश में यहाँ-वहाँ फैली हुई गंदगी के लिए एक हद तक हम खुद जिम्मेदार हैं, किन्तु सफाई के लिए दूसरी एजेंसियों को कोसते रहते हैं। जिन देशों में पर्याप्त मात्रा में सफाई रहती है वहाँ यह पाया गया है कि वहाँ के लोग सहज भाव से सफाई के लिए चिंतित रहते हैं। कचरे को कूड़ेदान में ही डालते हैं। हमारे यहाँ हालत यह होती है कि कचरा कूड़ेदान में कम किन्तु उसके आसपास अधिक बिखरा रहता है। कूड़ेदान लबालब भर जाते हैं, मगर उसे उठाकर ले जाने वाला कोई नहीं होता। लगभग हर शहर की यही तस्वीर है। लोग अपने घरों का कचरा निकालकर इधर-उधर फेंक देते हैं। अनेक शहरों में नगर निगम या पालिकाएं कचरा साफ करती हैं, मगर सफाई का ठेका जिन लोगों को दिया जाता है, वे ईमानदारी से अपना काम नहीं करते। यह एक सामाजिक अपराध है। सबसे बड़ी बात यह है कि अभी हमारे समाज में वह जागरूकता कम नजर आती है, जैसी विदेशों में देखी जाती है। हर जगह फैले कचरे को देख कर लगता है कि अपना देश एक बहुत बडा डस्टबिन हो गया है। जिसकी जहां मर्जी आए, कचरा फेंक कर आगे बढ़ जाता है। लोग चलती कार से कचरा बाहर कहीं भी फेक देते हैं। रेल हो, बस हो या कोई भी सार्वजनिक स्थान, भारत के अधिकांश लोग गंदगी करते हुए इस अपराधबोध से ग्रस्त नहीं होते कि हम गलत कर रहे हैं। लोगों में अपराधबोध जगाना होगा। यह तभी संभव है जब बच्चों को हम स्कूल से ही सफाई के पाठ पढ़ाएं, उनको सफाई का महत्व बताएं।

उनसे कविता-कहानी, निबंध लिखवाएं, भाषण करवाएं। सफाई को जब तक एक राष्ट्रीय मुद्दा नहीं बनाया जाएगा, हम लोग इसी तरह गंदगी में सांस ले कर बीमार होते रहेंगे।

अगर हम एशिया महाद्वीप के देशों जैसे चीन, जापान इत्यादि को देखें तो पायेंगे कि वहाँ सड़कों पर कहीं गंदगी नजर नहीं आती। हमारी तरह ही लोग वहां भी हैं, मगर उनको समय की पाबंदी और सड़क पर चलने का अनुशासन ज्यादा है। सफाई का महत्व भी समझते हैं। तभी वह देश आज विश्व की महाशक्ति बन सके हैं। हमारे यहाँ जो लोग कहते हैं कि स्वच्छता रखो, वही गंदगी फैलाते मिल जाते हैं। कथनी-करनी के अंतर ने इस देश को गंदगी से भर दिया है। दुख की बात है कि हमारे देश की नालियाँ डस्टबिन में तब्दील हो गई हैं। जिसका जब मन होता है, अपना कचरा नाली में फेककर निश्चिंत हो जाता है, ऐसा इसलिए होता है कि हम अभी तक एक जिम्मेदार नागरिक नहीं बन सके हैं।

कहावत प्रसिद्ध है कि 'प्रभु भक्ति के बाद दूसरा स्थान सफाई का है।' इसी कारण सभी धार्मिक स्थलों में बहुत सफाई रखी जाती है। सिख पंथ में तो जब किसी से मर्यादा का उल्लंघन हो जाए तो उसे क्षमादान देने से पहले बर्तन व अन्य प्रकार की सफाई करने की ड्यूटी लगाई जाती है। सफाई का इतना ऊँचा स्थान होने के बावजूद हमारे देश में हर जगह गंदगी का बोलबाला है।

यह बहुत अच्छी बात है कि मौजूदा समय में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जन्मदिवस 2 अक्टूबर पर देश को गंदगी मुक्त करने का अभियान आरंभ किया गया है। चूंकि स्वच्छ भारत का सपना गांधीजी ने ही संजोया था। इससे भी बड़ी खुशी यह है कि सरकारी और सार्वजनिक स्तर पर भी इस अभियान को काफी अच्छा समर्थन मिला है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने महात्मा गांधी का वास्ता देकर देशवासियों से स्वच्छता अभियान से जुड़ने की अपील की है। स्वच्छ भारत बनेगा तो दुनिया के लोग बार-बार भारत आना चाहेंगे। स्वच्छता से देश की एक अच्छी छवि भी बनती है जिससे पर्यटन बढ़ता है। हम यह तर्क नहीं दे सकते कि एक सौ चालीस करोड़ की आबादी है, ऐसे में साफ सफाई कैसे संभव होगी।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने स्वच्छ भारत को एक जन-आंदोलन बनाने और इसे आर्थिक गतिविधियों से जोड़ने का भी आह्वान किया। प्रधानमंत्री ने कहा है कि हर नागरिक स्वच्छता के लिए एक साल में 100 घंटे का योगदान करने की शपथ लें। वे चाहते हैं कि सभी सरकारी विभाग इस अभियान में सक्रिय रूप से भाग लें। प्रधानमंत्री की अपील को देखते हुए अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रतिष्ठान अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के अंतर्गत स्वच्छ भारत अभियान में योगदान दे रहे हैं। प्रधानमंत्री ने सफाई के प्रति प्रशासन के दृष्टिकोण

में परिवर्तन लाए जाने का आह्वान किया है। उन्होंने कहा कि स्वच्छता के अनुसरण से आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि होगी जिससे सकल घरेलू उत्पाद के विकास में योगदान मिलेगा, स्वास्थ्य देखभाल की लागत में कमी आएगी और रोजगार के साधन बढ़ेगे। स्वच्छता को पर्यटन और भारत में वैश्विक हितों से जोड़ते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत के 50 शीर्ष पर्यटन स्थलों की सफाई और स्वच्छता को विश्व स्तर पर लाए जाने की आवश्यकता है, ताकि भारत के बारे में वैश्विक धारणा में बदलाव लाया जा सके। प्रधानमंत्री ने पूरे देश के 500 शहरों और कस्बों में जन-निजी भागीदारी के माध्यम से ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और अपशिष्ट जल प्रबंधन के अपने दृष्टिकोण को दोहराया है।

साफ-सफाई का महत्व और फायदे - साफ सफाई का सीधा संबंध मानव-स्वास्थ्य से और संक्रामक बीमारियों से है। सफाई व्यवस्था का कुछ इस प्रकार से ध्यान देकर हम स्वस्थ रह सकते है।

सफाई व्यवस्था में सुधार - प्रत्येक घर में शौचालय होने के साथ, शौचालय से निकलने वाली गंदगी का भी ठीक प्रकार से प्रबंधन होना चाहिए। इसके लिए सीवेज टैंक आवश्यक है। समय-समय पर शौचालय की सफाई होनी चाहिए।

स्वस्थ शरीर व मन - वो लोग जिनके नाखून गंदे होते हैं, शरीर से दुर्गंध आती है या मुंह से बदबू आती है, उनसे लोग बात करना भी नहीं पसंद करते। साफ सफाई से सिर्फ व्यक्ति की सेहत ही नहीं, बल्कि इससे व्यक्ति का आत्मविश्वास भी विकसित होता है।

आहार में साफ सफाई - फलों और सब्जियों को अच्छी तरह से धोकर ही खाना चाहिए। रसोईघर में खाने के बर्तनों को खुला नहीं रखना चाहिए, अन्यथा मक्खी-मच्छर खाने की चीज़ों पर बैठ सकते हैं। खाने पीने की चीज़ों को डिब्बे में बंद करके रखना चाहिए। खाना खाने और खाना बनाने से पहले हाथ ज़रूर धोने चाहिए।

स्वच्छ वातावरण - व्यक्ति व समूह के स्वास्थ्य के लिए वातावरण की साफ सफाई बेहद आवश्यक है। ऐसी जगह, जहां गंदगी फैली होती है वहां बीमारियों के फैलने की सम्भावना भी अधिक होती है। वे बच्चे जो सफाई से नहीं रहते, अधिक बीमार पड़ते हैं।

वैज्ञानिकों ने एक बहुत ही प्रशंसनीय शोध किया है कि गंदगी के कुछ भाग से बिजली और उर्वरक तैयार किया जा सकता है। यदि जगह-जगह ऐसे कारखाने लग जाएं तो काफी राहत मिल सकती है। इसके साथ आमदनी भी बढ़ेगी। सरकार और उद्योगपति इस क्षेत्र में निवेश कर सकते हैं। अब जब यह अभियान अखिल भारतीय स्तर पर आरंभ किया गया है, तो ऐसे शोध का लाभ उठाने की उम्मीद की जा सकती है।

अक्सर देखा जाता है कि गांवों में लोग शौचालय होते हुए भी खुले में शौच करना पसंद करते हैं। ऐसे में सबसे बड़ी चुनौती ग्रामीण लोगों के व्यवहार में बदलाव लाने की है। ग्रामीणों को शौचालय के इस्तेमाल के फायदों को बताकर ही उनका व्यवहार बदला जा सकता है। इसके लिए अंतर्वैयक्तिक संचार पर फ़ोकस किया जाना चाहिए। छात्रों, आशा कार्यकर्ताओं, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं, डाक्टरों, अध्यापकों और ब्लॉक समन्वयकों के जरिए यह कार्य किया जा सकता है। घर-घर जाकर लोगों को इस बारे में जागरुक किया जा सकता है। टी.वी. रेडियो, डिजिटल मीडिया, सिनेमा, कठपुतली नाच और स्थानीय लोकनाटकों और लोकनृत्यों के जरिए भी लोगों को शौचालयों के इस्तेमाल के बारे में जागरूक करने की योजना बनायी जा सकती है ताकि लोगों की सोच को बदला जा सके। इसके साथ ही जैविक शौचालयों के प्रयोग भी बढ़ना चाहिए। जैविक शौचालय पर्यावरण के अनुकूल होते हैं। ये खास किस्म के शौचालय गंध-रहित तो हैं ही, साथ ही पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित हैं। जैविक-शौचालय ऐसे सूक्ष्म कीटाणुओं को सक्रिय करते हैं जो मल इत्यादि को सड़ने में मदद करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ खास आदतों को अपने दैनिक जीवन में शामिल कर के हम अपनी व्यक्तिगत साफ-सफाई का ध्यान रख सकते हैं।

अगर हम अपने घर और आसपास के वातावरण में साफ-सफाई रखेंगे तो मच्छर और अन्य कीटाणु आसपास इकट्ठा नहीं होंगे। अगर ग्राउंड वाटर का प्रयोग किया जाना है, तो पानी की पाइपलाइन ऐसे स्तर पर लगवायी जाए जहां साफ पानी हो। हमें कहीं भी खुले में पानी इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए अन्यथा डेंगू, चिकनगुनिया इत्यादि बीमारियों के कीटाणु पैदा हो जाते हैं।

हस्त प्रक्षालन - सफाई की बात करें, तो सबसे ज्यादा हाथों की सफाई आवश्यक है क्योंकि दिनभर में हमारे हाथ सबसे ज्यादा कीटाणुओं के संपर्क में आते है। ऐसा हो सकता है कि हम स्वयं बीमार न पड़ें पर अपने गंदे हाथों से दूसरों को छूकर उन्हें बीमार कर सकते हैं, क्योंकि सबकी रोग प्रतिरक्षा प्रणाली एक बराबर नहीं होती। खाना खाने से पहले और शौचालय प्रयोग के बाद हाथ ज़रूर धुलें।

रोज़ नहाना - रोज़ नहाना सिर्फ एक अच्छी आदत ही नहीं है बल्कि इससे शरीर की दुर्गंध भी खत्म होती है और आपके शरीर में मौजूद कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। अतः रोज़ साबुन से नहाना चाहिए।

नाखूनों की सफाई - हाथों की सफाई के साथ-साथ नाखूनों की सफाई भी बेहद जरूरी है क्योंकि नाखूनों में बहुत से कीटाणु छिपे होते हैं। हफ्ते में एक बार नाखून जरूर काटें। जब-जब हाथ धुलें नाखूनों को भी साफ करें।

बालों को समय-समय पर कटवाऐं - अगर आपके बाल लंबे हैं तो हफ्ते में कम से कम दो बार बालों को शैंपू से साफ करें। छोटे बाल रखने हैं, तो समय समय पर बाल कटवाते रहें, इससे आपको बालों की सफाई रखने में भी परेशानी नहीं होगी।

शेविंग - पुरूषों को नियमित रूप से शेविंग कर लेनी चाहिए। यह आपके लुक्स को बेहतर बनाने के साथ-साथ आपकी सफाई के लिए भी जरूरी है।

वरिष्ठ सहायक, कुलपति कार्यालय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415600692

तीर्थाटन और पर्यटन में अंतर

—हृदयनारायण दीक्षित—

भारतीय संस्कृति उत्सवधर्मा है। यहाँ बारहों महीने उत्सव चलते हैं। 6 ऋतुएं हैं। प्रत्येक ऋतु के अपने उत्सव हैं। वर्षा और बसंत प्रकृति प्रायोजित उत्सव हैं। शिशिर और हेमंत का क्या कहना। होली सनातन उल्लास है। व्यक्ति की तरह समाज और राष्ट्र की भी ऊर्जा होती है। जैसे मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयास करते हैं, वैसे ही समाज और राष्ट्र को स्वस्थ रखने के प्रयास जरूरी हैं और यह प्रयास संस्कृतिधर्मा लोगों द्वारा किया जाता रहता है। उत्स का अर्थ होता है मूल। उत्सव का अर्थ है देश के मूल से जुड़ी सामाजिक सक्रियता।

संस्कृति मनुष्य की रचना है। संस्कृति का निर्माण सतत प्रवाही प्रक्रिया है। भारत के मन की संस्कारमय संस्कृति प्राचीन ज्ञान परंपरा में निहित है। भारत की संस्कृति का जन्म और विकास ज्ञान व दर्शन की परंपरा से हुआ है। भारतीय दर्शन में बुद्ध और जैन को मिलाकर आठ दार्शनिक धाराएं हैं। भारत के राष्ट्रजीवन को सभी धाराओं ने प्रभावित किया है। कपिल का सांख्य दर्शन अनिश्वरवादी माना जाता है। बुद्ध व जैन दर्शन भी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। अद्वैत वेदांत का प्रभाव काफी बड़ा है। अद्वैत की धारा शंकराचार्य के पहले से थी, लेकिन शंकराचार्य ने उपनिषदों, गीता और ब्रह्मसूत्र के तत्वों के आधार पर ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या कहा है। वे घर बैठ तर्क का आनंद उठाने वाले कार्यकर्ता नहीं थे।

शंकराचार्य ने देश की एकता को देखते हुए चार धामों की घोषणा की। उन्होंने उत्तर में ऊँचे पहाड़ों पर बद्रीनाथ धाम की स्थापना की और पश्चिम में द्वारका की। पूरब में जगन्नाथ पुरी की और दक्षिण में रामेश्वरम की। चारों स्थान पहले बहुत प्रतिष्ठित नहीं थे, लेकिन शंकर की घोषणा के बाद वे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हो गए।

भारत का मन उत्सवी है। भारतीयों की रुचि पर्यटन के बजाय तीर्थाटन में रही है। पर्यटन और तीर्थाटन में मूलभूत अंतर है। पर्यटन में अच्छा खाना, अच्छे होटल और अच्छी सुख सुविधाएं जरूरी होती हैं, लेकिन तीर्थाटन में इन कारकों की महत्वपूर्ण आवश्यकता नहीं होती। तीर्थाटन में प्रायः किसी ऐसी जगह पर जाते हैं, जहाँ नदियाँ आपस में मिलती हैं। जहाँ प्रकृति खिलती है, जहाँ किसी न किसी देवता के दर्शन की अभिलाषा रहती है। प्रयागराज इसका जीवंत उदाहरण है। ऋषिकेश की गगनचुम्भी पहाड़ियों के दरश-परश से मन संगीतमय हो जाता है। ऋग्वेद में नदियों से पर उतरने के लिए उथले स्थल को तीर्थ बताया गया है।

जहाँ से हम आसानी से नदी पार कर सकते हैं। उपासना परंपरा में किसी देवता के नाम से चले आ रहे पुण्य स्थान तीर्थ कहलाते हैं। कुंभ (प्रयागराज) में सारी दुनिया के लोग आते हैं। करोड़ों लोगों का यह एकत्रीकरण गंगा, जमुना व सरस्वती का संगम बनता है।

प्रयागराज दुनिया का आकर्षण है। ऐसे ही हरिद्वार, रामेश्वरम, तिरुपति, कांचीपुरम आदि अनेक स्थलों पर तीर्थ यात्री भूखे प्यासे चले जाते हैं। अयोध्या, मथुरा, काशी ऐतिहासिक तीर्थ हैं। काशी में शिव दर्शन के लिए लाखों लोग आते हैं। वैसे भारतीय दर्शन में तीर्थाटन की तुलना में दर्शन को ज्यादा श्रेष्ठ बताया गया है। शंकराचार्य ने एकमात्र ब्रह्म की सत्ता को सत्य मानते हुए कर्मकांड को भी उचित बताया है। उन्होंने काशी के प्रवास में अपना दर्शन सबको बताया था। ब्रह्म को एकमात्र सत्य और संसार को मिथ्या बताने वाले आचार्य शंकर के दर्शन ने परवर्ती संतों का ध्यान भी आकर्षित किया था। शंकराचार्य जगत् को मिथ्या बताते थे।

भारत स्वयं में एक तीर्थ है। सारी दुनिया को परिवार बताने वाला यह राष्ट्र शंकराचार्य जैसे दार्शनिकों की जन्मस्थली और कर्मस्थली है। आवागमन के साधन बढ़े हैं। शंकराचार्य के समय न साइकिल थी न रेल। आश्चर्य है कि आचार्य ने कैसे भारत भ्रमण किया होगा? अब आवागमन के द्रुतगामी साधन बढ़े हैं। हजारों किलोमीटर की दूरी अल्प समय में तय की जा सकती है। आधुनिक सभ्यता के दबाव में देश के लोगों का एक वर्ग तनाव में रहता है। वह तीर्थाटन का मजा नहीं लेता। पर्यटन को महत्व देता है। पर्यटन से मानसिक शांति नहीं मिलती। तीर्थाटन से लौटे परिवार आनंद से भरे पूरे दिखाई पड़ते हैं। भारत राष्ट्रजीवन के सभी क्षेत्रों में आत्मविश्वास से भरा पूरा है। पर्यटन उद्योग बन गया है। पर्यटन की दृष्टि से महात्मा गांधी के जन्म और कर्म स्थान साबरमती जाना अपने आप में जीवंत अनुभव है। सरदार पटेल की प्रतिमा केवड़िया, गुजरात में दर्शनीय है। डॉक्टर आम्बेडकर के दिल्ली सहित कई स्थानों पर बने स्मारक दर्शनीय हैं। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में राष्ट्रीय प्रेरणास्थल भी दर्शनीय है।

यज्ञ में काफी धन लगता था। इसलिए पुण्य प्राप्त करने के लिए यज्ञ का विकल्प तीर्थ यात्रा बताया गया है। महाभारत वन पर्व के 42वें अध्याय में यज्ञ के विकल्प की चर्चा की गई है। पुलस्त्य भीष्म से कहते हैं कि, "ऋषियों के अनुसार यज्ञ करने से इस लोक और परलोक में फल मिलता है। परंतु गरीब मनुष्य यज्ञों का अनुष्ठान नहीं कर सकते। उनके पास साधन नहीं होते। इसलिए जो साधनहीन हैं, वे तीर्थ यात्रा कर सकते हैं। तीर्थ यात्रा को यज्ञ

के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, "मनुष्य तीर्थ यात्रा से जो फल पाता है वह बड़े से बड़े यज्ञों से नहीं मिलता।"

महाभारत के रचनाकाल में ज्यादातर तीर्थ कुरुक्षेत्र के आसपास थे। पुष्कर तीर्थ का महत्व बताते हुए कहते हैं, "पुष्कर में दस सहस्त्र कोटि तीर्थों का निवास रहता है।" यहाँ पुष्कर तीर्थ का महत्व बताने कि लिए दस खरब तीर्थों की उपस्थिति बताई गई है। बताते हैं कि पुष्कर में ब्रह्मा जी नित्य निवास करते हैं। यहाँ स्नान करने से अश्वमेघ यज्ञ का दस गुना फल मिलता है। पुष्कर तीर्थ ब्रह्मा से जुड़ा हुआ है।

महाकाल (उज्जैन) में शिव के दर्शन से हजार गोदान का फल मिलता है। ऐसी बहुत सी नदियां हैं, जिनमें स्नान करने से यज्ञ के फल मिलते हैं। नर्मदा सहित अनेक नदियों में स्नान से यज्ञों के फल मिलते हैं। महाभारत के रचनाकाल में सरस्वती पर्याप्त जल से भरी हुई दिखाई पड़ती हैं। ये बाद में सूखीं। सिंधु और सागर के मिलन स्थल पर स्नान करने से वरुण लोक मिलता है। सरस्वती ऋग्वेद के ऋषियों की प्रिय नदीतमा हैं। पुलस्त्य कहते हैं कि वायु द्वारा उड़ा कर लाई गई कुरुक्षेत्र की धूल से मनुष्य को परम गति मिल जाती है। जो यहाँ नहीं रहते कुरुक्षेत्र जाने की इच्छा करें। तीर्थ की प्रशंसा मजेदार है। बताते हैं भूमंडल के निवासियों के लिए नैमिष, अंतरिक्ष निवासियों के लिए पुष्कर और तीनों लोकों के निवासियों के लिए कुरुक्षेत्र तीर्थ है।

देवी उपासना भारत में वैदिक काल से स्पष्ट दिखाई देती है। ऋग्वेद में जल माताएं हैं। वन देवी हैं। उत्तर प्रदेश का विंध्याचल देवी उपासना का महत्वपूर्ण केन्द्र है। मध्य प्रदेश का दतिया और असम के गुवाहाटी में कामाख्या देवी के दर्शनार्थ पूरे देश से श्रद्धालु आते हैं। तीर्थाटन से मिलने वाले लाभ व हानि पर आग्रही बहस चलना जरूरी नहीं है। मुख्य बात है देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भारत भक्तों का आवागमन। शंकराचार्य ने इसीलिए चारों धामों की स्थापना की थी। प्रत्येक तीर्थ के साथ अविश्वसनीय कथाएं चलती हैं। इन्हें बड़े सरल ढंग से अंधविश्वास कहा जा सकता है। लेकिन पर्यटन का विकल्प तीर्थाटन ही है।

पूर्व विधानसभा अध्यक्ष
विधायक निवास, लखनऊ

सफर लम्बा है

—प्रो. बाबूराम त्रिपाठी—

वैसे तो हर यात्रा का अपना एक सुख होता है, पर यदि कोई यात्रा किसी सुखद उद्देश्य को लेकर की जाती है, तो उसका आनन्द ही कुछ और होता है। तैयारी से लेकर गन्तव्य पर पहुँचने तक उत्साह ठंडा नहीं होता, मन खिला-खिला रहता है। लेकिन मेरे साथ कुछ उल्टा ही हुआ। गीता से मिलने की योजना मैंने बड़ी खुशी-खुशी बनायी, पर उसे व्यावहारिक रूप देने में अनेक अड़चनें आयीं। उनसे जब किसी तरह निजात मिली, तो जिस दिन शाम को निकलना था, उसी दिन सुबह एक रिश्तेदार महोदय अपने बेटे का इलाज करवाने के लिए आ धमके। दौड़-धूप करके किसी तरह उनके बच्चे को डॉक्टर को दिखाया और उन दोनों की अपने यहाँ रहने की व्यवस्था करके घर से दो घण्टे पहले इस आशंका से निकल गया कि कहीं कोई और न व्यवधान आ जाय। परिणाम यह हुआ कि दो घण्टे वे और दो घण्टे विलम्ब से ट्रेन का आना, लगभग चार घण्टे प्लेटफार्म पर काटना दूभर हो गया।

ट्रेन आयी और जब मैं अपनी बर्थ के पास गया, तो वहाँ का कुछ और ही नजारा देखा। एक स्थूलकाय सम्भ्रान्त महिला बर्थ पर पसरी पत्रिका के पन्ने उलट-पलट रही थी। मैंने बड़ी विनम्रता से कहा—''आण्टी जी, थोड़ा-सा खिसक जातीं, तो मैं भी बैठ लेता?''

''कहाँ तक जाना है?'' बिना मेरी ओर देखे उन्होंने पूछा।

''जहाँ तक ट्रेन जायेगी।''

''तब आगे बढ़ जाओ, मैं तो समझ रही थी कि अगले या उसके बाद के स्टेशन पर उतर जाओगे।''

''आण्टी जी, यह बर्थ मेरी है, आप की बर्थ कहीं और होगी।''

''नशा-वशा तो नहीं किये हो? मेरा बेटा आकर मुझे बैठा गया और तुम कह रहे हो कि यह बर्थ मेरी नहीं है?''

''आप अपना टिकट फिर से देख लें, गलती हो सकती है।''

''टिकट देखने की मुझे नहीं, तुम्हें आवश्यकता है।''

इसी बीच कंडक्टर आ गया। उसे जब मैंने अपना टिकट दिखाया, तो उसने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा—''मैं जानता हूँ कि इनकी ऊपर वाली बर्थ है, पर क्या

करूँ, इनके लड़के मेरे विभाग में अफसर जो हैं। उन्होंने मेरे संज्ञान में डालकर इन्हें यहाँ बैठाया है, आप इनकी बर्थ पर चले जाइये, प्लीज।''

''लेकिन वहाँ भी तो एक सज्जन विराजमान हैं।'' मैंने शिकायती लहजे में कहा।

इतना सुनते ही उसकी विवशता आवेश में बदल गयी न! ''उसे अभी मैं देखता हूँ'' कहकर उसने बड़ी बेरहमी से उस आदमी को खींचकर नीचे उतारा।

लगभग चौदह घण्टे की झेलाऊँ यात्रा ने मुझे त्रस्त कर दिया। आण्टी जी के खर्राटों के चलते मुझे रातभर जागना पड़ा। किसी तरह ट्रेन गन्तव्य पर पहुँची। मैंने प्लेटफार्म पर हाथ-मुँह धोकर एक कप चाय ली, फिर गीता के ऑफिस के लिए ऑटो किया और लगभग पच्चीस मिनट में वहाँ पहुँच गया।

''मैडम हैं?'' चपरासी से पूछा।

''हैं तो, क्या काम है?''

''उनसे मिलना है।''

''ठीक है, अन्दर जाइये और उनके पी.ए. जगदीश बाबू से मिलने का समय ले लीजिए। वैसे आज उनसे मिलने की कम ही उम्मीद है, बहुत व्यस्त हैं, परसों मीटिंग जो है, उसी की तैयारी में लगी हुई हैं।''

जगदीश बाबू के पास गया, तो वह मुझे ऊपर से नीचे तक ऐसे घूर-घूरकर देखने लगा, जैसे मैं कोई मनुष्येतर प्राणी होऊँ। बड़े उपेक्षात्मक स्वर में उसने पूछा—''कहिये जनाब, क्या खिदमत करूँ?''

''मैडम से मिलवा दीजिए, बस इतनी कृपा काफी है।''

''मिलने का समय लिया है?''

''अभी-अभी तो आ रहा हूँ, समय कब ले लेता?''

''देखने से तो पढ़े-लिखे लग रहे हैं, पर बात गँवारों जैसी करते हैं। महोदय, किसी अधिकारी से मिलने के लिए पहले उससे समय लिया जाता है और यह जरूरी नहीं कि समय तुरन्त मिल ही जाय। जाइये बाहर बेंच पर बैठिये, थोड़ी देर बाद सूचित कर दिया जायेगा कि आपको कब का समय मिला।''

''लेकिन मैं लोकल नहीं, बाहर से आया हूँ।''

''लोकल हों या बाहरी, समय मिलने पर ही आप उनसे मिल पायेंगे।''

''जगदीश बाबू, आप अन्यथा न लें तो एक बात कहूँ?''

इसके बाद तो उसका चेहरा देखने लायक था न! उसने चश्मे को उतार कर मेज पर रख दिया और गुस्से में पूछा—''हाँ, बोलिए, पहले आपको सुन लूँ, फिर और कुछ करूँ।''

''आप यदि मैडम से इतना कह दें कि 'अनुज शर्मा आये हैं', तो सम्भवतः मुझसे मिलने के लिए वे स्वयं बाहर आ जायँ।''

''अच्छा, तो आप इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि आपका नाम सुनते ही वे बाहर आकर आपकी आरती उतारने लगेंगी? कान खोलकर सुन लीजिए, आप जैसे न जाने कितने लोग आते हैं और हम उन्हें बाहर से ही विदा कर देते हैं। अब आप मेरा दिमाग न चाटकर चुपचाप बाहर जाइये और समय मिलने का इन्तजार कीजिए।'' इतना कहकर वह अपने काम में लग गया।

मैं बाहर आया और मन ही मन उसे कोसने लगा। लगभग दो घण्टे इन्तजार करने के बाद जब ऊब गया, तो गेट के बाहर जाकर चाय-पान में आधा घण्टा बिताया। वहाँ से जैसे ही अन्दर आया, चपरासी ने सूचना दी—''सर, आपको कल लंच के बाद यानी दो बजे का समय मिला है।'' इतना सुनते ही मैं तिलमिला उठा। पी.ए. के उस बच्चे के पास आया और हड़काते हुए बोला—''सुनो, यहाँ जो आते हैं, जरूरी नहीं कि उनकी कुर्सी तुम्हारे अधिकारी की कुर्सी से छोटी ही हो। अभी तक मैं यह सोचकर विनम्रता से पेश आ रहा था कि हर ऑफिस के अपने तौर-तरीके होते हैं, उनमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, पर तुमने तो हद कर दी, मानवता को भी उठाकर ताक पर रख दी। जाओ और उनसे मेरा नाम लेकर बोलो कि मैं अभी और इसी वक्त उनसे मिलना चाहता हूँ।''

इतना सुनते ही पूरा ऑफिस सकते में आ गया। बड़े बाबू स्वयं आकर अनुरोधात्मक स्वर में बोले—''सर, आप चलिये मेरे साथ, यह नासमझ है। इसके रूक्ष व्यवहार के चलते यहाँ आये दिन बवाल होते हैं। मैडम से कुछ मत कहियेगा, नहीं तो वे इसकी खटिया खड़ी कर देंगी।''

गीता मुझे देखते ही आश्चर्य में पड़ गयी—''आप और यहाँ? मैं सपना तो नहीं देख रही हूँ?''

''मेरी इस अप्रत्याशित उपस्थिति से आपका आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक है। वस्तुतः आपको देखे हुए एक मुद्दत हो गयी थी। आपसे मिलने की ललक ने मुझे काफी उद्वेलित कर रखा था, पर जब भी यहाँ आने का कार्यक्रम बनाता था, तो कोई न कोई व्यवधान आ खड़ा होता। अच्छा, छोड़िये इन बातों को, नौकरी तो ठीक से चल रही है न?''

''अनुज जी, इस नौकरी में बड़ा तनाव है । कभी पब्लिक का दबाव, तो कभी अधिकारियों का प्रेसर । और आप तो जानते ही हैं कि प्रेसर में मैं कोई काम नहीं करती । और तो और, यहाँ नेतागिरी बहुत है । जब भी कोई व्यक्ति किसी काम के लिए आता है, तो वह अपने को किसी न किसी नेता का आदमी जरूर बताता है । शुरू-शुरू में तो दिक्कत जरूर हुई, पर जब मैंने यहाँ की नब्ज पहचान ली, तो अपने ऑफिस को यह निर्देश दिया कि ऐसे लोगों को बाहर से ही टरका दिया जाय ।''

''आप ठीक कह रही हैं, इस दृष्टि से तो सच में आपका ऑफिस बेजोड़ है ।'' मैंने कुछ व्यंग्य के लहजे में कहा ।

''लगता है, आपके साथ भी कुछ न कुछ उपेक्षात्मक व्यवहार हुआ है?''

''नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है । मेरे साथ तो लोग बड़ी भलमंसाहत से पेश आये हैं ।'' मैंने तुरन्त सँभाल लिया क्योंकि अन्दर आने के पहले बड़े बाबू ने अनुरोध जो कर दिया था—'मैडम से कुछ मत कहियेगा ।'

''माताजी तो ठीक है न?''

''वे अब इस दुनिया में नहीं हैं । अच्छी-खासी चल रही थीं कि एक दिन खा-पीकर सोईं, तो फिर उठी ही नहीं । डॉक्टर ने मृत्यु का कारण हृदयगति का रुक जाना बताया ।''

''मौत को तो कोई न कोई बहाना चाहिए ही । मेरे ख्याल से वे अस्सी के ऊपर रही होंगी?''

''आपका अनुमान सही है, तिरासी के लगभग थीं ।''

''फिर तो कोई बात नहीं, उनकी बन गयी ।''

''अरे, मैंने तो आपको चाय-पानी के लिए भी नहीं पूछा'' कहकर उसने मेज पर रखी कालबेल को दबाया । चपरासी आया और उसे दो गिलास पानी और कॉफी लाने का आदेश देकर पुन: वह मेरी ओर मुखातिब हुई—''किसी विशेष काम से आये हैं कि यों ही घूमने-फिरने?''

''गीता जी, आज की इस भाग-दौड़ की जिन्दगी में किसके पास इतनी फुर्सत है कि बिना किसी प्रयोजन के कहीं आये-जाये ।''

''मैंने इसलिए पूछा कि गर्मी के मौसम में यहाँ दूर-दूर से लोग घूमने आते हैं । शहर तो खूबसूरत है ही । अच्छा, काम की बात सुबह नाश्ते पर होगी । कल छुट्टी भी तो है । आइए पहले कॉफी पीते हैं, फिर ड्राइवर आपको गेस्ट हाउस छोड़ आयेगा । और हाँ, आज रात का भोजन आप मेरे साथ और मेरे आवास पर करेंगे ।''

उस समय गीता की आत्मीयता ने मेरे मन को जीत लिया। सोचने लगा, 'लगता है, मेरी माँ द्वारा अपने पिताजी के साथ किये गये दुर्व्यवहार को अब यह भूल चुकी है।'

रात के लगभग आठ बजे उसकी गाड़ी आयी। ड्राइवर ने कहा—''सर, खाने की टेबल पर लोग आपका इन्तजार कर रहे हैं। क्रासिंग पर जाम हो जाने से मैं थोड़ा लेट हो गया।''

'लोग इंतजार कर रहे हैं' इस वाक्य से मैं कुछ विचलित सा हो गया और सोचने लगा- 'गीता तो यहाँ अकेली रहती है, फिर उसके यहाँ और कौन है, जिसके लिए यह आदमी 'लोग' शब्द का इस्तेमाल कर रहा है।' आया होगा कोई दूर का रिश्तेदार, यह सोचकर मैंने अपने शंकालु मन को समझाने का प्रयास किया।

गाड़ी जैसे ही गेट पर रुकी, गीता ने स्वयं आकर उसका दरवाजा खोला—''आइये अनुज जी आइये, आपका बहुत-बहुत स्वागत।'' कहकर वह मुझे सीधे डायनिंग टेबल पर ले गयी। ड्राइवर की बात सच निकली, वहाँ एक सज्जन पहले से ही विराजमान थे। उन्हें देखते ही मैं कुढ़ गया। ईर्ष्या अन्दर ही अन्दर लगी मुझे मथने। मेरे भीतर के इस स्वर ने मेरी प्रसन्नता को ग्रस लिया—'इस आदमी से गीता का कोई न कोई चक्कर जरूर है।'

गीता ने मुझसे उसका परिचय इन शब्दों में करवाया—''ये रवीन्द्र जी हैं, आजकल मेरे साथ रह रहे हैं, अधिकारी बनने की होड़ में हैं। ये साहब जब से यहाँ आये हैं, मेरी अन्यमनस्कता छू-मन्तर हो गयी है। इनके चलते यहाँ का माहौल सरस हो गया है।''

तदुपरान्त उसने उस आदमी से मेरा परिचय करवाया—''और ये हैं अनुज जी, मेरे विद्यार्थी जीवन के मित्र। ये मुझसे पहले नौकरी में आ गये थे। बहुत दिनों से हम दोनों एक दूसरे से नहीं मिल पाये थे, पर आज इनके सौजन्य से वह अवसर आ ही गया। वैसे तो ये बड़े भले हैं, पर कुछ शंकालु प्रवृत्ति के हैं।'' इतना कहकर वह हँस पड़ी।

डायनिंग टेबल पर उन दोनों ने मुझे सहज करने का बड़ा प्रयास किया, पर मेरी खिन्नता ज्यों की त्यों बनी रही। गीता ने पूछा भी—''यहाँ आते ही आप उदास क्यों हो गये? ऑफिस में जब मिले थे, तो ठीक थे। लगता है, यात्रा की थकान अभी पूरी तरह से गयी नहीं?''

''हाँ, कुछ इसी तरह की बात है, थकावट के चलते सारा शरीर टूट रहा है।'' इतना कहते-कहते मेरी खिन्नता और गहरा गयी।

वहाँ से आया और सोने की बड़ी कोशिश की, पर नींद कोसों दूर रही। लगा पश्चाताप करने—गलती हुई जो चला आया। फिर, यह कहाँ मालूम था कि यह महिला

इतनी बेवफा होगी। एम.ए. फाइनल की ही तो बात है। इसने मुझसे कितने अनुरोधात्मक स्वर में कहा था—''अनुज, मुझे भूल तो नहीं जाओगे? देखो, धोखा मत देना, नहीं तो मैं कहीं की नहीं होऊँगी? तुम्हारे सिवा और कौन मुझे अपनायेगा? मेरे दामन पर विधवा होने का धब्बा जो लग गया है।'' इतना कहते-कहते यह रो पड़ी थी।'

एक बार तो मन में आया कि चुपचाप यहाँ से निकल लूँ, पर यह सोचकर रुक गया कि इससे गीता को आघात पहुँचेगा।

सुबह उठा और अन्यमनस्क भाव से एक कप चाय ली, फिर बिना मन के अखबार देखने लगा। इसी बीच गीता आ गयी और मुस्कराती हुई बोली—''कहिये हुजूर, रात तो सुकून से बीत गयी न?''

''कहाँ बीती? बड़ी बेचैनी थी। एक क्षण के लिए भी तो नींद नहीं आयी।''

''नींद आती भी कैसे? उसे तो आपके शक ने ग्रस लिया होगा। बुरा मत मानियेगा, आप अपेक्षा से कुछ ज्यादा शंकालु हैं। अरे भाई, जिसे देखकर आप कुढ़ गये हैं, वह मेरी मौसी का लड़का है, यहाँ परीक्षा देने आया है और इस समय परीक्षा देने गया भी है।''

''सच में वह आपकी मौसी का लड़का है?'' मैंने साश्चर्य पूछा।

''तो क्या मैं झूठ बोल रही हूँ? अनुज जी, शक बहुत बुरी चीज है। ईश्वर न करे कोई इसकी चपेट में आये। इसकी एक छोटी-सी चिनगारी मधुर से मधुर सम्बन्धों को जलाकर राख कर देती है। इसके चलते सम्बन्धों में एक बार जो दरार पड़ जाती है, तो वह पाटे नहीं पटती। इसने न जाने कितने घरों को तबाह कर दिया है। और तो और, शंकालु व्यक्ति अपना जीवन तो तबाह करता ही है, साथ-साथ दूसरों के भी जीवन को नरक कर देता है। अतः इससे हम जितना दूर रहें, उतना ही अच्छा है।''

''बात तो आप ठीक ही कह रही हैं।'' मैंने झेंप मिटाते हुए कहा।

''हाँ, अब बताइये, किस काम से आये हैं?''

''गीताजी, एकाकीपन के दंश को झेलते-झेलते अब मैं थक गया हूँ। जब तक माँ जीवित थी, तब तक उसके चलते मैं कोई निर्णय नहीं ले पा रहा था, पर अब स्वतन्त्र हूँ।''

''तो इस सन्दर्भ में मुझसे आपको क्या अपेक्षा है?''

''मैं चाहता हूँ कि हम दोनों एक-दूसरे का हाथ थाम लें और जीवन की नयी शुरुआत करें।'' इतना कहकर मैं अर्थभरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

''अनुज जी, आप ही बताइये, जिस घर से मेरे पिता जी दुत्कारकर हटाये गये हों, उस घर की बहू मैं कैसे हो सकती हूँ? आपको तो यह मालूम ही होगा कि उस दिन के अपमान

से उन्हें इतना बड़ा सदमा पहुँचा कि एक बार जो बिस्तर पर पड़े, तो फिर उठे ही नहीं। आपकी दिवंगत माँ ने उन्हें जिस निर्ममता से जलील किया था, उसे मैं आज तक नहीं भूली हूँ। वे अपनी बात शालीन ढंग से भी तो कह सकती थीं। कितने कठोर शब्दों का इस्तेमाल उन्होंने किया था—'मास्टर साहब, आपको अपनी विधवा बेटी के लिए और कोई नहीं मिला, तो यहाँ चले आये? उस अशुभ को क्यों मेरे बेटे के गले मढ़ना चाहते हैं? कल को उसे कुछ हो-हवा गया तो? तब तो मैं कहीं की नहीं होऊँगी। कृपा करके यहाँ से जाइये और अपनी बेटी के लिए किसी अन्य लड़के की तलाश कीजिए।'

इसके बाद भी पिता जी ने हाथ जोड़कर कहा था—''आपको तो मालूम होगा कि गीता और अनुज एक दूसरे को कितना चाहते हैं?''

''मास्टर साहब, चाहना और विवाह के बन्धन में बँधना, दोनों में अन्तर होता है। भावुकता में आकर भले ही लोग एक-दूसरे पर जान देने लगें, पर विवाह की बात जब आती है, तो लोग बगलें झाँकने लगते हैं। अच्छा, अब आप न तो मेरा समय बर्बाद करें और न ही अपना।''

''इसके बाद पिता जी पर क्या गुजरी और वे किस मनःस्थिति में घर आये, उसे मैं ही जानती हूँ।''

''लेकिन इसमें मेरा क्या दोष है?'' मैंने गीता से पूछा।

''वैसे नहीं है आपका दोष? सब कुछ आपकी मौजूदगी में होता रहा और आप मूकदर्शक बने बैठे रहे? आपने अपनी माँ को उनके अभद्र व्यवहार के लिए एक बार भी मना करना जरूरी नहीं समझा? इतना ही नहीं, पिता जी लगभग पन्द्रह दिनों तक बिस्तर पर पड़े रहे, पर आपसे इतना भी न हो सका कि आकर सहानुभूति के दो शब्द बोल जाते। बहुत सम्भव था कि उससे उनकी वेदना कुछ कम हो जाती। और तो और, उनकी मृत्यु पर सारी दुनिया मेरे दरवाजे पर आयी, पर आपको शोक-संवेदना व्यक्त करने के लिए भी समय नहीं मिला। खैर, कोई बात नहीं, आप एक अच्छी सोच लेकर आये, इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ, पर इतना जरूर कहूँगी कि अभी मैं इस स्थिति में कतई नहीं हूँ कि आपके इस प्रस्ताव पर कुछ विचार कर सकूँ।''

''गीता जी, कभी-कभी आदमी अपनी परिस्थितियों के चलते इतना विवश हो जाता है कि बहुत कुछ चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता, परकटे पंछी की तरह छटपटा कर रह जाता है और लोग या तो यह समझते हैं कि वह व्यक्ति अपने दायित्व के प्रति उदासीन है या हीलाहवाली कर रहा है। काश! लोग दूसरों की विवशता को भी समझने का प्रयास

करते, इससे ढेर सारी गलतफहमियाँ अपने आप दूर हो जातीं, पर ऐसा कहाँ हो पाता है? उन दिनों मेरी अपनी भी कुछ विवशताएँ थीं, जिनके चलते दुःख के उन अवसरों पर आपके दरवाजे पर नहीं आ पाया। और अब रही मेरे प्रस्ताव पर विचार करने की बात, तो इसके लिए आप स्वतन्त्र हैं। दिल नहीं माना, चला आया, अब नहीं आऊँगा।'' इतना कहकर मैं उठ गया।

इसके बाद तो वह भावुक हो उठी न! आँचल से आँखें पोछते हुए बोली-''इतनी जल्दी नाराज हो जायेंगे, तो कैसे काम चलेगा? फिर, गिला-शिकायत अपनों से नहीं तो और किससे की जायेंगी? अभी तक आपको लेकर न जाने कितने उपालम्भ मेरे हृदय को सालते रहे, पर आज उन्हें निकालकर शुकून महसूस कर रही हूँ। हाँ, अब रही आपके जाने की बात, तो जब मैं जाने दूँगी, तब न जायेंगे?'' इतना कहकर वह मुझसे बैठने का अनुरोध करने लगी।

और मुझे देखिये, उसे रोते देखकर भी मैं उसके हृदय को बेंधने से बाज नहीं आया- ''अब मेरे और आपके बीच रह ही क्या गया है, जिसके लिए बैठूँ? फिर भी आप कह रही हैं तो बैठ जाता हूँ।''

मेरी इस बेरुखी से न तो वह आहत हुई और न ही विचलित अपितु मुस्कराती हुई बोली-''अनुज जी, आप जीवन की नयी जिस शुरुआत करने का प्रस्ताव लेकर आये हैं, उसका सफर लम्बा है। यदि शुरू करने के पहले ही झल्ला जायेंगे, तो वैसे साथ दे पायेंगे? नोक-झोंक तो होती ही रहेगी, थोड़ा धैर्य से काम लें। आइये पहले नाश्ता करें, फिर घूमने चलते हैं। सच में, यह शहर बहुत खूबसूरत है, मेरे साथ इसे देखेंगे, तो यह और खूबसूरत लगेगा।''

उस समय उसके स्नेहपूर्ण आग्रह के सामने मुझे झुकना ही झुकना था। फलतः हाथ नाश्ते की ओर बढ़ गये।

कहानी संग्रह से साभार

पूर्व प्रमुख, शब्दविद्या संकाय एवं
पूर्व अध्यक्ष, प्राच्य एवं आधुनिक भाषा विभाग
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9598070524

उसने कहा था

—चंद्रधर शर्मा गुलेरी—

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़िवालों की जवान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगाएँ।

जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरे को चींधकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढी वाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसाजी।' 'हटो भाई जी।' 'ठहरना भाई जी।' 'आने दो लाला जी।' 'हटो बाछा।' कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्नें और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं।

क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई।

यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं 'हट जा जीणे जोगिए; हट जा करमा वालिए; हट जा पुतां प्यारिए; बच जा लम्बी वालिए ।' समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेसी से गुँथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ है?"

"मगरे में; और तेरे?"

"माँझे में; यहाँ कहाँ रहती है?"

"अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में हैं।"

इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकराकार पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई?"

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर 'धत्' कह कर दौड़ गई, और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्ज़ीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई ?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली, "हाँ हो गई।"

"कब?"

"कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।"

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

(दो)

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गई। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बर्फ़ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। ज़मीन कहीं दिखती नहीं; - घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है।

इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा

कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मार कर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो..."

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते! क्यों?" सूबेदार हज़ारसिंह ने मुसकराकर कहा, "लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ़ बढ़ गए तो क्या होगा?"

"सूबेदार जी, सच है," लहनसिंह बोला, "पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ़ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।"

"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंकों। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदल ले।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला, "मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहा, "अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब - भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस धुमा ज़मीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होरा को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम..."

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिये लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ ! रात-भर तुम अपने कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और 'निमोनिया' से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सीर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा, "क्या मरने-मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरक! हाँ भाइयों, कैसे?"

दिल्ली शहर तें पिशोर नुं जांदिए,
कर लेणा लौंगां दा बपार मडिए;
कर लेणा नादेड़ा सौदा अड़िए
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुँ।
क बणाया वे मज़ेदार गोरिये,
हुण लाणा चटाका कदुए नुँ॥

कौन जानता था कि दाढ़ियावाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताज़े हो गए, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(तीन)

दोपहर रात गई है। अन्धेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछा कर और लहनासिंह के दो कम्बल और एक बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगा कर पूछा, "कहो कैसे हो?" पानी पी कर बोधा बोला, "कँपनी छुट रही है। रोम- रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो !"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता। चार दिन से मेरे लिए..."

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से बुन-बुनकर भेज रही हैं मेमें, गुरु उनका भला करें।" यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कह कर नहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन-कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई, "सूबेदार हज़ारासिंह।"

"कौन लपटन साहब? हुक्म हुजूर!" कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़ कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज़्ज़त हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब

लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा, "लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला, "लाओ साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहाँ से आ गए?"

शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हमलोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे?"

"लड़ाई ख़त्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे-

हाँ- हाँ वहीं जब आप खोते पर सवार थे और और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ने को रह गया था? बेशक पाजी कहीं का सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थीं। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजमेंट की मैस में लगाएँगे। हाँ पर मैंने वह विलायत भेज दिया - ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे?"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ" कह कर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

"कौन? वजीरसिंह?"

"हाँ, क्यों लहना? क्या कयामत आ गई? ज़रा तो आँख लगने दी होती?"

(चार)

"होश में आओ। कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।"

"क्या?"

"लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सोहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है?"

"तो अब !"

"अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होरा, कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे।

सूबेदार से कहो एकदम लौट आयें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं-"

"ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम... जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफ़सर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ है।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक- एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे एक सूत की गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने....

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दुक को उठा कर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आँख! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफ़े और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला, "क्यों लपटन साहब? मिजाज़ कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी

के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं।

और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहाँ से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिन 'डेम' के पाँच लफ़्ज़ भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया, "चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महिने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जाएँगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता कि डाकखाने से रुपया निकाल लो। सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूड़ दी थी। और गाँव से बाहर निकल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो..."

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया, "क्या है?"

लहनासिंह ने उसे यह कह कर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ़ पट्टियाँ कस कर बाँधी| घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनिटों में वे...

अचानक आवाज़ आई 'वाह गुरु जी की फतह ? वाह गुरु जी का खालसा !!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हज़ारसिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और... 'अकाल सिक्खाँ दी फौज आई ! वाह गुरु जी दी फतह ! वाह गुरु जी दा खालसा! सत श्री अकालपुरुख!!!' और लड़ाई ख़तम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को ख़बर न हुई कि लहना को दूसरा घाव - भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी वाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और काग़ज़ात पाकर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाडियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दार-अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायेगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा, "तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर..."

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होरां को चिठ्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकन लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा, "तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं।

लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते लहना लेट गया। "वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म-भर की घटनायें एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं। समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा, "हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू" सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

"वजीरासिंह, पानी पिला दे।"

पचीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं 77 रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न-मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमें की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिठ्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिठ्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना।

साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढे में से निकल कर आया। बोला, "लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जा कर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

मुझे पहचाना?"

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गई -धत् - कल हो गई- देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालू - अमृतसर में -"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला।" 'उसने कहा था।'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है, "मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमक हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी। "अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे, आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठा कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह, पानी पिला" 'उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला, "कौन! कीरतसिंह?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, "हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।" वजीरा ने वैसे ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अख़बारों में पढ़ा... फ्रान्स और बेलजियम... 68 वीं सूची... मैदान में घावों से मरा... नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहनसिंह।

-साभार

मानव जीवन-मूल्य और संस्कृति

—एस. पी. सिंह—

प्रत्येक प्राणी के जीवन जीने के तरीके भिन्न-भिन्न होते हैं, परन्तु यह जीवन संस्कृति और धर्म से अलग कभी नहीं होता। परम्परागत रूप से जहाँ जैसी संस्कृति होती है, उसी के अनुसार मनुष्य अपने जीवन का निर्वाह करता है। यह संसार परिवर्तनशील है। इसलिए सदैव सब कुछ एक जैसा नहीं रहता। समय-समय पर जीवन के क्रियाकलापों एवं गतिविधियों में बदलाव होता ही रहता है। इस तरह हमारी संस्कृति से जुड़े अनेक रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। लेकिन हमें ध्यान देने की जरूरत यह है कि हमारा जीवन निरन्तर बेहतर बने। इसके लिए हमें जीवन में वही चीजें अपनानी चाहिए, जो प्राकृतिक रूप से विशुद्ध हों, हमारी कार्य-प्रकृति सदैव कुशल हो, जिससे सांस्कृतिक स्वरूप और भी सुन्दर तथा सुदृढ़ बने।

इस संसार में जहाँ धर्म है, वहीं अधर्म भी है। जहाँ सत्य है, वहाँ असत्य भी है। जहाँ कर्म है, वहाँ कुकर्म भी है। जहाँ न्याय है, वहाँ अन्याय भी है। जहाँ जन्म है, वहाँ मृत्यु भी है। जहाँ नर है, वहाँ नारी भी है। जहाँ पाप है, वहाँ पुण्य भी है। जहाँ सुख है, वहाँ दुःख भी है। ईर्ष्या है तो द्वेष भी है। शत्रुता है तो मित्रता भी है। कहीं धूप है, तो कहीं छाया भी है। कहीं लौकिक है तो कहीं अलौकिक भी है। इसी प्रकार सर्वत्र सम और विषम की स्थितियाँ देखने को मिलती हैं। इन्हीं स्थितियों में सांसारिक प्राणियों का जीवन-चक्र चलता है।

जीवन के रास्ते दो तरह के होते हैं- एक तो वह जो अनुचित होता है अर्थात् गलत। दूसरा वह जो उचित होता है अर्थात् सही मार्ग। सांसारिक प्राणी (गलत या सही के रूप में) अपने मार्ग का चयन स्वयं करता है। जो व्यक्ति जिस कार्य को करता है, वह अपनी बुद्धि और विवेक के अनुसार ही करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्राणी को अच्छे या बुरे का जितना ज्ञान होता है, उसके अनुसार वह कार्य करता है। जिसे जो बुरा लगता है वह नहीं करता, जिसे जो अच्छा लगता है उसको ही वह करता है। इसे हम उपर्युक्त स्थितियों के अनुसार इस तरह देख और समझ सकते हैं।

वाणी का प्रयोग

वाणी का प्रयोग दो स्थितियों में होता है- एक तो वह जो कटु वचन अर्थात् कठोर होता है। यह हृदय को आघात पहुँचाता है। काँटों की तरह चुभने पर पीड़ा देता है, चित्त को

अस्थिरता और अशान्ति प्रदान करता है। दूसरों से द्वेष और ईर्ष्या की भावना रखने वाले किसी को खुश एवं सुखी देखना पसन्द नहीं करते। रास्ते में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। कटु वाणी से एक प्राणी दूसरे प्राणी को बुरा-भला कहता है। बुरे शब्दों का प्रयोग अनुचित कार्य-व्यवहार होने की दशा में होता है। इसका सम्बन्ध कलुषित अर्थात् दुर्भावना और क्रोध से सदैव बना रहता है।

दूसरा मधुर वाणी अर्थात् सुन्दर वचनों का निरन्तर प्रयोग करने पर होता है। इसके लिये चित्त की स्थिरता अर्थात् मन की शान्ति हमेशा बनी रहनी चाहिये। ईर्ष्या-द्वेष की भावना से रहित, मन की मलिनता अर्थात् चित्त विकार रहित होना चाहिये। अनुचित आचरण किसी के भी प्रति न हो। धैर्य, मनोबल, सहनशीलता परम आवश्यक है। यदि सामने वाला कठोर वचन बोलता भी है, तो सहन करने की क्षमता भी होनी चाहिये। बुद्धि और विवेक के साथ कुशल आचरण करने के साथ वाणी का सोच-समझकर सही प्रयोग होना चाहिये। मधुर वचनों का प्रयोग होने से चित्त सदैव शान्त रहता है। जब चित्त शान्त रहता है, तब मन भी प्रसन्न रहता है। हमारा मुखमण्डल तेजस्वी एवं कांतिमय बना रहता है।

व्यक्ति का व्यक्तित्व

प्रत्येक प्राणी का व्यक्तित्व ही उसके अच्छे-बुरे की पहचान कराता है। यदि हमारा आचरण अच्छा है तो हम अच्छे कार्य करना पसन्द करेंगे, बुरा आचरण होने पर बुरा। हमारा कार्य-व्यवहार हमारी संस्कृति, परम्परा और रीति-रिवाजों पर आधारित होता है। अगर हम भारत देश में पैदा हुये हैं, तो उसी संस्कृति में पलेंगे-बढ़ेंगे और उसके अनुकूल जीवन-निर्वाह करेंगे। यदि हम विश्व के किसी अन्य देश में पैदा होंगे, तो वहाँ की संस्कृति एवं परम्परा के अनुसार जीवन-यापन करेंगे।

हमारा कर्त्तव्य है कि हम जिस धर्म एवं संस्कृति में जी रहे हैं, जिस देश में रह रहे हैं, उसका आदर करें, किन्तु अन्य देश का निरादर नहीं। किसी व्यक्ति, देश या समाज की बुराई करना, ईर्ष्या-द्वेष की भावना रखना, वैरभाव रूपी आचरण करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। नैतिक रूप से हमें जो अनुकूल लगे उसे स्वीकार करें, जो अनैतिक हो उसे अस्वीकार कर दें।

हमारी भारतीय संस्कृति में धर्म, कर्म, न्याय, नीति, सत्य, अहिंसा, दया (करुणा), प्रेम, आदर-सम्मान, आवभगत, सेवा-सत्कार, ईश्वर के प्रति श्रद्धा-भक्ति, आस्था, ध्यान-साधना, उपासना, पूजा-पाठ, कीर्तन-भजन, नियम-संयम, शिक्षा-दीक्षा, संस्कार आदि समाहित हैं। वेद, पुराण, गीता, महाभारत, रामायण, उपनिषद्, नीतिशास्त्र आदि ग्रन्थों में निबद्ध धार्मिक संस्कृतिमूलक विरासत विद्यमान है। इसके अतिरिक्त अन्य अनगिनत ग्रन्थों में नैतिक वचन,

सैद्धान्तिक पक्ष और ज्ञान-गुण का अद्भुत वृहद् भण्डार जो हमारे देश की धरोहर के रूप में विद्यमान है, वह महान् ऋषि-मुनि, विद्वज्जन, मनीषी, ज्ञानीजन, महात्मा और श्रेष्ठ विभूतियों द्वारा अपरिमित ज्ञान-सम्पदा प्रदान की गई है।

प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है कि अपने कर्त्तव्यपरायणता पर विशेष बल दे। मानवमूल्यों को समझना हर प्राणी का दायित्व है। महान् विभूतियों एवं मनीषियों द्वारा उपदिष्ट वचनों एवं रचनाकार ज्ञानी विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों में निबद्ध श्रेष्ठ रचनाओं का अध्ययन-मनन कर उचित ज्ञानार्जन करने का प्रयास करना चाहिये। विभिन्न विषयों का अध्ययन करने से हर तरह का अनुभव प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस ज्ञान के द्वारा और स्वयं को पूर्व से प्राप्त ज्ञान के आधार पर सही-गलत का सही आकलन करना चाहिये। उचित प्रतीत होने पर उसका प्रयोग सदुपयोग के रूप में घर-परिवार, देश-समाज और विश्वहित में करना चाहिये। यदि हम औचित्यपूर्ण व्यवहारों का सर्वत्र जनकल्याण के हित में और स्वयं के भी हित में करेंगे तो हमारा जो व्यक्तित्व बनेगा, वह उदारपूर्ण एवं उत्तमकोटि का होगा। सम्बन्धों में आपसी सामञ्जस्य स्थापित कर उसमें प्रगाढ़ता लायेगा। अच्छी संगति, अच्छी शिक्षा, संस्कार, रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ जो संस्कृतिमूलक नैतिकता को प्रदर्शित करने वाली हों, उनको आत्मसात करना चाहिये।

क्रोध और अहंकार की उपज एवं संस्कारहीनता

यदि इंसान के अन्दर अहंकार न हो तो वह उसकी पद-प्रतिष्ठा, श्रेष्ठता, उपलब्धि, ज्ञान, गुण, विद्या, धन, ऐश्वर्य, प्रतिभा, सौन्दर्यता, कीर्ति, बल, बुद्धि, शौर्यता आदि के प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी उसमें ये सब सदैव बरकरार रहते हैं। व्यक्ति के अन्दर अहंकार तभी आता है, जब उसमें इस तरह की चीजें होती हैं। मैं यह हूँ, मैं वह हूँ, मैं ही सर्वज्ञ हूँ, मैं सर्वशक्तिमान हूँ, मेरे समान कोई नहीं है, मैं सबसे बड़ा एवं महान् हूँ, मेरे पास यह है, मेरे पास वह है, यह मेरा है, मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, मैं यह कर सकता हूँ, मैं वह कर सकता हूँ, स्वयं के श्रेष्ठ होने का सर्वत्र बखान करना आदि तरह के शब्दों का प्रयोग करने वाला या भावनाएँ रखने वाला व्यक्ति अहंकारी स्वभाव का होता है।

जब व्यक्ति के अन्दर अधिक क्रोध और अहंकार उत्पन्न हो जाता है, तब वह क्रोध के उत्पन्न होने पर उसे सहन करने का प्रयास भी नहीं करता। अधिकांशतया असहाय और बलहीन लोगों पर अपना क्रोध करता है, डराता है, धमकाता है, परेशान करता है, मारता-पीटता है, लड़ाई-झगड़ा करता है और उन्हें गाली भी देता है। कुछ लोग तो इससे भी बढ़कर

असभ्य व्यवहार करने वाले प्राणी होते हैं, जो असहनशील, निर्दयी, अधर्मी, नीच, पापी, दुराचारी और आतंकी स्वभाव के होते हैं।

प्रत्येक प्राणी के अन्दर कुशल आचरण होने चाहिये। कुशल आचरण ही व्यक्ति की हर तरह से सुरक्षा करते हैं। सुरक्षा का कवच कुशल आचरण ही होते हैं। यदि हर प्राणी उचित शिक्षा और संस्कार हासिल करे और उसका जीवन में सदैव उचित ढंग से प्रयोग करे तो वह कुछ भी प्राप्त कर सकता है। उसके ऊपर क्रोध और अहंकार अधिक हावी नहीं हो सकता। क्रोध और अहंकार के उत्पन्न होने पर वह स्वयं नियन्त्रण कर सकता है। जो चीजें नियन्त्रण में रहती हैं, उनसे हानि होने की संभावना बहुत कम होती है। जब व्यक्ति नियन्त्रण से बाहर हो जाता है या किसी चीज का अत्यधिक प्रयोग करने लगता है, तब उसे हानि पहुँचने लगती है। अच्छा आचरण अच्छी संगति, अच्छी शिक्षा और अच्छे संस्कारों द्वारा प्राप्त होता है। अच्छे आचरण ही हमें बुरा करने से रोकते हैं और अच्छा करने के लिए प्रेरित करते हैं।

हमारे जैसे संस्कार होते हैं, हम वैसा ही कार्य करते हैं। जैसी संगति होती है, वैसे ही संस्कार हमारे अन्दर आते हैं। जैसे औषधीय गुणों से भरपूर वृक्षों से अनेक प्रकार की रोगनाशक औषधियाँ प्राप्त होती हैं और रोगों का नाश करती हैं। वृक्षों के प्रभाव से ही सुन्दर हरियाली तथा वायु के रूप में पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त होती है, जिससे प्राकृतिक वातावरण शुद्ध एवं अत्यन्त मनोहारी होता है। वृक्षों से हमें बहुत सारे लाभ प्राप्त होते हैं। ये इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि इनके बिना जीवन जीना ही सम्भव नहीं है। वृक्षों में इतने गुण होते हैं कि इनकी छाया में विश्राम करने तथा सोने से भी कई फायदे होते हैं। उसी प्रकार भरपूर सुन्दर गुणों से सम्पन्न व्यक्ति की छत्रछाया में रहने से प्राणी को नाना प्रकार के लाभ मिलते हैं। इसीलिए हमें सदैव अच्छे गुणों वाले व्यक्तियों के साथ में रहना चाहिये। उनके मार्गदर्शन या छत्रछाया में रहने से हमारी हर तरह से सुरक्षा होती है और हमें अनेक तरह के लाभ प्राप्त होते हैं।

अशिष्टता का मूल कारण अज्ञानता

अज्ञानी व्यक्तियों का आचरण अधिकांशतया अशिष्ट और अनैतिक होता है। उनके अन्दर इतनी समझ नहीं होती है कि वे बात-व्यवहार सूझ-बूझ के साथ कर सकें। अच्छी शिक्षा एवं संस्कारों का अभाव होने के कारण असभ्य व्यवहार करना तथा कटु एवं अप्रिय वचनों का प्रयोग करना यही उनकी प्रवृत्ति होती है, यही उनका व्यक्तित्व होता है। जब ऐसे लोगों को सही बात बतायी जाती है या उनके असभ्य व्यवहारों के करने पर सज्जन पुरुषों

अथवा बुद्धिजीवियों द्वारा मार्गदर्शन या दिशा-निर्देश दिया जाता है तो ये लोग उसका उल्टा अर्थ निकालते हैं और अप्-शब्द बोलकर निरादर करते हैं।

जिस व्यक्ति में मानवता नहीं, वह मानव कैसा ? जब कोई प्राणी कुकृत्य करता है, भले इंसानों को सताता है, मारता है, गाली देता है, दुराचार करता है, हिंसा करता है, छल-कपट करता है, पाप करता है, तो वही हैवान या शैतान कहा जाता है। अमानवीय कृत्य करने का अभिप्राय यही होता है। जिन लोगों के अन्दर करुणा, प्रेम, सदाचार, सन्तोष, शालीनता, कर्त्तव्यपरायणता तथा सद्भाव रूपी गुणों का अभाव रहता है, वे ही समाज में सद् आचरण करने से वंचित रह जाते हैं। बुद्धिहीनता वश सत्य का सही ज्ञान न होने से सही-गलत को ठीक से न समझ पाना और उसके अनुरूप उचित निर्णय न ले पाना तथा सौंपे गये कार्यों या दायित्वों का अच्छी तरह से निष्पादन न कर पाना ही उनकी प्रवृत्ति होती है।

स्वयं के अन्दर बुद्धि और विवेक जितना भी होता है, उसका सही प्रयोग जो प्राणी कर लेता है, वही अच्छा इंसान होता है। जब प्राणी ईश्वर द्वारा प्रदान की गई बुद्धि का सही प्रयोग नहीं करता, बिना सोचे-समझे जो मन में आता है, केवल वही करता है, वही बोलता है, तो अज्ञानी या मूर्ख की श्रेणी में आता है। ज्ञानी और अज्ञानी में यही अन्तर होता है कि अज्ञानी बिना सोचे-समझे कार्य करता है, उसको सही-गलत से कोई मतलब नहीं होता। उसको जो अच्छा लगता है, उसके मतलब का होता है, उसकी जो इच्छा होती है, केवल वही करता है। ज्ञानी व्यक्ति के अन्दर सोचने-समझने की शक्ति प्रबल होती है। वह कोई भी कार्य बिना सोचे-समझे नहीं करता। गलत-सही का उचित आकलन करता है। चित्त को नियन्त्रित रखता है। सदैव धैर्य और विनम्रतापूर्वक उचित निर्णय लेता है, कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का कर्त्तव्य समझकर सुचारु रूप से निष्पादन करता है।

जीवन का मूल्य

मनुष्य इस संसार में आकर यदि समाज में अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से वंचित रह जाता है, कुशल आचरण नहीं कर पाता, तो उसका जन्म लेना निरर्थक सिद्ध हो जाता है। कर्त्तव्य एवं दायित्व घर-परिवार, देश-समाज या वैश्विक स्तर पर ही क्यों न हो, सांसारिक हर प्राणी की श्रेणी में आता है। जीवन जीते तो सभी हैं, किन्तु जीना सबको नहीं आता। जीवन जीने का तरीका सबका अलग-अलग होता है। यह जन्म हमारा इस संसार में किसी उद्देश्य के लिये हुआ है। वह उद्देश्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर सबको ज्ञात नहीं होता, इसीलिये वैसा जीवन नहीं जी पाते। सामान्य या अशिक्षित जन जिस माहौल में रहते हैं, उनका जीवन

जिस रूप में व्यतीत हो रहा होता है, वे उसी के अनुसार जीते हैं। जीने की कला तभी सही आती है, जब व्यक्ति जीवन के उद्देश्य को जान लेता है, समझ लेता है। एक जीवन राजा जीता है और एक रंक। एक जीवन अमीर जीता है, तो एक जीवन गरीब। यह सब प्रत्येक प्राणी के द्वारा किये हुये कर्मों के आधार पर ही प्राप्त होता है।

परिश्रम करने वाला कभी भूखा नहीं रह सकता, भले ही वह गरीब क्यों न हो। जीवन का उद्देश्य ऐसा होना चाहिए कि वह उसे अपने सुकर्मों के द्वारा सुन्दर बनाये। मनुष्य योनि में जन्म लेकर यदि प्राणी अपना जीवन सार्थक नहीं बना सका, तो किसी अन्य योनि में कदापि नहीं कर सकता। यह अवसर केवल मानव का जन्म प्राप्त करने के पश्चात् ही प्राप्त होता है, क्योंकि मनुष्य को परमात्मा ने पूर्णतया सक्षम बनाया है। तन, मन, धन, ऐश्वर्य और सुख-सुविधाओं से उसे सम्पन्न बनाया है अर्थात् समस्त भौतिक ऐच्छिक एवं आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की है। साथ ही, अलौकिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान, गुण, विद्या, बुद्धि, विवेक और समस्त शक्तियों से परिपूर्ण किया है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्राणी सक्षम नहीं है। यदि बुद्धि और विवेक का सही प्रयोग करे और गम्भीरतापूर्वक विचार करके कार्य करे तो क्या गलत है और क्या सही, सबसे ज्यादा अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य के अन्दर समझने और जानने की क्षमता है। इसलिए कर्म करने का सिद्धान्त मनुष्य पर ही लागू होता है और उसके बाद कर्मफल भी भोगना पड़ता है।

मानव के मूल्य को न समझने वाला व्यक्ति जीवन को अव्यवस्थित ढंग से जीता है। यह शरीर कैसे प्राप्त हुआ है ? इसकी उपयोगिता क्या है ? यदि यह मिला भी है तो इस संसार में इसे किस प्रकार हित और परहित की दृष्टि से प्रयोग में लाना चाहिये ? इसकी सुरक्षा कैसे करनी चाहिये ? असुरक्षित रहने से क्या-क्या नुकसान होते हैं ? इन सारे प्रश्नों के उत्तर स्वयं के ही अन्दर विद्यमान हैं। यह उसी भाँति होता है जैसे चलने वाली गाड़ी की होती है। यह गाड़ी चलती कैसे है, इसी से समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए चलने वाली गाड़ी अर्थात् हमारा शरीर और चलाने वाला चालक अर्थात् हमारा चित्त। गाड़ी तब तक नहीं चल सकती, जब तक चलाने वाला चालक नहीं चलायेगा। गाड़ी चलाने वाले चालक पर निर्भर होती है। चालक जैसे चलायेगा, वह वैसे ही चलेगी।

गाड़ी चलाने के लिए चालक जितना ही अच्छा होगा, वह उतनी ही अच्छी चलेगी। जितनी ज्यादा सुरक्षा करेगा, देखभाल करेगा, उतनी ही सुरक्षित रहेगी। इस तरह गाड़ी की स्थिति जितनी ही बेहतर होगी, वह उतने ही लम्बे समय तक सही ढंग से चलेगी। ठीक इसी तरह हमारे शरीर रूपी गाड़ी की स्थिति होती है। हमारे शरीर को चलाने वाला चालक यह

चित्त जिस प्रकार चलायेगा अथवा चलाने वाला होगा, उसी प्रकार हमारी शरीर रूपी गाड़ी भी चलेगी। जैसी सुरक्षा प्रदान करेगा, वैसा ही यह शरीर सुरक्षित रहेगा।

चाहे गाड़ी चलाना हो अथवा शरीर- दोनों के लिये सही चालक वही हो सकता है, जो नियम, संयम, कानून और विधि-विधानों को अच्छी तरह से जानता हो और ठीक से उसका पालन भी करता हो अन्यथा सही-गलत का उचित ज्ञान न होने से संचालन भी सही ढंग से नहीं होगा।

प्रत्येक सांसारिक प्राणी अपने-अपने बुद्धि और विवेक के अनुसार जीवन जीता है। किसी वस्तु की कीमत क्या होती है, इसे समझने वाला व्यक्ति उस वस्तु की कद्र करता है, न समझने वाला कोई कद्र नहीं करता। हमारा मानव शरीर कितना मूल्यवान है, इसको कोई नहीं समझ सकता। हाँ, इतना अवश्य समझ सकता है कि यह शरीर रूपी वस्तु बहुत कीमती है या फिर इस तरह समझ सकता है कि इस शरीर का कोई मूल्य नहीं है, यह तो अमूल्य है।

अमूल्य या मूल्यवान वस्तु का सदुपयोग काफी बेहतर तरीके से करने वाले जो लोग होते हैं- वे बुद्धिमान, विवेकशील, सत्कर्मी, सद्धर्मी, करुणावान, न्यायप्रिय, निष्ठावान, सन्तोषी, हितैषी, अहिंसक, निष्कपट, ज्ञानी, कर्त्तव्यनिष्ठ, चरित्रवान, सहनशील और विनम्र स्वभाव के होते हैं। ऐसे व्यक्ति कुशल आचरणवान कहलाते हैं, जो मनुष्य योनि में जन्म लेकर श्रेष्ठ यश को प्राप्त करते हैं। ये स्वयं का हित करने के साथ-साथ जगत् का भी कल्याण करते हैं। इस तरह संसार में रहकर जीवन को सार्थक बनाते हैं।

प्रकाशन सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8173885582

प्रकृति और हम

—दिनेश कुमारी—

प्रकृति जिसमें हम निवास करते हैं जब से मानव इस प्रकृति पर आया है तब से ही वह प्रकृति के साथ संबंध बनाए हुए है। इस प्रकृति की रक्षा करना अति आवश्यक है। प्रकृति हमारी वास्तविक माँ की तरह होती है जो हमें कभी नुकसान नहीं पहुँचाती बल्कि हमारा पालन-पोषण करती है। सुबह जल्दी प्रकृति के गोद में टहलने से हम स्वस्थ और मजबूत बनते हैं साथ ही ये हमें कई सारी घातक बीमारियों जैसे डायबिटिज, स्थायी हृदय घात, उच्च रक्त चाप, लीवर संबंधी परेशानी, पाचन संबंधी समस्या, संक्रमण, दिमागी समस्याओं आदि से भी दूर रखता है। ईश्वर ने सब कुछ बहुत सुंदरता से देखने के लिये बनाया है जिससे हमारी आँखें कभी नहीं थक सकती। लेकिन हम भूल जाते हैं कि मानव जाति और प्रकृति के बीच के रिश्तों को लेकर हमारी भी कुछ जिम्मेदारी है। क्या हमने कभी सोचा कि प्रकृति का निर्माण कैसे हुआ है? यह इतना सुंदर कैसे है? आकाश नीला क्यों है, तारे टिमटिमाते क्यों हैं? सूर्योदय और सूर्यास्त के दौरान सूर्य लाल-नारंगी क्यों होता है, यह प्रकृति का सुन्दर स्वरूप है जो सभी को आकर्षित करता है।

प्रकृति दो शब्दों से मिलकर बनी है - प्र और कृति। प्र अर्थात् प्रकृष्टि (श्रेष्ठ/उत्तम) और कृति का अर्थ है रचना। ईश्वर की श्रेष्ठ रचना अर्थात सृष्टि। प्रकृति से सृष्टि का बोध होता है। प्रकृति अर्थात वह मूलत्व जिसका परिणाम जगत है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति के द्वारा ही समूचे ब्रह्माण्ड की रचना की गई है। प्राकृतिक प्रकृति में पांच तत्व - पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और आकाश शामिल हैं। मनुष्य के जन्म से भी पहले से उसकी गुरु है प्रकृति। वह अनगिनत आंखों, हाथों और मन से मनुष्य को कुछ न कुछ सिखाती चली आ रही है। वह गुरु होने के साथ-साथ मां और बाप भी है। वह रक्षक भी है और न्यायाधीश भी है। वह गति और विकास का व्याकरण सिखाती है। उसे छेड़ा तो वह विनाश का सबक भी सिखाती है। प्रकृति गुरु हमें पंच रूपों में शिक्षित करती है। इस महागुरु के आगे मनुष्य सदा नतमस्तक है। जैसे जल के रूप में प्रकृति सिखाती है बहना-जल के रूप में प्रकृति प्रगति और प्रवाह का ककहरा सिखाती है। पानी बताता है कि हमें हर बाधा को पार करते हुए चलना है जैसे नदी चलती है पत्थरों, अवरोधों में, कभी रुक कर, कभी सकुचा कर तो कभी विराट रूप धारण कर, कभी सीधी तो कभी राह बदल कर। जल जीवन का पर्याय है। ठीक उसी तरह, जिस तरह ज्ञान सभ्यता का पर्याय है। वायु के रूप में प्रकृति देती है सीख, सीमाओं में रहकर जीने

की, ताकि चलता रहे जीवन, न हो कोई अनर्थ। वायु का अर्थ वेग भी है। यह गुरु जब अपनी सीमा तोड़ती है तो आंधी बन जाती है। मनुष्य जब सीमा तोड़ता है तो जीवन में भूचाल आता है। पृथ्वी धरा की तरह धैर्य रखने और दृढ़ता की शिक्षा देती है। प्रकृति पंच महाभूतों में से एक पृथ्वी के बारे में कहा गया है कि हमारे शरीर में जितना ठोस हिस्सा है वह पृथ्वी है। पृथ्वी सीख देती है कि डटे रहो। धैर्य मत त्यागो। स्थिर रहना पृथ्वी का गुण है। अपने लक्ष्य और निर्णय पर अडिग रहने का गुण सफल व्यक्तित्व का आधार है। आग से सिखाती है प्रकृति, अपनी उर्जा का सही उपयोग करना और अति उत्साही न होना। आग यानी ऊर्जा। आग का पैमाना बिगड़ा तो दावानल होता है। इसी तरह किसी भी कार्य में अति उत्साह या ज्यादा ऊर्जा लगाना उस काम को बिगाड़ देता है। खाना बनाने के लिए ऊर्जा की मात्रा भी अलग-अलग होती है। इसी तरह हमें यह सीखना होगा कि कहां कितनी ऊर्जा निवेश करें। आकाश प्रकृति सिखाती है, आकाश खुलकर उड़ना, लेकिन कभी न भटकना। आकाश का अर्थ है विस्तार। जीवन को आसमान जितना विस्तार देना संभव है यह उम्मीद हमें आकाश को देख मिलती है। विज्ञान कहता है कि ग्रह गुरुत्वाकर्षण बल के कारण एक नियम में बंधे हुए हैं। इसी तरह आकाश जितने विस्तार पाते हुए हम भटक न जाए इसलिए जरूरी है कि हम अपने उद्देश्य को न भूलें।

प्रकृति सभी के जीवन का महत्वपूर्ण और अविभाज्य अंग है। खूबसूरत प्रकृति के रुप में भगवान के सच्चे प्यार से हम सभी धन्य है। कुदरत के सुख को कभी गँवाना नहीं चाहिये। कई प्रसिद्ध कवियों, लेखक, पेंटर, और कलाकार के कार्य का सबसे पसंदीदा विषय प्रकृति होती है। प्रकृति भगवान की बनायी सबसे अद्भुत कलाकृति है जो उसने बहुमूल्य उपहार के रुप में प्रदान की है। प्रकृति सब कुछ है जो हमारे आसपास है जैसे पानी, हवा, भूमि, पेड़, जंगल, पहाड़, नदी, सूरज, चाँद, आकाश, समुद्र आदि। कुदरत अनगिनत रंगों से भरी हुई है जिसने अपनी गोद में सजीव-निर्जीव सभी को समाहित किया है। कुदरत के पास कुछ परिवर्तनकारी शक्तियाँ है जो हमारे स्वाभाव को उसके अनुसार बदलते है। रोगी को अपनी बीमारी से बाहर निकलने के लिये प्रकृति के पास शक्ति है, अगर उनको जरुरी और सुहावना पर्यावरण उपलब्ध कराया जाये। हमारे स्वस्थ जीवन के लिये प्रकृति बहुत जरुरी है। इसलिये हमें इसको खुद के लिये और अगली पीढ़ी के लिये संरक्षित रखना चाहिये। हमें पेड़ों और जंगलों को नहीं काटना चाहिये, हमें अपने गलत कार्यों से महासागर, नदी और ओजोन परत को नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिये, ग्रीन हाउस गैस को नहीं बढ़ाना चाहिये तथा अपने निजी स्वार्थों के कारण पर्यावरण को क्षति नहीं पहुँचाना चाहिये। हमें अपने प्रकृति के बारे में पूर्णतः

जागरुक होना चाहिये और इसको बनाए रखने का प्रयास करना। जिससे धरती पर जीवन हमेशा संभव हो सके। आधुनिक तकनीकी दुनिया में प्रकृति के लाभ और नुकसान के बिना बहुत सारे आविष्कार दैनिक लॉन्च हो रहे हैं। पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को संभव बनाने के लिए हमारी प्रकृति की घटती संपत्ति को बचाना हमारी जिम्मेदारी है। अगर हम प्रकृति संरक्षण की दिशा में कोई कदम नहीं उठाते हैं, तो हम अपनी भावी पीढ़ियों को खतरे में डाल रहे हैं। हमें इसके मूल्य को समझना चाहिए और इसके प्राकृतिक आकार को बनाए रखने की कोशिश करनी चाहिए। भारतीय दर्शन में प्रकृति के साथ जीने की जीवन पद्धति को अपनाया गया है इसीलिए भारतीय दर्शन प्रकृति के साथ संबंध स्थापित करता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि "माता भूमिः, पुत्रोऽहं पृथ्विया" अर्थात यह धरा, यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूं। पर्यावरण संरक्षण पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता जाए, इसके लिए पर्यावरण संरक्षण को धर्म से भी जोड़ा गया और ऐसी उद्घोषणा भी की 'कहते हैं सारे वेद पुराण, एक पेड़ बराबर सौ संतान।'

मानव सभ्यता के विकास क्रम में इस जानकारी से साक्षात्कार हुआ कि पेड़ों से हमें ऑक्सीजन मिलती है एवं जो कार्बन डाई ऑक्साइड मनुष्य छोड़ता है उसे पेड़ ग्रहण करते हैं। भारतीय सभ्यता संस्कृति में प्रकृति और पर्यावरण को पूज्य मानने की परम्परा बहुत पुरानी है, जिसका उदाहरण हम सिंधु घाटी सभ्यता में मिले प्रकृति पूजा के प्रमाणों, वैदिक संस्कृति के प्रमाणों में देख सकते हैं। भारतीय जन जीवन में वृक्ष पूजन की परम्परा भी रही है। पीपल के वृक्ष की पूजा एवं उसके नीचे बैठकर ज्ञान प्राप्ति करना एवं सामाजिक जीवन की चर्चा करना परम्परा का हिस्सा रहा है। प्रकृति एक प्राकृतिक पर्यावरण है जो हमारे आसपास है, हमारा ध्यान देती है और हर पल हमारा पालन-पोषण करती है। ये हमारे चारों तरफ एक सुरक्षात्मक कवच प्रदान करती है जो हमें नुकसान से बचाती है। हवा, पानी, जमीन, आग, आकाश आदि जैसी प्रकृति के बिना हम लोग इस काबिल नहीं है कि धरती पर रह सकें। प्रकृति हमारे आस-पास कई रूपों में है जैसे पेड़, जंगल, जमीन, हवा, नदी, बारिश, तालाब, मौसम, वातावरण, पहाड़, पठार, रेगिस्तान आदि। कुदरत का हर स्वरूप बहुत शक्तिशाली है जो हमारा पालन पोषण करने के साथ ही नाश करने की क्षमता भी रखता है। पृथ्वी पर हरेक तत्व छोटे जीव हो या बड़े पेड़-पौधे सबका समान महत्व है। कीड़े-मकौड़े से लेकर प्रत्येक जीव-जन्तुओं का अपना-अपना योगदान है। इन सबसे ही मिलकर प्रकृति का संतुलन बना रहता है। प्राणियों के जीवित रहने के लिए शुद्ध हवा तथा जल की जरुरत होती है, उसी प्रकार वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं का होना उतना ही जरुरी

है। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के चलते प्रकृति का हद से ज्यादा फायदा उठा रहा है। प्रकृति की सुन्दरता को समाप्त करने पर तुला है। प्रकृति को अपने इच्छानुसार बदलने में लगे हैं। किन्तु पृथ्वी पर सभी सजीव प्राणियों का भोजन का प्राथमिक जरिया एक मात्र पेड़-पौधे ही हैं। इसी भोजन पर बाकी सभी शाकाहारी प्राणी निर्भर रहते हैं। क्योंकि शाहकारी जीव पेड़-पौधों पर ही निर्भर रहते हैं और मांसाहारी जीव इन शाकाहारी प्राणियों पर। इसी प्रकार के जीवन च्रक से प्राकृतिक संतुलन बना रहता है। इसांन अब इतना स्वार्थी हो गया है कि ये सारी सम्पत्ति मुफ्त में पाने के उपरान्त, प्रकृति को धोखा दे रहा है। प्रकृति के खिलाफ जाकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करना चाहता है। प्रकृति हमारे लिए आनंद का एक स्रोत है क्योंकि इससे जीवन की उपलब्धियों का पता चलता है। प्रकृति ईश्वर की अभिव्यक्ति है। वातावरण उसी आत्मा से परवान चढ़ता है जो मनुष्य में बसती है। मनुष्य और प्रकृति के बीच एक संबंध है। इसलिए प्रकृति का प्रेम मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। एक व्यक्ति जो प्रकृति से प्यार नहीं करता है, वह एक विधर्मी है क्योंकि वह भगवान को सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी के रूप में पहचानने से इनकार करता है।

दरअसल प्रकृति हमें कई महत्वपूर्ण पाठ भी पढ़ाती है। जैसे- पतझड़ का मतलब पेड़ का अंत नहीं है। इस पाठ को जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में आत्मसात किया उसे असफलता से कभी डर नहीं लगा। ऐसे व्यक्ति अपनी हर असफलता के बाद विचलित हुए बगैर नए सिरे से सफलता पाने की कोशिश करते हैं। वे तब तक ऐसा करते रहते हैं जब तक सफलता उन्हें मिल नहीं जाती। कभी-कभी हमारे साथ कुछ ऐसा घटित हो जाता है जिससे हम बहुत नीच महसूस करते है। ऐसा लगता है जैसे अब सब कुछ खत्म हो गया। इससे कई लोग अवसाद में चले जाते है तो कई लोग बड़ा और बेवकूफी भरा कदम उठा लेते हैं जैसे आत्महत्या पर। जरा सोचिये पतझड़ के समय जब पेड़ में एक भी पत्ती नहीं बचती है तो क्या उस पेड़ का अंत हो जाता है? नहीं, वो पेड़ हार नहीं मानता बल्कि नए जीवन और बहार की आशा में खड़ा रहता है, और जल्द ही उसमें नयी पत्तियाँ आनी शुरू हो जाती हैं, उसके जीवन में फिर से बहार आ जाती है। यही प्रकृति का नियम है। ठीक ऐसे ही अगर हमारे जीवन में कुछ ऐसे घातक पल आते हैं तो इसका मतलब अंत नहीं बल्कि ये इस बात का इशारा है कि हमारे जीवन में भी नई बहार आयगी। अत: हमें सब कुछ भूलकर नई जिन्दगी की शुरूआत करनी चाहिये, और ये विश्वास रखना चाहिए कि नई जिन्दगी पुरानी से कही बेहतर होगी। यही नहीं और भी हम देख सकते हैं जैसे जिस तरह कमल कीचड़ में रहकर भी अपने अंदर कीचड़ वाले गुण विकसित नहीं होने देता है उसी तरह चाहे हमारे आस-पास कितनी ही बुराइयाँ हो

पर उसे अपने अंदर पनपने नहीं देना चाहिये । हमें अपना अलग पहचान बनाना चाहिये । ठीक उसी तरह हम नदी पर्वत आदि को भी देखें तो जिस तरह से नदी से पानी का बहाव ऊँचे स्तर से नीचे स्तर की ओर ही होता है उसी तरह हमारी जिन्दगी में भी प्रेम भाव का प्रवाह बड़े से छोटे की ओर होता है । इसलिये हमें कभी भी अपने आप को दूसरों के सामने ज्ञानवान या बड़ा बताने की जरूरत नहीं है और इससे कोई फायदा भी नहीं है उल्टा प्रेम भाव हम तक बहकर नहीं आयेगा । जब कोई पर्वत की ऊँची चोटी से जोर से आवाज लगाता है तो वही आवाज वापस लौटकर उसी को सुनाई देती है । विज्ञान में इस घटना को echo कहते हैं पर यही नियम हमारे जीवन में भी लागू होता है । हम वही पाते हैं जो हम दूसरों को देते है । हम जैसा व्यवहार दूसरों के लिये करते हैं वही हमें वापस मिलता है । यदि हम दूसरों का सम्मान करते हैं तो हमें भी सम्मान मिलेगा । यदि हम दूसरों के बारे में गलत भाव रखेगें तो वो वापस हमें ही मिलेगा । अतः आप जैसा भी व्यवहार करें वो लौटकर आपको ही मिलने वाला है । जिस तरह विशाल पेड़ को तैयार होने मे ज्यादा समय लगता है उसी तरह हमारे महान लक्ष्य को भी पूरा होने में समय लगता है । लेकिन कुछ लोग धैर्य नहीं रख पाते और अपना काम बीच में ही छोड़ देते हैं । ऐसा करने वाले को बाद में पछतावा ही मिलता है । इसलिए बड़े लक्ष्य में सफलता के लिये कड़ी मेहनत के अलावा धैर्य की भी आवश्यकता होती है । इसी तरह फलों से लदे, मगर नीचे की ओर झुके पेड़ हमें सफलता और प्रसिद्धि मिलने या संपन्न होने के बावजूद विनम्र और शालीन बने रहना सिखाते हैं । उपन्यासकार प्रेमचंद के मुताबिक साहित्य में आदर्शवाद का वही महत्व है, जो जीवन में प्रकृति का है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि प्रकृति में हर किसी का अपना महत्व है । एक छोटा-सा कीड़ा भी प्रकृति के लिए उपयोगी है, जबकि मत्स्यपुराण में एक वृक्ष को सौ पुत्रों के समान बताया गया है । इसी कारण हमारे यहां वृक्ष पूजने की सनातन परंपरा रही है । पुराणों में कहा गया है कि जो मनुष्य नए वृक्ष लगाता है, वह स्वर्ग में उतने ही वर्षो तक फलता-फूलता है, जितने वर्षो तक उसके लगाए वृक्ष फलते-फूलते हैं । प्रकृति की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह अपनी चीजों का उपभोग स्वयं नहीं करती । जैसे- नदी अपना जल स्वयं नहीं पीती, पेड़ अपने फल खुद नहीं खाते, फूल अपनी खुशबू पूरे वातावरण में फैला देते हैं । इसका मतलब यह हुआ कि प्रकृति किसी के साथ भेदभाव या पक्षपात नहीं करती, लेकिन मनुष्य जब प्रकृति से अनावश्यक खिलवाड़ करता है तब उसे गुस्सा आता है । जिसे वह समय-समय पर सूखा, बाढ़, सैलाब, तूफान के रूप में व्यक्त करते हुए मनुष्य को सचेत करती है । जैसे की हम सब प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि आज कल पहाड़ी इलाके में कितना नुकसान हो रहा है । चारों ओर भूस्खलन, बाढ़

आदि से लोगों की सालों साल की मेहनतों को पल भर में समाप्त कर रहा है। इसलिए प्रकृति हमेशा हमें निष्काम भाव से सेवा करने का संदेश देती है। जैसे सूर्य बिना किसी लाभ के अपनी ऊर्जा समस्त प्राणी जगत को देता है और सम्पूर्ण प्राणी जगत उसकी निष्काम भाव से सेवा का अनुसरण करते हैं और इस क्रम को आगे ले जाते हैं। प्रकृति सदैव मनुष्य के लिए प्रेरणास्रोत रही है। इसने हमें बहुत सी चीजें सिखाई हैं जिन्हें हम अपने जीवन में लागू कर सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण सबक जो हम प्रकृति से सीख सकते हैं वह है मौन रहकर काम करना। इसका मतलब यह है कि हमें बिना ज्यादा शोर-शराबा किए चुपचाप काम करना चाहिए। प्रकृति से ही हम सभी हैं तो इसका संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। कर्तव्य के साथ-साथ हमारा दायित्व भी है जिससे हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को एक अच्छी प्रकृति दे सके। जिसमें खुलकर वह सांस ले सके। स्वच्छ वायु व स्वच्छ जल का सेवन कर सके, यह हमारा दायित्व है।

के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

गत पचास वर्ष में अरुणाचल

—वाङछेन गोम्बू—

भूमिका

आज मैं इस हिन्दी पत्रिका के लिए लेख लिख रहा हूँ। यह प्रेरणा मेरे अन्दर हिंदी निबन्ध प्रतियोगिता में भाग लेने के कारण उत्पन्न हुई। हिन्दी निबन्ध लेखन प्रतियोगिता का परिणाम क्या होगा, उसकी चिंता न करते हुए मैंने प्रतियोगिता में हिस्सा लिया एवं परिणाम सुखद रहा तथा मैंने हिंदी में निबन्ध लिखा।

मुख्य भाग

अरुणाचल प्रदेश को सन् 1972 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने केन्द्र शासित राज्य घोषित किया था। आज 2022 अरुणाचल प्रदेश स्थापना दिवस का स्वर्ण जयंती मनाया जाता है। राज्य के कोने-कोने में लोग बहुत ही हर्ष से स्वर्ण जयंती का उत्सव मना रहे हैं। कई प्रकार की गतिविधियाँ चल रही हैं, जो युवकों को अपने देश और राज्य प्रति प्रेणादायक हैं।

अरुणाचल प्रदेश भारत का एक उत्तर पूर्वी राज्य है। जिसका हिन्दी अर्थ सूर्य के आँचल में बसा हुआ प्रदेश। यह नैसर्गिक विविधता से परिपूर्ण राज्य है, इसमें विविध प्रकार की जनजातियाँ निवास करती हैं। हर एक की अपनी अलग भाषा व बोली और सांस्कृतिक विरासत है। विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक त्योहार मनाये जाते हैं और प्रत्योक उत्सव के पीछे एक विशेष लक्ष्य होता है, जो सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाती है। धार्मिक एवं विशिष्ट पराम्पराओं के तौर पर भी यह राज्य भारत के दूसरे राज्य से विशिष्ट लगता है क्योंकि इसमें कई प्रकार के धर्म फेले हुए हैं, जो लोगों को एक दूसरे से बान्धे रखता है।

भोगोलिक दृष्टि से

पूर्वोत्तर के राज्यों में यह सबसे बड़ा राज्य है। इसके दक्षिण में असम, दक्षिणपूर्व में नागालैंड, पूर्व में म्यांमार, पश्चिम में भूटान और उत्तर में तिब्बत से सीमा लगती है। यहाँ कुल 17 जिला है और ईटानगर राज्य की राजधानी है। वर्तमान समय में पूरा विश्व आधुनिकता के दौड़ में दूषित वातावरण के कारण परेशान और चिन्तित है, अनेक प्रकार के भयानक रोग उत्पन्न हो रहे हैं। किन्तु अरुणाचल प्रदेश गत पचास वर्षों से अन्य राज्यों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है एवं प्रदूषण से मुक्त है। यहाँ का 73% क्षेत्रफल जंगलों से गिरा

हुआ है। वृक्षों की अधिकता के कारण यहाँ का वायुमंडल साफ-स्वच्छ और सुखद है। जिसके कारण अरुणाचल में कही भी भ्रमण करें, यहाँ का वातावरण, प्राकृतिक जलवायु आदि हमारे अनुकूल है।

राजनीति एवं आर्थिक दृष्टि से

इक्कीसवीं सदी का प्ररम्भ होते ही एक युग का विकास हुआ है जो राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से अत्यंत आवश्यक बन गया है। लोग धन और शक्ति प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील हैं। उसी प्रकार हमारा प्यारा अरुणाचल भी उससे अछूता नहीं है। गत पचास वर्ष में दुनियाँ के दूसरे हिस्सों कि तरह अरुणाचल ने भी कई सारे परिवर्तन को देखा है। चाहे वह आर्थिक दृष्टि से, यह राजनीतिक, यह समाजिक दृष्टि से हो। किन्तु अरुणाचल प्रदेश के लोग सदैव अपने भारत की नैतिकता के अनुकूल रहे हैं और हरेक अरुणाचली के मन में हमेशा देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई होती है। यह राज्य, राजनीतिक एवं अर्थिक विकट परिस्थितियों के बीच भी सदा केलिए विकासशील रहा है। वर्तमान समय में भारत के अन्य भागों से पर्यटक और बहुत से निवेशक अरुणाचल आकर यहाँ निवेश कर रहे, जिससे कि यहाँ कि आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को और गति मिल सके। वर्तमान के राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार भी इसके विकास को लेकर हमेशा तत्पर है और जोर-शोर से नई-नई योजनाएँ लायी जा रही हैं।

निष्कर्ष

अरुणाचल पिछले पचासों वर्षों से कई सारे विकट स्थितियों से उबरकर आज अपने स्थापना दिवस के पचास वर्षीय उत्सव यानि स्वर्ण जयंती मना रहा है। इस स्वर्णिम अवसर पर मैं अपने प्यारे भारत एवं अरुणाचल प्रदेश की समृद्धि की कामना करता हूँ। इसी के साथ Losel Nyinje charitable society Tawang को भी इस अवसर के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

आचार्य, प्रथम वर्ष
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

मैं बड़बड़ाहट का एक समन्दर हूँ

—राजेन्द्र राजन—

प्रतिपल अपनी लहरों के शोर से आक्रान्त
मैं बड़बड़ाहट का एक समन्दर हूँ

भीतर दूर कहीं गहरे में उठती है एक तरंग
और पलक झपकते एक लहर बन जाती है
सतह को हिलोरती हुई
एक लहर का पीछा करती हुई आती है
एक और लहर
जिसे घेरती हुई एक और लहर आती है
इस तरह की अनगिनत लहरों के बीच
एक लहर आती है ऐंठती बल खाती हुई
एक लहर आती है
लरजती दुबकती डरती हुई
एक लहर उठती है
चाँद की तरफ़ मचलती हुई
और क्षणिक वेग से गिर जाती है
एक लहर आती है
ढेर सारा झाग उगलती हुई
एक ज़ोर की लहर उठती है विकट अँधेरे में
दीखती नहीं सिर्फ़ आवाज़ से बताती हुई
कि वह एक लहर है दूर तक जाती हुई
एक लहर आती है दूसरी लहर से
गुत्थमगुत्था होती हुई
एक लहर आती है दूसरी लहर के पीछे
अपना सिर पटकती हुई
एक बेचैन लहर उठती है
और पल भर में ज्वार बन जाती है
एक लहर उठती है फनफनाती
फूत्कार करती हुई
और एक भँवर में बदल जाती है

इस तरह के जाने कितने भँवर हैं मेरे भीतर
किसी न किसी भँवर में चक्कर काटना
मेरा रोज़ का अनुभव है

कभी-कभी उठता है मेरे भीतर
भयानक चक्रवात
जो मुझे दसो दिशाओं से
झिंझोड़ देता है
कभी-कभी उठता है ऐसा तूफ़ान
जो बाहर-भीतर सब तरफ़ से
मुझे मरोड़ देता है

मेरी सतह पर तिरतीं ये टूटी नौकाएँ
मुँह के बल गिरी हुई पताकाएँ
ये पतवारें ये मस्तूल
ये खण्ड-खण्ड पोतों के मलबे
ये मेरी अधूरी यात्राओं
नाकाम अभियानों के निशान हैं

अगर मैं शान्त रह सका होता
तो ये दृश्य देखने न पड़ते!

मैं बड़बड़ाहट का एक समन्दर हूँ
मुझे मालूम नहीं
मेरा किनारा कहाँ है।

पूर्व वरिष्ठ संपादक 'जनसत्ता'

भिक्षु

—एम. एल. सिंह—

वह आता है पथ पर, अपना हाँथ फैलाता
सभी जगह पर भटकता है फिरता
फिर भी सबसे, अपनी दुखड़ा है गाता
पेट और पीठ दोनों, मिलकर है एक
फिर भी जाता है, सबसे करने भेंट
दूर-दूर भटकने, अपनी भूख मिटाने
अपनी दुःखभरी आँसु लेकर चला सबको मनाने
अपनी हाँथ फैलाता, पथ पर है जाता
अपने किस्मत का दुखड़ा सबको है सुनाता
फिर भी कोई उस पर, तरस नहीं खाता
बस अपनी भुख मिटाने को, जुठा पत्तल है खाता
वह आता है पथ पर, अपना हाथ फैलाता

मुट्ठी भर दाना, अगर उसे है मिल जाता
बस उसी को अपना है, भाग्य मानता
पेट और पीठ दोनों, मिलकर जब एक है हो जाता
फिर भी गम, उसे नहीं है सताता
क्योंकि इसी को मानता है, अपना भाग्य विधाता
जिस पथ पर जाता, मुँह की है वह खाता
फिर भी उसका दुःख नहीं है जाता
स्वयं ही पथ निहार कर, दूरगामी है बन जाता
पथिकों से मांगकर, वह है खाता
फिर भी भूख, कभी किसी का नहीं है जाता
वह आता पथ पर, अपना हाँथ फैलाता

सिर्फ सुनने को, उसको मिलता है ताना
पर सुनता नहीं दुखड़ा, उसका एक भी जमाना
जबकि इस धरती पर, सबको ही आना है जाना
पर मिलता नहीं है, उसे खुशियों का खजाना

दुखड़े अपने आँसुओं की, सबको है सुनाता
फिर भई उसके अश्कों पर, कोई तरस नहीं है खाता
वाह रे ! अपने भाग्य विधाता
वह आता पथ पर, अपना हाँथ फैलाता

उसके तन के वस्त्र, फटे हुए हैं
फिर भी वह, ढके हुए है
पथ-पथ पर, वह ठोकर है खाता
रो-रोकर सबको, अपनी व्यथा है सुनाता
अपनी मजबूरी में, वह हाँथ है फैलाता
बदले में लोगों की वह दुत्कार है खाता
जलती धूप, उसको है सताता
पैरों का तलवा, उसकी है जलाता
मानों धूप, उसको लोरी है सुनाता
फिर भी उसके, चेहरे की मुस्कान है नहीं जाता
वह आता पथ पर, अपना हाँथ फैलाता

भीख उसका, किसी को नहीं है भाता
पर उस पर, कोई तरस भी तो नहीं है खाता
जूठा खाना, वह है खाता

तब कहीं जाकर, अपना भूख है मिटाता
पथ की पटरी पर, है सो जाता
शायद मौत करे, अपने गले से लगाता
बारिश में, पूरा वह भींग है जाता,

क्योंकि उसके माथे पर, नहीं रहता है छाता
उसे देखकर पथिकों का मुँह है फिर जाता
कोई भी होता नहीं है, उसका भाग्य विधाता
वह आता पथ पर, अपना हाँथ फैलाता।

अनुभाग अधिकारी (से.नि.)
कुलसचिव कार्यालय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9198241794

दस्तक

—अमित कुमार विश्वकर्मा—

जब कोई दे अनचाही दस्तक,
सुन लेना उसे रुक कर।

क्या पता किस उम्मीद से आया हो वो,
क्या पता क्या उम्मीद साथ लाया हो वो।

सुन लेना बस उसे एक बार,
सुन लेना उसे बस एक बार।

सुन लेने से आपका कुछ बिगड़ेगा नहीं,
सुना कर शायद उसका कुछ भला हो जाए।

सुन कर आपका शायद कुछ न जाए,
कुछ सुनाकर शायद उसे सुकून आ जाए।

फिर सुन कर चाहे कर देना उसे नज़रअंदाज़,
क्योंकि फिर शायद वो कभी दे न पाए किसी को आवाज़।

कार्यालय सहायक
आतंरिक गुणवत्ता आश्वासन प्रकोष्ठ
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो. नं.-8419020091

राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा आयोजित कार्यक्रमों का विवरण

(01 अप्रैल, 2025 से 30 सितम्बर, 2025 तक)

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी की राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा अप्रैल, 2025 से सितम्बर, 2025 के दौरान राजभाषा के प्रयोग और प्रसार के निमित्त विभिन्न आयोजन किए गए। कुछ आयोजनों के विवरण एवं फोटोग्राफ्स निम्न प्रकार हैं-

संस्थान में दिनांक 07.05. 2025 से 09.05.2025 तक माननीय कुलपति की अध्यक्षता में धम्मपद कैसे पढ़ें विषय पर एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. रामसुधार सिंह, प्रो. अवधेश प्रधान, प्रो. सदानन्द शाही, डॉ. पृथवीराज सिंह आदि गणमान्य विद्वानों ने धम्मपद एवं उसकी विशेषताओं पर विशेषज्ञतापूर्ण व्याख्यान दिया तथा उल्लेख किया कि धम्मपद का पाठ करते समय यह सोच होनी चाहिए कि ये महापुरुषों के वचन हैं।

राजभाषा कार्यशाला का आयोजन-दिनांकः 31.05.2024

दिनांक 31.05.2025 को अपराह्न कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा की अध्यक्षता **राजभाषा हिंदी** पर हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें मुख्य वक्ता के रूप में प्रो. चन्द्रकला त्रिपाठी, पूर्व प्राचार्या, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं

विशिष्ट वक्ता के रूप में प्रो. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी ने राजभाषा हिंदी के विभिन्न पहलुओं पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिया।

राजभाषा विभाग स्वर्ण जयंती समारोह का आयोजन दिनांक 26.06.2025

राजभाषा विभाग की स्थापना के सफलता पूर्वक 50 वर्ष पूरे होने के अवसर पर माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री श्री अमित शाह जी की अध्यक्षता में गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के तत्वावधान मे 26 जून, 2025 को भारत मंडपम, नई दिल्ली में एक भव्य समारोह में राजभाषा स्वर्ण जयंती समारोह का आयोजन किया गया। उक्त कार्यक्रम में संस्थान की कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा एवं राजभाषा परामर्शी श्री भगवान पाण्डेय भाग लिए।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक दिनांक 28.06.2025

दिनांक 28.06.2025 को अपराह्न माननीय कुलपति महोदय की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया, जिसमें राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम 2025-26 में निर्धारित लक्ष्यों, तिमाही रपट के मदों एवं संसदीय राजभाषा समिति की प्रश्नावली के मदों पर चर्चा हुई। साथ ही राजाभाषा सप्ताह-2025 के आयोजन के संबंध में राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों के साथ विचार-विमर्श किया गया।

राजभाषा विभाग स्वर्ण जयंती समारोह का आयोजन दिनांक 11.07.2025

राजभाषा विभाग की स्थापना के गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के तत्वावधान में 11 जुलाई, 2025 को हैदराबाद में जीएमसी बालयोगी इनडोर सटेडियम में राजभाषा विभाग स्वर्ण जयंती समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान के डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सहायक आचार्य एवं सदस्य सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा डॉ. सुशील कुमार सिंह, सहायक आचार्य एवं सदस्य, राजभाषा कार्यान्वयन समिति भाग लिए।

राजभाषा सप्ताह समारोह-2025 (14 सितम्बर, 2025 से 20 सितम्बर, 2025 तक)

हिंदीमय वातावरण तैयार करने एवं प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने के उद्देश्य से राजभाषा सप्ताह समारोह के शुभारम्भ से पूर्व ही प्रमुख विद्वानों एवं राजनेताओं के हिंदी विषयक विचारों की स्टैंडी बनवाकर आकर्षक ढंग से संस्थान के सभी प्रमुख भवनों के प्रवेश द्वार पर प्रदर्शित कर दिया गया।

दिनांक 14.09.2025 को प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी, माननीय कुलपति की अध्यक्षता एवं डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव की उपाध्यक्षता में हिंदी सप्ताह समारोह का उद्घाटन हुआ। स्वागत संबोधन के बाद सर्वप्रथम डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव ने माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री माननीय श्री अमित शाह के हिंदी दिवस संदेश-2025 का वाचन किया। तदुपरान्त प्रो बलराम पाणि, अधिष्ठाता, महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ने मुख्य वक्ता एवं प्रो. सुमन जैन, हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने विशिष्ट वक्ता के रूप में राजभाषा के विभिन्न पहलुओं पर विशेषज्ञतापूर्ण व्याख्यान दिया। स्वागत संबोधन डॉ. शुचिता शर्मा, सहायक आचार्य, संचालन डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सहायक आचार्य एवं सदस्य सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा धन्यवाद ज्ञापन संस्थान की कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा ने किया।

दिनांक 15.09.2025 को पूर्वाह्न डॉ. ल्हक्पा छेरिंग की अध्यक्षता में छात्रों के लिए हिंदी निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें छात्रों ने बड़े ही उत्साह से प्रतिभागिता की। चूँकि यह तिब्बती संस्थान है एवं भोटी भाषी छात्र पढ़ते हैं, तथापि कुल 25 छात्रों ने प्रतिभागिता की। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले छात्रों को पुरस्कृत किया गया।

दिनांक 16.09.2025 को अपराह्न संस्थान की कुलसचिव माननीया डॉ. सुनीता चन्द्रा की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें प्रो. श्रद्धानन्द, पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी ने **मानक वर्तनी** एवं प्रो. रामसुधार सिंह, पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी ने **हिंदी में टिप्पणी लेखन** विषय पर विशेषज्ञतापूर्ण व्याख्यान दिया।

दिनांक 17.09.2025 को पूर्वाह्न एक अभिनव कार्यक्रम के तहत् प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी, माननीय कुलपति एवं डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव की उपस्थिति में संस्थान के तिब्बती छात्रों द्वारा तिब्बती छात्रों के लिए हिंदी में शास्त्रार्थ (वाद-विवाद) प्रतियोगिता का आयोजन किया गया एवं प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले समूह को पुरस्कृत किया गया। हिंदी में शास्त्रार्थ प्रतियोगिता की तैयारी में डॉ. ङवङ्ग तेनफेल, डॉ. छुल्टिम सङ्गे, श्री सोनम दोर्जे, श्री फुन्टोक छोदान एवं श्री डोडुप टाशी का विशेष योगदान रहा। कार्यक्रम में विषय प्रवर्तन श्री सोनम दोर्जे, संचालन डॉ. सुशील कुमार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री छुल्ड्रीम सङ्गये ने किया।

दिनांक 17.09.2025 को अपराह्न संस्थान की कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा की अध्यक्षता में **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए (पक्ष/विपक्ष)** विषय पर हिंदीत्तर भाषी एवं **शिक्षा का माध्यम हिंदी होनी चाहिए (पक्ष/विपक्ष)** विषय पर सभी अधिकारियों/

कर्मचारियों के लिए अलग-अलग वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया एवं स्थान प्राप्त करने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया गया।

दिनांक 18.09.2025 को संस्थान की कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा की अध्यक्षता में अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए मौखिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान, राजभाषा एवं समसामयिक विषयों पर राजभाषा परामर्शी श्री भगवान पाण्डेय द्वारा प्रश्न पूछे गए। परिणाम का निर्णय डॉ. हिमांशु पाण्डेय, श्री आर.के. मिश्र एवं श्री टी.आर. शाशनी द्वारा किया गया।

दिनांक 19.09.2025 हिंदी सप्ताह के क्रम में माननीय कुलपति की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया, जिसमें राजभाषा तिमाही रपट, संसदीय राजभाषा समिति की प्रश्नावली एवं वार्षिक कार्यक्रम 2025-26 के विभिन्न मुद्दों पर गहन चर्चा हुई।

दिनांक 20.09.2025 को प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी, माननीय कुलपति की अध्यक्षता एवं श्री डी.के. उपाध्याय, उप महाप्रबंधक, भारतीय संचार निगम लिमिटेड, वाराणसी के मुख्य आतिथ्य में समापन समारोह कार्यक्रम का आयोजन किया गया। समापन समारोह में माननीय कुलपति, कुलसचिव एवं मुख्य अतिथि ने विभिन्न प्रतियोगिताओं मे स्थान प्राप्त करने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया गया।

धम्मपद के अमृत-वचन*

अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ।। (चित्तवग्गो, 3.6)

हिन्दी-अनुवाद- जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धर्म को जानता नहीं, जिसका चित्त प्रसन्न नहीं, वह कभी भी प्रज्ञावान् नहीं हो सकता।

किन्नौरी-अनुवाद- हातु मोनङ इ-ज़ागहो मातोश, हात्यङा न दाम छोसु मानेतो, हात्यङो मोनङ् खुश मानितो होदो मी दाम दिमागस्या हाचम माहान्तो।

अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं।। (सहस्सवग्गो, 8.10)

हिन्दी-अनुवाद- जो नित्य बड़ों का आदर करते हैं, अभिवादन शील हैं, उनकी आयु, वर्ण, सुख और बल में वृद्धि होती है।

किन्नौरी-अनुवाद- हात्यङ अयीदेनु मोनयातो, सोदेही बुज़ुर्ग पङु सेवा लानतो, दो मीऊ बोशङ (उम्र) ज़ीज़ीद, सुख रङ ताकत बोदेतो।

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि ।
नत्थि खंधसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं ।। (सुखवग्गो, 15.6)

हिन्दी-अनुवाद- राग के समान अग्नि नहीं, द्वेष के समान शत्रु नहीं, पञ्च स्कन्ध सदृश दुःख नहीं, निर्वाण (उपशमन) सदृश सुख नहीं।

किन्नौरी-अनुवाद- छागपाओ गान मे मायच़, छ़ीगनागु (रोशङु) गान पाप माय, काशो डेयङ पोरनमीगु गान दुःखङ मानीच़ शान्तिऊ गान सुकङ माय।

अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ।। (निरयवग्गो, 22.9)

हिन्दी-अनुवाद- सुकर्म अर्थात् पाप का न करना ही अच्छा है। दुष्कर्म करने वाले को पीछे अनुताप (पीड़ा) होता है। सुकर्म अर्थात् शुभ कर्म का करना अच्छा है, शुभ कर्म करने वाले को अनुताप नहीं होता।

किन्नौरी-अनुवाद- पापु कामङ मालानमीग देह दाम, पाप लान-लान ञुम दुखङ बतो, दाम कामङ लानमीग दाम। दाम कामङ लान-लान ञुमस खुसी हाचीमीग दाम।

* **साभार**– *धम्मपद (पालि एवं भोटपाठ), हिन्दी एवं किन्नौरी अनुवाद तथा हिन्दी-व्याख्या, अनुवादक एवं व्याख्याकार– डॉ. वङ्छुग दोर्जे नेगी; दि कार्पोरेट बॉडी ऑफ दि बुद्धा एज्यूकेशन फाउंडेशन, ताइवान से प्रकाशित।*